मसान का फूल
और
अन्य कहानियां

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

मसान का फूल और अन्य कहानियां

सच्चिदानंद राउतराय

अनुवाद

शंकर लाल पुरोहित

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

आवरण : जतिन दास की पेंटिंग पर आधारित।

ISBN 81-237-1570-6

पहला संस्करण : 1995 (*शक* 1917)

Original Title : Masanira Phula o Anyanya Galpa *(Oriya)*
Translation : Masan Ka Phool Aur Anya Kahaniyan *(Hindi)*

रु. 40.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया ए-5, ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली–110016 द्वारा प्रकाशित

कथा-क्रम

भूमिका

ओड़ीसा में कहानियों की परंपरा काफी पुरानी है। परंतु भारत की अन्य भाषाओं की तरह ओड़िया भाषा का साहित्य भी शुरू में काव्य पर आश्रित था। अतः कहानियों को छंद-मधुर होना पड़ता था। इस कारण ओड़िया लिपि के प्रचलन के कोई छह सौ वर्ष बाद जाकर कहानी छंद की बेड़ियों से मुक्त होने का साहस कर पायी। अठारहवीं सदी में ब्रजनाथ बड़जेना ने 'चतुर विनोद' नामक विशाल कथा-संकलन की रचना करके यह साहस दिखाया। परंतु 'नीतिविनोद', 'प्रतिविनोद', और 'रसविनोद'--इस तरह चार भागों में विभक्त कहानियों का समावेश भी सुमधुरता का मोह नहीं छोड़ सकी। शायद कहानी सच रही होगी, उसमें किसी आविष्कार या उन्मोचन का आनंद मिल सकता है--ऐसा मनोभाव शायद कथाकार को तत्कालीन समाज में प्रेरित नहीं कर पाता था, अतः उस दिशा में विशेष प्रयत्न करने का कष्ट नहीं करता था।

मगर गद्य में लिखी होने के कारण हर कहानी को लघु काव्य कहना क्या समीचीन होगा? आधुनिक कथा की परिभाषा कई प्रकार से की गयी है। मेरे विचार से उसमें कम-से-कम दो बातें अवश्य होनी चाहिए--(1) इसका दायरा 'छोटा' कहा जा सके, इसकी गठन-शैली इस प्रकार केंद्रित व संश्लिष्ट हो कि किसी सचेतन पाठक के मन को जीत ले, किसी नये भाव या चिंतन की भभक पैदा करे, चाहे वह थोड़ी देर के लिए हो। (2) इसका यह मतलब नहीं कि वह जिद्दी नन्हें बालक को सुला दे अथवा लाड़ली राजकुमारी का मन बहला दे। बौद्धिक आनंद प्रदान करना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। अतः प्रौढ़ पाठक ही इसका प्रधान ग्राहक है। इस कारण मनोरंजन इसका आवश्यक आवरण भर है, प्राण नहीं।

आधुनिक कथा की इस मूल परिभाषा के अनुसार सन् 1898 में प्रकाशित फकीर मोहन सेनापति की कहानी 'रेवती' को प्रथम कथा कहा जा सकता है। वे सिर्फ आधुनिक ओड़िया उपन्यास के जन्मदाता ही नहीं अपितु ओड़िया कथा के आदि-सृष्टा और पथप्रदर्शक भी थे।

आश्चर्य की बात है कि यह नवजात शिशु किसी शिशु जैसा लगता ही नहीं। उसका यह प्रथम उच्चारण जरा भी अबोध्य नहीं लगता। हां, धरती पर आते ही रो पड़ा है, पर उसकी रुलाई का स्वर स्पष्ट है, उसका व्यक्तव्य एक निर्मम जैविक तथा सामाजिक यथार्थ का संवाहक है। यह यथार्थ कुंवारी कन्या रेवती के पढ़ाई करने के स्वप्न और अंकुरित

प्रेम को एकाकार कर समूल नष्ट कर देता है। "री रेवती, री रेवती... री आग... री चूल्हा..." बुढ़िया दादी की यह भर्त्सना उसकी अंतिम साँस तक, एक साथ उसके अंधविश्वास और विधाता का अभिशाप लगता है। ऐसी एक अद्भुत त्रासदी, जो प्राचीन ग्रीक ट्रैजेडी की तरह एकदम अकारण है। मानो जन्म से चुलबुली ओड़िया बाला को सुख-स्वप्न देखने का कोई अधिकार नहीं। ओड़िया साहित्य में यह एक प्रचंड और विस्मयपूर्ण घटना है।

फकीर मोहन के बाद अनेक रचनाकार सामने आए। उन्होंने अनेक उल्लेखनीय कहानियां लिखीं, किंतु कहानी का रचना-कार्य अचानक मंद होता गया। कम-से-कम कथित भाषा की शक्ति और संकोचहीन यथार्थ की दृष्टि से; हालांकि क्रमशः पत्र-पत्रिकाओं के प्रचलन के बाद कहानी काफी लोकप्रिय विधा बन गयी। इस दिशा में 'उत्कल साहित्य' और 'मुकुर' जैसी पत्रिकाओं की भूमिका सदा स्मरणीय रहेगी।

इस सदी के तीसरे-चौथे दशक से ही कहानी को बौद्धिक स्तर पर एक विशेष मर्यादा मिल चुकी थी। 'युगवीणा', 'सहकार', 'डगर', 'आधुनिक' आदि पत्रिकाओं की भूमिका द्वितीय महायुद्ध की पृष्ठभूमि में स्पष्ट दिख रही थी। शीघ्र ही स्वाधीनता मिलने की आशा और नाना बाधाओं के बावजूद स्वतंत्र ओड़ीसा राज्य का स्वाभिमान साहित्यकारों के लिए प्रेरणा का स्रोत था। इसके फलस्वरूप कथा-साहित्य में घनिष्ठ होते सामाजिक संबंध और धीरे-धीरे सिर उठाती व्यक्ति-चेतना--दोनों को वास्तविक स्थान मिलने लगा। इस समय के प्रतिभाशाली कथाकारों में कालिंदीचरण पाणिग्राही, राजकिशोर राय, राजकिशोर पटनायक, गोदावरीश महापात्र, नित्यानंद महापात्र, कान्हुचरण महांती, गोपीनाथ महांती और सच्चिदानंद राउतराय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। कालिंदीचरण का धीर व संभ्रांत मानवीयता का स्वर, भगवती चरण के पैने और गोदावरीश महापात्र का रसाप्लुत विद्रूप, नित्यानंद महापात्र की भावनामय तथा राजकिशोर पटनायक की विश्लेषणात्मक मानसिकता सामान्य मानव एवं पीड़ित आदमी के सुख-दुख को रूपायित करने में विशेष सफल हुई है। परंतु जैसी यथार्थ की दीप्ति पाठक मन पर न केवल अधिकार जमाती है बल्कि उसे अकथनीय कष्ट देती है, नोबेल विजेता नादिन गडीमोर के शब्दों में--'कागज को स्याही छेद देती है', उसे कहानी के माध्यम से इधर के दो कथाकारों ने प्रतिष्ठित किया। वे हैं--सच्चिदानंद राउतराय और गोपीनाथ महांती। सच्चि बाबू ने संतुलित परंतु निस्संकोच कथा कही और गोपीनाथ महांती ने उफनते भावावेग को लेकर यथार्थवादी कथा की रचना की। इससे आधुनिकता का जो नया क्षितिज उद्घाटित हुआ, अगर कहें कि स्वातंत्र्योत्तर सारे कथाकार उनके विशेष कृतज्ञ होंगे, तो असत्य नहीं होगा।

सच्चि बाबू ने सिर्फ सत्रह वर्ष की उम्र (1932 ई.) में 'टामी' शीर्षक से सरल परंतु मार्मिक कहानी लिखी, जो उसी उम्र के किसी प्रतिभाशाली कथाकार के लिए ही संभव है।

टामी एक कुत्ता है। इसकी जीवन-यातना ही इस कथा का विषय है। कहानी पढ़ने

पर लगता है कि लेखक होने के नाते ही, वे टामी के इतने अंतरंग हो पाये हैं और उसकी वेदना को इतनी निकटता से दिखा पाये हैं, मानो स्वयं भोग रहे हों। वरना वे शायद विषाद-करुणा में भीग जाते, स्थूल निष्ठुरता का इतना सूक्ष्म ब्यौरा देना जरूरी नहीं समझते। आंखों देखा विस्तृत विवरण सरल और स्पष्ट भाषा में बेलाग देते हैं, जिसमें निष्ठुरता दो टूक होकर उभरने को बाध्य है भले ही वह कितनी वीभत्स क्यों न लगे। मगर कितने साहित्यकार ऐसे 'गंदे', गैरसाहित्यिक मार्ग से होकर गुजरना पसंद करेंगे? जैसे--बूढ़े रसोइये ने जलती लकड़ी लेकर उसके माथे पर दे मारी। टामी का माथा जल गया। चोट से सिर भी फट गया। खून की धार बह निकली। रसोई का सफेद फर्श उस लहू से लाल हो गया। इससे आगे भी है। माला फेरती दादी मां का भी उचित सहयोग है। टामी की चीख-पुकार सुनकर वे दौड़ी आती हैं। रसोइये को लंबा आशीष देकर कहती हैं--''बहुत अच्छा किया, बेटे, तेरी लंबी उमर हो! कुलखनी कुतिया तो उठने-बैठने ही नहीं देती। दो बार मेरी पूजा की सामग्री नष्ट कर डाली।'' इसके बाद दादी मां से साहस पाकर रसोइये ने उसके फूटे सिर पर अपने फील पांव से मुटियाये पैर को दे पटका। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। घर-बार में ऐसा होता रहता है। मगर इसका वर्णन हमें परेशान कर रहा है, क्योंकि साधारणतया हम इस तरह की कुत्सित निष्ठुरता को अपनी भावना के अंदर टाल जाते हैं। पर यही तो है वास्तविक चित्रण जिसमें कुछ जघन्य है, कुछ वीभत्स है और इसलिए कुछ तथाकथित अश्लीलता रहना जरूरी है। किशोर कवि सच्चि राउतराय उसकी परवाह नहीं करते।

इस तरह की बेपरवाही का भाव कम नहीं हुआ अपितु बढ़ता ही गया उनकी तरुणाई में, परवर्ती जीवन में। मुझे लगता है कि विप्लवी कवि ने जिस भावावेग की अग्निशिखा अपनी कविता में जलायी है, उसका ईंधन कैसा है, इसकी सूचना उनकी तरुणाई की कुछ अविस्मरणीय कहानियां ही देती हैं। 'मसान का फूल' और 'अंधारुआ' जैसी कहानियों में 'टामी' का विश्वास भरा है। यथार्थ का चित्रण करने के लिए एक निर्मम समझौता-रहित आग्रह है। मानो वे कह रहे हैं--'देखो, देखो, आंख खोलकर देखो, जल्दबाजी मत करो, तब जान पाओगे कि हमारे समाज में अत्याचार कितना जघन्य है और कितना वीभत्स हो सकता है।' 'मसान का फूल' की नायिका एक लड़की की लाश है जिसे जलाने हेतु श्मशान घाट ले जाने के लिए एक भी व्यक्ति इसलिए आगे नहीं आता कि वह पाप-गर्भा होकर मरी है। उसे जलायेगा सिर्फ जगू तिवारी, क्योंकि दाह संस्कार में वह दक्ष है। उसमें कोई दया-माया नहीं है। वह मुर्दे को चीर देता है, कोंचता है, गर्भवती का पेट फाड़कर बच्चा निकाल दोनों को चिता पर लिटा देता है। एक पर जगह कम पड़े तो कोंचने की लकड़ी से बच्चे को तोड़-तोड़कर मांस का पिंड बना जलती लकड़ी के बीच ठूंस देता है। सधवा औरत की देह से गहने खींच लेता है। इसमें....पनीला खून बह आता है और लाश का चेहरा गीला हो जाता है--यह सारा दृश्य वीभत्सता के साथ पाठक को झेलना पड़ता है।

बेचारी कुंवारी कन्या की मृत देह को भी इतनी दुर्दशा भोगनी होगी। उसकी कल्पना में अंतरात्मा रो ही नहीं उठती, बल्कि चीखे बिना भी नहीं रहती। हालांकि 'टामी' कहानी में वे तब सदय हो जाते हैं जब टामी को बच्चे होते हैं, उसके नन्हें-नन्हें पिल्ले उसकी गोद में सोये हैं। 'मसान का फूल' में बहू का चेहरा फूल जैसा दिखता है, जगू तिवारी का मन भी पिघल जाता है। वह नाक का गुना तोड़ नहीं पाता। पर मानवीयता का जरा-सा परिचय समाज की निष्ठुरता व अन्याय को क्षमा नहीं कर पाता। लेखक का भी यही उद्देश्य लगता है।

परंतु, 'अंधारुआ' में गोहत्या करने वाले पहली को प्रायश्चित करना पड़ा। जीभ रहते तुतलाना पड़ा, द्वार द्वार ठीकरा लिये फिरना पड़ा। शुद्ध होने के बाद भी जाति-बिरादरी को भोज न देने के कारण जाति से निकाल दिया गया और सर्वस्व गंवाकर मर गया। किसी अंतिम बात का आश्वासन भी नहीं....है तो सिर्फ समाज का क्रूर उपहास। पहली की विधवा, पीहर से आए जो दस रुपये आंचल में बांध रखे थे, खोलकर मुखिया के हाथ में पकड़ा देती है, सब के पांव पड़ती है। ब्राह्मण व अन्य जात-बिरादरी के लोग खुश होकर पहली के मुरदे को आशीष देते हैं। दुराचारी समाज की शठता और कितनी दूर जा सकती है?

तो नग्न यथार्थ का चित्र क्या विप्लव के लिए यथेष्ठ है? इसमें क्रोध तो आयेगा, मगर संस्कारों से मिला भय और भक्ति क्या फिर भी मन में चिपके नहीं रहेंगे कि जो भी हो वे हमारे राजा हैं, हमारे जमींदार हैं, हमारे गुंसांई हैं....आदि। अतः उन विग्रहों को खाली और थोथा दिखाना होगा ताकि नीचा और छोटा आदमी भी बिना दुविधा के उसे नीचे लुढ़का सकेगा। विप्लवी लेखक ने इसके लिए जो हथियार तैयार किया है उसका नाम है उपहास और रसोत्तीर्ण व्यंग्य। सच्चि राउतराय इसमें सिद्धहस्त हैं। युवावस्था से लेकर बढ़ती उम्र तक उन्होंने ऐसी कई कहानियां लिखी हैं जहां इस हथियार का प्रयोग किया गया है, लक्ष्य-भेद कर सके हैं। कुर्सी की क्षमता की बड़ाई कितनी असार और हास्यास्पद है, इसका नमूना 'दारोगा का कुत्ता' में मिलता है। हाय, जिस सम्माननीय कुत्ते की शवयात्रा बड़ी धूमधाम से निकली है, उसी कुत्ते के मालिक, खुद दारोगा बाबू का शव उठाने के लिए फिर कितनी दौड़-धूप मची। 'राजा, रानी और कुत्ता' के निर्वासित राजा की धारणा है कि प्रजा अभी भी उसे याद कर रही है। परंतु महाराज को पता नहीं, कि उनका ठुकराया कुत्ता ही उनका अनुगत है, यहां तक कि उनका विश्वस्त नौकर नरहरि भी नहीं, जो विद्रोही प्रजामंडल का गुप्तचर है। 'अंगुली' कहानी में जमींदार की उदारता के पीछे जो नाटकीय छलावा है, अर्थात् अंगुली भी रुपये देकर खरीदी जा सकती है, उसका खून मामूली लाल पानी हो सकता है--यह अंतिम दृश्य हास्यास्पद होने के साथ-साथ स्पष्ट कर देता है कि वह आदमी चतुर एवं ठग के अलावा कुछ नहीं है।

बाद में उनकी कहानियों में व्यंग्यात्मकता और भी सूक्ष्म तथा पैनी हो जाती है। राजा,

जमींदार वगैरह का तब तक जोर खत्म हो गया था, अतः उनके शिकार होते हैं समाज के आत्म-तुष्ट ऊंचे लोग, जो वास्तव में लुंज और दयनीय हैं। क्रमशः उनका व्यंग्य श्लेष और चकाचौंध पैदा करने वाला होता गया, जोकि समकालीन कहानी की विशेषता है। इस क्रम में कई उल्लेखनीय कहानियां हैं। कहीं नंगा किया है 'गोधी' के ढोंगी बाबा को तो कहीं 'पंडित जी की मृत्यु' के अहंकारी पंडित को जो अपनी एक मजदूरिन् के साथ यौनाचार की लिप्सा संभाल नहीं पाये। 'गवाही' में भाड़े का गवाह अपने खोदे गड्ढे में आप गिर पड़ता है। अंत में जान पड़ता है कि जिसके पक्ष में गवाही देकर यह कहा कि उसका स्वभाव एवं चरित्र पवित्र है, वह कोई साइकिल चोरी करे इसका सवाल ही नहीं उठता, वही उसकी अपनी साइकिल लिये जा रहा है। श्लेष के आधार पर इस कहानी की किसी भी आधुनिक कहानी के साथ तुलना की जा सकती है, क्योंकि यहां व्यंग्य का अस्त्र बूमरांग की तरह शिकार से शिकारी पर लौट आता है। व्यक्ति और समाज दोनों के सारे शून्य रूप साफ दिख जाते हैं।

यहां एक बात स्पष्ट कर देना उचित होगा। सच्चि बाबू कभी युवावस्था में नेता बने, मजदूर-नेता, उनका सामाजिक अभियान कितना भी उग्र रहा हो लेकिन उनकी कलात्मकता पर आंच कभी नहीं आयी, क्योंकि वे जान-बूझकर कहानी को उद्देश्यपूर्ण बनाते नहीं लगते। शायद उनका दृष्टिकोण है—उद्देश्य स्वतः ही अपना काम करेगा यदि कहानी यथार्थ और सुंदर बनी है, इसमें चाहे व्यंग्य हो या निर्भीक और शुद्ध कहानी कहने की चातुरी। विशेषकर अधेड़ उम्र में लिखी उनकी कहानियों में व्यक्ति-चेतना ही प्रमुख हो उठी है। जैसे 'वंदर' कहानी में बूढ़े पद बाबू का दयनीय भ्रम है--जिस बंदर को बचपन में मार दिया था आज वह उन्हें चिढ़ाने लौट आया। 'सूरज का सातवां घोड़ा' की हिनहिनाहट सरल पंचानन बाबू को उनके दुःस्वप्न में चिढ़ा रही है।

यह व्यक्ति-चेतना क्या सिर्फ परिणत जीवन की अनुभूतियों से उद्‌भूत है या सामाजिक अस्तित्ववादी दर्शन द्वारा प्रभावित? दोनों बातें सच हो सकती हैं। पर मेरे ख्याल में यह आंशिक सच है। क्योंकि कथाकार सच्चि बाबू ने अपनी तरुणाई में भी कई कहानियां लिखी हैं जिन्हें रोमांसधर्मी कहा जा सकता है। पर इस रोमांस में न धुधंली कल्पना है और न भाव-सरलता है। यह भी यथार्थ है, मगर करुण और हृदय-विदारक। 'मृत कुंई' में नाराज किशोरी का मान भंजन करने उसका साथी कमल तोड़ने जाता है। परंतु कमल सरकता जाता है और उसके प्राण लिये बिना नहीं छोड़ता। एक दूसरी कहानी 'राजकुमार' में यात्रा (लोक-नाटक) का राजकुमार उस मुग्धा कुंवरि का राजकुमार नहीं रह जाता। वह चेचक में मर जाता है, रास्ते पर गिरा पड़ा है और कुंवरि के सामने ही कौवे उसकी आंख नोच डालते हैं। यह है दशा आदमी की और उसके प्रेम की। 'माटी का ताज' भी एक बेजोड़ रोमांसधर्मी कहानी है, जिसमें मन के अंदर बचपन का सरल-सुंदर प्रेम मर जाता है। बस माटी के 'ताजमहल' की प्रत्यक्ष भूमिका न होने पर भी उसकी छाया तो दोनों पर पड़ी है।

दोनों भिन्न धर्म के परिवार में जन्म लेकर आये हैं, अतः सामाजिक दीवार स्वतः आड़े आ जाती है।

कवि सच्चि बाबू की काव्य-प्रतिभा ही उन्हें अखिल भारतीय प्रतिभा प्रदान कर चुकी है। संख्या की दृष्टि से भी उनकी कहानियां बहुत अधिक नहीं हैं। फिर भी कथाकार सच्चि बाबू इतने उच्च स्तर की और इतनी विविधतापूर्ण कहानियों की रचना कर आधुनिक ओड़िया कथा साहित्य के एक प्रधान पथप्रदर्शक बन गये हैं कि यह विस्मयजनक बात है। इस संदर्भ में उनके साहित्य की एक और दिशा की सूचना देना समीचीन होगा। उसमें स्पष्ट है कि अस्तित्ववादी उद्वेग हो या रोमांटिक करुणा, वे हर प्रयोग की चुनौती स्वीकार करने में सक्षम हैं। वरना सन् 1935 में 'चित्रग्रीव' जैसे उपन्यास की रचना कैसे संभव होती जिसका कथानक इतना बिखरा है पर बौद्धिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इतना संपन्न है कि उसे उल्लेखनीय 'ऐंटी-नावेल' का प्रयोग कहा जाता है।

भूमिका के सीमित क्षेत्र में सच्चि बाबू की सारी कहानियों पर टिप्पणी करना संभव नहीं। फिर भी मुझे विश्वास है कि इस संकलन की कहानियां उनके कथाकार के स्वरूप का सही परिचय दे सकेंगी, देश के पाठकों में उनके जीवन और साहित्य के प्रति अधिक निकट होने के लिए अधिक उत्सुकता भर सकेंगी।

—किशोरीचरण दास

मसान[1] का फूल

पोड़ा बसंत शासन (ब्राह्मणों का गांव) का जगू तिवारी कीर्तन करता है, मृदंग बजाता है, गांजा पीता है और मुरदा फूंकता है, मुरदों को कंधा देने वालों के रूप में इस इलाके में उसका खूब नाम है।

मुरदा जब चिता पर सें सें करता है या उसकी टांग ताव खाकर ऊंची निकल आती है, अथवा पेट की अंतड़ियां जलकर उनसे पानी रिसता है तो आग नहीं सुलगती, तब दूसरे मालभाई[2] जगू की ओर देखते हैं, उसकी सलाह लेते हैं।

गांजे के नशे में लापरवाही से जगू कुछ दूर बैठा होता। ऊंघते हुए हड़बड़ाकर खड़ा होता, और फिर अरथी में से कोई तीन हाथ का बांस खींच लेता है। ''मार... ले... दे...'', कहकर बांस को लाश पर तीन-चार मार देता।

या तो मुरदे का सिर चूर हो जाता, या फिर दही निकलकर थोड़ी जगह में आग दब जाती। उठी हुई टांग लाठी की चोट से मुड़ जाती और लकड़ी के बीच में गिर पड़ती या पेट फटकर चौड़ा हो जाता। अंतड़ियों में जीभ लपलपाती आग घुस जाती। देखते-ही-देखते सब जल-भुनकर राख हो जाता!

घुटने भर राख, छाज, बुहारी, हांडी, ठीकरे और फटे-पुराने चिथड़े से भरा पड़ा है मशानपदा[3]। वहां नख, बाल, हड्डियों के छोटे-बड़े टुकड़े एवं इधर-उधर की गंदगी भी फैली हुई है।

जगू तिवारी मजे में घर लौट आता। पोखर के घाट पर तेल लगाते लगाते जांघ पर हाथ मार आराम से कहता, ''ठाकुरजी की दया से काम ठीक-ठाक निपट गया।''

गांव में जब हैजा-वैजा फैलता, माता निकलती तो मरनेवालों की तादाद अधिक हो जाती। तब गांव में जगू तिवारी की खातिर बढ़ जाती। सब आकर उसकी खुशामद करते। कोई आंख से आंसू बहाता, कोई टेंट से पैसे निकालता, कोई ठोड़ी छूकर कहता, ''भैया

---

1. श्मशान।
2. शव-वाहक।
3. श्मशान-क्षेत्र।

...बाबू!" जगू तिवारी गंभीर होकर सबके निहोरे सुनता। परंतु जवाब में वह तुरंत कुछ नहीं कहता।

"कल रात से मुरदा घर में सड़ रहा है।"

"घर में बहू कब से मरी पड़ी है, एक कोने में...."

तरह तरह के निहोरे जगू से किये जाते।

जगू अपने प्राप्य के बारे में किसी का कोई लिहाज नहीं करता। पैसेवाला हो तो कान के बाले, नाक का कांटा... और गरीब घर का हो तो पांव की मच्छी, चांदी की अंगूठी--जगू को दक्षिणा में मिल जाता। मुरदे को चिता पर रखने से पहले उसकी देह अच्छी तरह टटोल-टटोलकर देख लेता--कहीं कोई गहना-गांठी है या नहीं? होता तो निकालकर रख लेता। कभी कभी मुरदे के नकफूल या कान की बाली आसानी से न निकलती तो, जगू तिवारी झुंझलाकर दांत भींच लेता, खींच-तानकर मुरदे के कान, नाक से वह गहना निकालता, इसमें मुरदे की नाक फट जाती, कान से नीला नीला, पनीला खून बहता और चेहरा गीला हो जाता, मगर जगू उधर कोई ध्यान नहीं देता। यह तो रोज की आदत हो गयी है, एक तरह की ऊपरी वृत्ति बन गयी है। इस तरह करते करते वह पत्थर का हो गया है।

किसी गर्भवती औरत का मुरदा होने पर एक रुपया लिये बिना जगू अरथी को कंधा नहीं देता। अपने प्राप्य में जरा भी मीन-मेख करते देखता तो कह देता, "लाश बासी[1] पड़ी रहेगी, मुझे कुछ कहना मत।" दूसरे मालभाइयों को भी सिखा-पढ़ाकर अड़ जाता।

रुपया मिल गया तो फिर ढोल की थाप के साथ साथ कदम बढ़ाता--'राम नाम सत्य है!' जोर से बोलता हुआ जगू तिवारी ठाठ से आगे आगे चलता। ग्रेनाइट पत्थर सी स्याह देह पर सफेद जनेऊ के तार दूर से चमचमाते दिखते...।

उसकी आवाज सारे गांव में छा जाती। बस्ती भर के औरत-मरद वहां आ जुटते। छोटे छोटे बच्चे घरों में जा छिपते, डर के मारे।

श्मशान में धोबी ने नहरनी से गर्भवती औरत का पेट चीर बच्चा निकाल अलग कर दिया तो जगू तिवारी ने दो चिता सुलगाकर मां-बेटे दोनों को चित लिटा दिया। ऐसे मामलों में जगू कभी कभी दोनों को एक ही चिता पर पास पास लिटाकर आग लगा देता। एक पर जगह न होती तो कोंचने की लकड़ी से शिशु को तोड़-मरोड़कर जलती लकड़ियों के बीच घुसेड़ देता या ऊपर फेंक देता।

इस तरह जगू तिवारी अपने खेत में पैदा होनेवाले कुछ बोरे धान के अलावा कभी कभी दो पैसे ऊपर से कमा लेता, अपना पेट भरता। इतने में ही घर चलाता, लेन-देन करता और शादी-ब्याह का काम भी चला लेता।

---

1. एक लोक-विश्वास है कि दिन में मरे तो सांझ से पहले और रात में मरे तो भोर से पहले, मुरदे को जला देना चाहिए। वरना मुरदा बासी हो जाता है और मुरदे को बासी करना बहुत बुरा और पाप माना जाता है।

गांव में कोई उसे मुंह खोल कुछ नहीं कह पाता। जगू के अलावा दूसरा पक्का जानकार बाम्हन मालभाई नहीं है।

कोई जगू के प्राप्य में कमी करने की चेष्टा करता, तो जगू "काम की तुलना में मेरी मांग कुछ नहीं," कहकर तरह तरह के तर्क रखता। अपनी बहादुरी दिखाने वाली पुराने बातें कहता--"मेरे जैसा है दूसरा, मुरदे फूंकने वाला?" इस बात पर वह खूब गर्व करता।

पिछले बरस नरसिंह मिश्र की औरत को कैसे अचानक मूसलाधार बरसते पानी में भी जला आया। आते समय सातगछा बगीचे के छोर पर एक गरदनमरोड़ मर्दल के चक्कर में पड़ गया। उसके बाद पौष की ठंडी रात में जलोदर से मरे, नाथ ब्रह्मा को जलाते समय मुरदे के पेट से मटके भर पानी निकला, चिता बुझ गयी। फिर भी जगू कैसी चतुराई से इतने कठिन मुरदे को जला सका, यह पुरानी कहानी है--वह खुद रस ले-लेकर बताया करता है कभी कभी।

मुरदे जलाने की विद्या में जगू तिवारी का अनुभव और उसकी गहरी जानकारी की बात कोई भी ग्राहक घड़ी-आध घड़ी में बात करके जान जायेगा।

रोज जगू तिवारी भागवतघर में बैठकर अपने हिस्से की कथा सबको एक एक बार कह सुनाता। टप टप मेघों भरे मौसम में उसके श्रोता उसे घेरकर बैठ जाते हैं। गांजे का दम लगाकर पहले जगू गला खंखारता है। श्रोता समझ जाते कि अब कहानी शुरु होगी।

"एक बार कोई अच्छी सी लाश जलाकर लौटते समय की बात है--मुक्ताझर के पास घने आम की डाल पर बैठी कोई भूतनी अंतड़ी जलाकर अपने बच्चे को सेंक रही थी....।" किसी निपुण चित्रकार की तरह वर्णन कर रहा था जगू। श्रोता सहमे-सिकुड़े दीवार के सहारे बैठे हुए सुनते।

इसी तरह उस छोटे से गांव में जगू तिवारी का जीवन कटता। असौज की रात सांझ से कुछ मेघ घिर आये हैं। जगू तिवारी का सिर दुख रहा था शायद। दोनों कानों के पास माथे पर थोड़ा सा कली-चूना लेपे हुए सिर को कनटोप से ढांपकर बाहर चबूतरे पर बैठा 'हरिवंश' सुन रहा था।

गांव में रोना-पीटना सुनायी दिया। पड़ोस की बस्ती वाली दुकान से पान-जर्दा लिये कोई लौट रहा था। उसी ने खबर दी कि जटिया मौसी के यहां उसकी बहू मर गयी है।

देखते देखते सारे गांव में हलचल मच गयी। "चलो, अब दो पैसे की आमदनी होगी।" जगू तिवारी को कुछ राहत मिली।

कई लोग कई बातें कह गये हैं आकर। बस्ती की औरतें दस बातें फुसफुसाने लगीं। किसी ने कहा--"पाप का पेट था।" किसी और ने कहा--"पेट खाली करने को कोई दवा-दारू खायी थी। जहर फैल गया सारे शरीर में।"

जगू तिवारी गुमसुम सब सुनता रहा। मुंह मोड़ लिया। जात जाने के भय से इतना बड़ा रोजगार....! सारी आशा टूट गयी।

जटिया मौसी का दुनिया में कोई नहीं--बस सास-बहू दो ही हैं। बहू आने के महीने भर बाद बेटा कलकत्ता गया--पैसा कमाकर उधारी चुकाने के लिए। तीन बरस हुए कोई खोज-खबर नहीं। पहले तो खत-वत भेज दिया करता था, इधर साल भर से वह भी बंद है। कलकत्ता से उस गांव को लौटने वालों का कहना है--वह तो वहां कहीं एक औरत को लेकर कलकत्ता में ही मटियाबुरज में रहता है। घर पर बहू अकेली। आज वह तो चली गयी--पर जिंदगी भर का कलंक लाद गयी बुढ़िया के माथे पर। बुढ़िया बाम्हनी सिर पर हाथ रखे बैठी है।

उसकी हालत दिन भर भी बखानें तो पूरी नहीं होती।

गांव के कुछ बुजुर्ग लोग निकले और बात को संभाल लिया। "बड़े-बूढ़े लोग पहले बहू को काबू में रखने क्यों नहीं आये आगे?" जटिया मौसी गाली-गलौज करती रही। आखिर फैसला हुआ--लाश को तुरंत निबटाना होगा। अगर कहीं छाटिया थाने में खबर हो गयी तो बाम्हन जाति का नाम ही डूब जायेगा। फिर वे भी तो यहां बहू-बेटी लेकर रहते हैं।

जटिया मौसी ने दांतों में तिनका रखकर सबको प्रणाम किया, अनेक बार धन्यवाद किया कि उसे उस घोर विपदा से बचा लिया। बार बार प्रणाम करके सबके प्रति कृतज्ञता जतायी।

मुरदे को कंधा देने के लिए गांव से तीन-चार युवक खुद-ब-खुद आगे आये। पुवाल की रस्सी बनायी गयी। अरथी सजी, छाज, ठीकरा, छींका, बुहारी, लकड़ी--सब ले आये दरवाजे पर। मुरदे की देह कपड़े से ढांपकर अरथी बांधी गयी। मगर एक पक्का मालभाई न हो तो कैसे चलें? आध घंटे में लाश खतम करनी होगी। वरना खतरा है। थाना बाबू को खबर हो गयी तो गांव भर के लोगों को बांध लिया जायेगा। गांव में चुगली करने वालों की कोई कमी नहीं।

मुखिया ने कहा--"तिवारी जी को बुलाओ। तिवारी के बिना इतना बड़ा काम ठीक-ठाक और जल्दी नहीं हो पायेगा।"

जगू तिवारी को खबर दी गयी। मगर वह नाराज। एक ही जिद थी--"पाप का पेट लिये मरी है। मैं उसे छूऊंगा?"

सब ने समझाया-बुझाया। मगर वह अपनी बात पर डटा रहा पहले।

आखिर बड़े-बूढ़ों ने जाकर समझाया, बहुत कहा-सुना तो जगू फिर मुरदे को कंधा देने को राजी तो हुआ, मगर पांच रुपये नकद मिलने पर--"हां...इसके बिना इतना बड़ा पाप कौन ढोयेगा?"

उसने साफ साफ कह दिया। जटिया मौसी के घर का कोना कोना खोदा गया, जो कुछ निकला सो लकड़ी, किरोसिन, धोबी-नाई के लिए ही पूरा नहीं पड़ा। आखिर फैसला हुआ--'बहू की नाक में जो फूल है, जगू तिवारी को मिलेगा।'

जगू तिवारी राजी हो गया और उसने आवाज लगायी--"राम नाम सत्य है!"

मसानपदा, मैली-कुचैली जगह। हांडियां, लकड़ी के टुकड़े, खोपड़ियां, छाज, ठीकरे, कोयले और बांस के टुकड़े। चारों ओर एक मुर्दनी सी छायी हुई है।

बीच में पथ-श्राद्ध[1] हुआ। इसके बाद मुरदे को ले जाकर लकड़ियों के ढेर पर चित लिटाया गया, चेहरे पर से कपड़ा हटा दिया गया।

नाक पर चवन्नी भर का सोना! लालटेन की रोशनी में जगू तिवारी ने देखा--फूल मुरदे की नाक पर चमक रहा है।

बादल छंट गये थे। धीमी धीमी चांदनी पड़ रही थी मुरदे के फीके पड़े सफेद चेहरे पर।

साथ आये मालभैया ने कहा--"अरे, तिवारी जी! जल्दी जल्दी काम सुलटाओ। कहीं पुलिस को भनक पड़ गयी तो फंस जायेंगे सब।"

जगू ने फूल को तोड़ने के लिए हाथ आगे बढ़ाया। उसने देखा कि छोटी बहू का चेहरा जैसे कोई चांदनी में अर्धमुरझाया कुंई का फूल हो। चेहरे के चारों ओर घिर आया था घने घुंघराले बालों का जंगल। ठीक वैसे ही, जैसे आकाश में चांद के पीछे काले मेघों की घनी छाया हो जाती है।

बहू के चेहरे पर तैर रहा है मुरझाये फूल का लावण्य! उसके बिखरे बालों पर चांदनी की लहरें एक एक आती-जाती दिख रही हैं।

जगू ने हाथ वापिस खींच लिया। आकाश के फीके चांद की ओर देखा।

ऐसे कितने ही मुरदे जलाये हैं जगू ने। कभी मन में ऐसा तूफान नहीं उठा। 'इस छोटे से सुंदर मुखड़े को असुंदर करूं?' पर वहां वह जरा सा गुना[2] खूब चमक रहा है। इस नारी के बारे में कितना कुछ नहीं सोच गया वह मुरदा फूंकनेवाला जगू।

तभी जगू को याद आया : यह बहू थोड़े ही दिनों में मां बन जाती। और कितना कुछ होती,.... मगर कुछ न हो सकी।

दोष किसका है?

छुपे छुपे चांदनी के अथाह सागर के बीच, सूने मरघट की नंगी छाती पर लेटी है एक अधखिली नारी। अकेली! सच, वह एक दम अकेली है। लाश ढोनेवाला जगू तिवारी निरख रहा है--सच, कितनी अकेली! [illegible] के, एक घर में बंद जीवन को बदलकर, जरा कुछ और तरह जीने का स्वाद अनुभव क[illegible]र ही, शायद आज वह मसान की लाश बन गयी है। बहू के स्याह पड़ते चेहरे पर अनेक दिन जीने की भूख दिख गयी।

जंगू को देर करते देख साथी मालभाई झुंझला गये। धमकाकर बोले, "यों देरी करोगे

---

1. मरघट के रास्ते में किया जाने वाला पिंड-दान।

2. नाक का फूल।

तो हम मुरदा छोड़कर चले जायेंगे। पुलिस आयेगी तो तुम्हीं संभालना। लो अब जल्दी... गुना निकालो....काम आगे बढ़े। वरना हम आग लगाते हैं। गुने के लिए तो मरे जा रहे थे तब। अब हाथ नहीं चलता। क्यों?''

तब जगू तिवारी का सपना टूटा, लाज से भर गया वह। अंदर की कमजोरी छुपाने के लिए कहा, ''छिः! यह मुरदे का गुना घर में भरूंगा? वह तो पाप का पेट....''

संगियों ने पूछा, ''तो नहीं लेंगे? आग लगाते हैं?''

जगू ने लापरवाही में कहा, ''हां, लगा...दो....। ठीक से देना...जलाकर इसे राख कर दो।''

हुत् हुत् आग जल उठी। लपलपाती जीभ चाटती गयी। बहू की मांसल देह आग में सीझ काली पड़ गयी। और फिर पर्त-दर-पर्त बुलबुले की तरह फूटने लगी।

जगू तिवारी जलती लाश को देखता रहा।

दूर कुचले के झुरमुटे पर उल्लू, गीध और चीलों की जमात बैठी थी। दूर से खेत में उस पार से तैर आयी सियार की कानफोड़ भूख भरी चीख।

गंदगी-अंधकार, हाड़, राख, कोयले भरा मसान। चिता में से कोई सड़ी-गंदी हवा आकर चारों ओर भर गयी।

संगियों ने जगू से कहा, ''उस छिनाल के गहने लेकर घर में नहीं गये, अच्छा किया। अमंगल हो जाता। देखा कैसे छटपटाकर मरी है! अपने पेट के शिशु को मारने चली थी, खुद नहीं मरती क्या? धर्म क्या दुनिया में नहीं रहा?''

उस जली राख में आंख फिराते फिराते चिढ़कर जगू बोला, ''बस करो, बस करो! दूसरों का विचार तुम न करो। आदमी क्या आदमी को ठीक से समझ सकता है?''

मृत कुंई[1]

चिलचिलाती दुपहर!

सांय सांय हवा। फिर लू चल रही। उसमें पेड़-पौधे, लता-पत्तर, झाड़-झंखाड़ गरमी में सब सीझकर लरज गये। झुरमुटों वाली पथरीली जमीन की छाती चीरती हुई आ रही है दूर से किसी कपोत की आवाज।

तंटिकटझर के पास एक आम के तले बैठा लोचन टीन पीट-पीटकर चिड़ियां उड़ा रहा है। आगे खेतों में पीले धान की बालियां तैर रही हैं। खुली हवा की लहरें।

लोचन के एक हाथ में ताड़पत्तों का छाता, जिसमें खोंसी गयी है भरत पंछी की पांख, और झूल रहा है पतला धागा। बीच बीच में वह ढोल बजाकर गीत गा रहा है--

> "उड़ि उड़िगला गेंडालिया, झाड़िदेला पर।
> तु छाड़िलु बापा-भाई, मुं छाड़िली घर।"[2]

"वाह... वाह...! खूब कहा!... एक आम तोड़!"

लोचन गीत बंदकर चौंक गया। मुड़कर देखा। कांसे का बड़ा कटोरा लिये सुंदरी खड़ी है। पूछा--"ऐं, इस समय किधर?" उसने बताया, बापू के लिए खाना लायी थी।

सुंदरी फटी साड़ी पहने थी। माथे के बिखरे बाल बाहर आकर इधर-उधर उड़ते गले में गुंजा की माला में छुप गये थे।

लोचन थोड़ी हंसी करने को बोला, "कहां, मेरे हाथ क्या आम तक जाते हैं?"

"मरदूद, तू पेड़ पर चढ़ना नहीं जानता?"

"वाह वाह, कानखजूरे मेरी सारी देह फुला देंगे।"

लोचन को हैरान करने का मन नहीं हुआ सुंदरी का, कुछ सोचकर उपाय निकाला। बोली--"इतनी बात? एक निशाना चला।" और वह आम की एक सूखी लकड़ी ले आयी कहीं से, "ले, एक बार इसे ही फेंक।"

लोचन ने निशाना साधकर लकड़ी फेंकी। एक बार में पांच-दस आम टपाटप झड़

---

1. पोखर-तालाब में उगने वाला एक फूल।
2. उड़ गया पंछी छोड़कर। तूने छोड़ा बाप-भाई, मैंने छोड़ा घर।

गये। पेड़ पर बैठी चिड़िया किचर-मिचर कर उड़ गयी।

सुंदरी एक अमिया दांत से काटती हुई खट्टे मुंह से बोली, "उई, ये तो बिलकुल स्वाद नहीं। मांकड़खिया पोखर के उस पार कच्चा स्वादी आम है। वो बहुत स्वादिष्ट है। उसका टुकड़ा मुंह में डाल लो, सात भात हजम कर देगा।"

लोचन समझ गया। मगर सुंदरी की बात पर चलने की हिम्मत नहीं हुई। वह जानता है, मांकड़खिया पोखरा यहां से कोस भर है। आने-जाने में घड़ी भर से कम नहीं लगेगा। इधर उसका मालिक सांमत दंत-मंजन करते हुए अभी इधर हाथ-मुंह धोकर आ पहुंचेगा।

बात टालकर बोला, "कल सवेरे थोड़ा तड़के आ जाना, उधर मांकड़खिया के आम तोड़ दूंगा।"

सुंदरी अमिया का चटकारा भरती हामी भर कर चली गयी, झूमी-झामती हुई।

फिर से लोचन टीन बजाता चिड़िया उड़ाने लगा--"हो हो हो!"

सुंदरी लोचन के आगे रोज कोई-न-कोई फरमाइश करती--कभी लता पर से गूंजा तोड़, कभी सूत की फांस बना छोटी मेंढकी पकड़। लोचन मालिक के घर का काम करते करते, जहां तक होता छोटी-मोटी फरमाइश पूरी कर देता।

लोचन और सुंदरी अड़ोस-पड़ोस में रहते हैं। रोज सुबह उठते ही एक-दूसरे से भेंट-मुलाकात, हंसी-मसखरी, रूठना-मनाना। तो भी इस नेह में बढ़ते बढ़ते लोचन चौदहवें और वह ग्यारहवें बरस में पांव रख चुकी थी।

अगली सुबह सुंदरी बेर तोड़ने, साथ में अपनी सहेलियों--अपन्नी और सेवती को लेकर उधर गयी थी। पौ ठीक फटी भी न थी। नीम अंधेरा। गांव के छोर पर, छान पर बैठे चौकीदार तोमीज खां के मुरगे ने बांग दी--कुक्क ड़कू.....ऊ.....ऊ....ऊ....!

मांकड़खिया खेत में रखवाली करने की आज लोचन की बारी है। दातून चबाता चबाता, बगल में दो मुट्ठी भाजा[1] लेकर निकला था। कुछ दूर ही गया था कि कांटों पर पैर पड़ गया। लहू-लुहान हो गया। आज सुबह, पता नहीं, किस का मुंह देखा है।

खेत पर पहुंचा तो ठाकुर जाग गये थे। लाल लाल, हाल ही में जनमी बछिया की तरह, सूरज देव अचानक पहाड़ की ओर से आकाश में कूद आये। लोचन ने जीभ-छेली बनाकर मुंह साफ किया। भाजा निकाला, खा लिया। नाले का पानी पिया पेट भर। फिर रोज की तरह चिड़ियां उड़ाने लगा--'हे हे हे!'

घड़ी भर बाद सुंदरी आ पहुंची। बेर खाते खाते होंठ स्याह पड़ गये हैं। माथे पर खोंसे है फूलों का गुच्छा। गले की माला कांटों में उलझकर लापरवाही में टूट गयी है। गला एकदम नंगा दिख रहा है।

"आम तोड़ देने को कहा था," काले दांत दिखाकर पूछा सुंदरी ने।

---

1. भुना हुआ चावल।

लोचन ने उधर देख पूछा, "सुराईदार गरदन....सुंदरी!" उसके अंदर की शैतानी हो-होकर हंस पड़ी। "...सुराईदार गरदन। दही की हांडी....सेड़ली, पेड़ली....छिः!"

अपन्नी और सेवती हें-हें कर हंस पड़ीं। सुंदरी का गोरा चेहरा अचानक सुर्ख हो गया। गुस्से में भर वह लोचन को गाली देती जा रही थी। मगर खुद को एकदम संभाल लिया। फनफनाकर बोली--"आम तोड़ दोगे या नहीं? बोलो। मैं चली, ज्यादा नखरे निकालता है?"

लोचन ने सुंदरी का गुस्सा देख लिया। चिढ़ाने के लिए बोला, "तू मुझे बदले में दो पैमली बेर देगी?"

सुंदरी के पास बेर थे ही नहीं। इसी बीच हाथ खाली हो गये थे। उसने खाली पल्लू झाड़ दिया उसके सामने।

लोचन ने हंसी में चिढ़ाकर कहा, "निगल गयी सब? तुझे कभी पूरा पड़ेगा?"

गुस्सा ज्यादा हो तो नाक में बोलने लगती है रुआंसी सी। सुंदरी का पारा चढ़ गया। भन्नाकर रुआंसे स्वर में कहा--"अमिया नहीं देगा तो?....ठीक है।"

लोचन ने देखा, सुंदरी खफा हो गयी। स्वर बदल, नरम आवाज में खोला, "ना... ले... अभी देता हूं, जरा रुक। तू गुस्सा हो गयी?" दौड़कर नीचे से सूखी लकड़ी उठायी और संवारा उसे।

अपन्नी ने अंगुली दिखाकर बता दिया, "इस सीध में जो आम दिखता है उसे झाड़ दो तो देखें!"

लोचन ने निशाना साधा। किंतु न आम ही झरा और न ही लकड़ी वापस आयी।

ढूंढ-ढांढकर एक और लकड़ी लाया। निशाना साधकर फेंकी, लेकिन इस बार फिर लकड़ी अटक गयी।

अपन्नी और सेवती 'हें हें' हंस पड़ी। नाक में 'सें सां' करती सुंदरी भी हंस पड़ी।

लोचन का चेहरा लाल हो गया। आहत पौरुष और मान गुस्से में फूल उठे।

पागल की तरह दौड़ा। चारों ओर। मगर लकड़ी नहीं मिली। आखिर गुस्से में एक और थोथी लकड़ी फेंकी। उसमें लतर वगैरह लगी थी। सो ऊपर तक पहुंच ही न सकी। चार बार फेंककर भी आम नहीं झाड़ सका। उलटे ठोकर खाकर गिर पड़ा।

मौका देख रही थी सुंदरी, बदला लेने का। बोल उठी, "तेरे हाथ से जूं तो मरती नहीं, चला है निशाना लगाने! तुझे निशाना लगाना आता भी है? एक आम नहीं झाड़ सका, लाज नहीं आती?"

लोचन ने जरा गुस्से में सुंदरी की ओर कनखियों से देखा। बोला कुछ नहीं, फिर फेंकी। इस बार भी आमों से नहीं टकरायी।

अब सुंदरी ने कहा, "हमारी गली के बन्ना का निशाना देखा है? वो होता तो एक बार में आम झट से नीचे आ जाता। इस मुए का न निशाना, न फिसाना।" फिर उसने

कहा, "चल री.... चल। बकरी की टांग से कभी खला[1] का काम हुआ है?"

अपन्नी ने हंसते हुए 'हां' भरी। जाते जाते मुंह फेरकर बोली, "खूब, बहुत आम खाये, सेवती जीजी! मैं बेहया... मेरे जैसी कोई और भी है?"

बात की धार लोचन की छाती चीर गयी। अब वह और काबू न कर सका। गुस्से में बोला, "जा... जा अपने बन्ना खसम के पास! वही तोड़ देगा तुझे आम। कहने को आ रहा है मन मुंह में.... ।"

सुंदरी ने मुड़कर देखा। बात लग गयी। मगर लोचन के साथ कलह करने की हिम्मत ने उसका साथ नहीं दिया। सुंदरी को ऐसी दशा में देख अपन्नी उसका पक्ष लेकर जोरदार आवाज में बोली--"क्या बोला, रे मरदूद? खिसियानी बिल्ली खंभा नोचे। ठीक है, तू गली में चल। तेरा दिमाग ठिकाने लगा दूंगी मैं।" गुस्से में सुंदरी को खींचती, दमदमाती ले गयी।

अमराई में सुंदरी के साथ लोचन की फिर भेंट गुई। मगर एक-दूसरे से कोई बोला नहीं। सुंदरी की आंखों से आंख मिलते ही लोचन ने अनदेखी कर नजर नीची कर ली। सुंदरी ने भी मुंह मोड़ लिया। दमकती, अनदेखी कर दूसरी ओर चली गयी।

सांझ ढलने पर हवा के संग पका धान समेटती सुंदरी फिर उधर से लौट आयी। लोचन भी सुंदरी को देखकर जोर से टीन बजाने लगा। ऐसा लगा मानो वह काम में बहुत व्यस्त है। रास्ते पर दोनों फिर आमने-सामने पड़ गये। राह छोड़ दूसरी तरफ चल पड़े। जैसे-जैसे दिन बीतने लगे, दूरी ही बढ़ती गयी, कम नहीं हुई।

इसी बीच लोचन ने कई बार सोचा--सुंदरी को आवाज दूं, सिर छूकर सौगंध दूं कि कभी नहीं रुठेंगे हम... मगर ना... नहीं--जुबान से बात निकलती ही नहीं, गले तक आकर लौट जाती है वापस।

मैं, छिः छिः! इस जरा सी छोकरी के आगे सिर नवाऊं?

खैर, शुरू शुरू में दोनों एक-दूसरे पर जैसे गुस्से हुए थे, अब मन में वैसी, उतनी गरमी नहीं रही। बात का फैसला करने को दोनों व्याकुल थे। मगर पहले कौन बोले? कैसे बात शुरू करें? यही तो है मुश्किल। लेकिन सुंदरी खुशमिजाज इन दिनों वह लोचन के सामने पड़ने पर थोड़ा मुड़कर छुपे छुपे मुस्कुरा लेती, या फिर आंखों में कुछ गिर गया है--इस बहाने पल्लू में मुंह ढांपकर होठों की हंसी दबा लेती।

कभी बस्ती में वन-भोजन होता या भागवत गोसांई की पूजा समाप्त होती। दोनों को एक साथ रहने की जरूरत पड़ती तो किसी को बिचौलिया रख लेते। लेकिन बोल जाने के बाद लाज से जीभ दांतों से दबानी पड़ती उसे।

धान कटाई के बाद खेत की पूजा होती है। उस दिन सब मिलकर खूब जोरदार रसोई पकाते, चूल्हा लगाकर भात पकाने का भार होता सुंदरी पर। "गीली लकड़ी न जलती तो

---

1. खलिहान।

वह लोचन को सुनाकर कहती– "मुई लकड़ी भी नहीं सुलगती, कोई जरा सा फूस पकड़ा दो।"

इतने लोग हैं, मगर लोचन जाकर फूस के दो-चार पूले ले आता। उन्हें सुंदरी के आगे फेंककर पेड़-पौधों से पूछने की तरह कहता, "और क्या चाहिए?"

सुंदरी को एक मटका पानी चाहिए। अपन्नी को उस की ओर धकेलकर कहती, "बोलना, मटका भर पानी ले आये कोई। मैं भात उतार रही हूं।"

इसी तरह दिन, पखवाड़े, माह और एक बरस बीत गया--दोनों में से कोई दूसरे से नहीं बोल पाया। सोचकर रह जाते। हालांकि इसी बीच लोचन ने सुंदरी से बातचीत के लिए उसके मौसेरे भाई बिकला की खुशामद की थी। मगर बिकला ने बात खोल दी और लोचन के साथ के लड़कों ने चिढ़ाना शुरू कर दिया। तब से लोचन ने कभी ऐसी जग-हंसाई वाला काम नहीं किया, फिर दुबारा।

खुदरकुणी[1] की पूजा का पर्व बहुत बड़ा पर्व है। बस्ती की छोरियों के मुंह पर हंसी ही नहीं थी। हर बरस सुंदरी वगैरह के लिए देवी की छोटी सी मूर्तियां बनाते समय लोचन की सहायता ली जाती थी। मगर इस बरस लोचन जान-बूझकर दूर दूर फिरता रहा। उससे हरताल, खड़ी, सुनहले कागज आदि लाने के लिए कहलवाया। लोचन वे चीजें लाया भी, मगर हाट से लाकर उसने किसी और के हाथ उनके पास भिजवा दीं। इस बार उसके चेहरे पर और वरसों जैसी मुसकान, रौनक या उत्साह नहीं है।

इस बरस खुदरकुणी के पर्व पर पता नहीं क्यों, लोचन का मन बहुत खराब रहा। इस बार देवी-पूजन कर लड़कियों के नये पोखर से लौटने के बाद, लोचन जाकर घड़ी भर पोखर के घाट पर बरगद के तले गुमसुम बैठा रहा। याद है, हर बरस इसी दिन विसर्जन के समय सुंदरी कैसे उसकी मदद मांगा करती थी। इस बरस मूर्तियों को पोखर के बीच तक धकेल देने के लिए सुंदरी और उसकी सहेलियां उससे अनुरोध करती थीं। लोचन पानी में आधा तैरकर हाथ-पांव पटक जैसे-तैसे सबसे आगे तैरकर अपनी बहादुरी दिखाता। इतना ही नहीं, पूजा के पहले सुंदरी उसे पोखर से कुंई के सारे फूल तोड़ लाने के लिए दो दिन पहले से ताकीद कर देती थी। कहीं दूसरी बस्ती के छोकरे पहले उठकर फूल न ले जायें, इसलिए लोचन को वह रात बीतते--न बीतते नींद से जगाकर तड़के ही पोखर की ओर भेज देती। और तुरंत खुद उस के पीछे पीछे एक खूब बड़ी डलिया लेकर निकल पड़ती।

पुरानी बातें याद करके लोचन के मन में न जाने कैसी हलचल मच उठी। पोखर के पानी पर तैरते हुए विसर्जित फूलों को अपलक निहारता रहा।

पोखर के नीले पानी पर एक जली दिहूटी[2] को साथ लिये पिछले बरस का फूलों का

---

1. एक देवी, जिसकी पूजा क्वांरी लड़कियां करती हैं।

2. दीप

गुच्छा बना बेड़ा तैर रहा था। चीकट मिले चिकने पानी पर एक बुझी दिहूटी की छाया नाच रही थी। लोचन उधर देखता खोज रहा है अपने जीवन के उलझे धागे में खोया हुआ एक छोर।

कल पूजा की आखिरी पारी है। पूजा का समापन होगा। भोर का तारा उगकर बुझ चुका है। कांटों की लता पर, हरे पत्तों पर, चांदनी फीकी पड़ने लगी है। चारों ओर भोर का उजाला फैलने लगा है।

पोखर के किनारे पर ही सुंदरी अपने छोटे भाई बुरुंदा को लिये नहा रही थी। संगिनी-साथिनें नहा-धोकर जा चुकी हैं, उसे चूड़ियों को रगड़ते रगड़ते देर हो गयी। सुंदरी को देख वह बरगद की जटा पकड़कर रुक गया। वह घाट पर नहा रही थी। लोचन उधर से बटाई वाले खेत पर जा रहा था। सुंदरी की देह पर गीली साड़ी चिपककर, उस पर अधबुझे चांद की उजास में कुछ कुछ धुंधली सी दिख रही है। पास बैठा है बुरुंदा।

पोखर में खिले हैं बेशुमार कुंई के फूल--लाल, नीले, सफेद। तरह तरह के रंग की पोशाक पहन ताजा खिले फूल हवा में झूम-झूमकर नाच रहे हैं।

लोचन को याद आया--पिछले साल इन्हीं दिनों एक लाल कुंई लाकर सुंदरी के गले में डाला था और उसी लाल लाल फूल को पाकर सुंदरी के सुर्ख होठों पर मुस्कान की पतली लहर आकर लौट गयी थी। वह धुंधली छवि आज लोचन के मन में फिर से खिल उठी है। उसने सोचा--सुंदरी हर बरस की तरह आज भी उससे फूल तोड़ने का अनुरोध करेगी। मगर सुंदरी उसे देखकर भी चुप्पी साध गयी। पल्लू थोड़ा और खींच मुंह ओट में कर लिया।

लोचन इधर-उधर कर सुंदरी के भाई बुरुंदा को बीच में रख कहने लगा, "क्यों रे बुरुंदा, आज कुंई के फूल नहीं लेगा? कल तो बरत है, पूजा है।"

बुरुंदा कुछ नहीं समझा। सुंदरी ने फुसफुसाकर उसे समझाया, "पूछ तो, फूल हैं कहां?"

बुरुंदा ने पूछा, "फूल कहां हैं?"

लोचन ने कहा, "लेगा?"

सुंदरी ने फिर कान में बुरुंदा को सिखाया--"कहो--हां, दे।"

बुरुंदा ने वैसे ही कह दिया--"हां, दे....."

इतने दिन बाद किसी की मध्यस्थता में सुंदरी की फरमाइश पाकर लोचन का मन खुशी से भर गया। थोड़ा मजा लेने के लिए बोला, "तू क्या करेगा? तूने क्या बरत रखा है?"

बुरुंदा की अकल चकरा गयी। क्या जवाब दे, कुछ नहीं समझ सका। अपनी दीदी की ओर देखने लगा। सुंदरी ने आखिर सिखाया--"बोल, मैं न करूं तो क्या हुआ, दीदी ने तो बरत रखा है। दीदी कर लेगी पूजा। जानकर यों भोला बनता है?"

बुरुंदा ने ठीक वही बात कह दी। अब तो लोचन का उत्साह कुछ न पूछो, कितने दिन बाद आज सुंदरी ने फरमाइश की है! इस अवसर की तो आस भी नहीं थी। मान

करके बोला, "मुझसे बिना बोले मैं भी फूल नहीं दूंगा।"

सुंदरी ने बुरुंदा के कान में कह दिया--"तू पहले बोले तब तो कोई फिर बात करे।"

बुरुंदा ने तोते की तरह दोहरा दिया--"तू पहले बोले, तब तो कोई बात करे।"

लोचन बड़ी हैरानी में पड़ गया। वह सिर झुकाने को तैयार नहीं। फिर भी आज उसे बहुत खुशी हो रही थी। सोचा--"कुंई फूल ला देने के बाद सुंदरी जरूर बात करेगी, जायेगी किधर फिर?

लोचन ने कच्छा कसा। पोखर के उत्तरी किनारे के पास घुटनों तक पानी है। वहां खूब कुंई खिले हैं। लोचन ने उन्हें तोड़ने को हाथ बढ़ाया।

सुंदरी लोचन को सुनाकर ऊंचे स्वर में बोली बुरुंदा से--"इन गोबर कुंई का क्या करेंगे, बुरुंदा? हमें तो लाल कुंई चाहिए।" लोचन को सुंदरी की इस परोक्ष बातचीत में भी आनंद बोध हुआ। इसी में डूबा था, मानो कोई आधीसुनी अनसुनी चौपदी का छंद। कोई अति पुराना परिचित गीत।

पोखर के बीच खिली है लाल कुंई। डूबे चांद के लिए सोचते सोचते मानो उस फूल के नरम गाल पर जमी है कई दिन की दुख की छाया। नीले पानी पर फूल की लाल-लाल छाया चलकती नाच रही है जैसे।

लोचन के मन से सारा दुख-दरद अपने आप कहीं छू मंतर हो गया। वह पानी में उतर गया और सात-आठ कदम आगे जाये तब फूल हाथ आये। इतना सुंदर फूल देख सुंदरी का मन कैसे खुशी से खिल जायेगा--वह कल्पना भी नहीं कर पाया।

छाती तक पानी में चला गया वह, मगर फूल तक हाथ नहीं पहुंचा।

लोचन ने कमर की धोती और कसकर बांधी। और गले तक पानी में गया। दो हाथ और रह गया है फूल। लोचन और गहरे में उतरा, यहां तक कि अंगूठे पर उठ गया। हाथ बढ़ाया फूल तोड़ने के लिए।

किनारे पर सुंदरी किलककर बोली बुरुंदा से, "ले रे बुरुंदा! तेरा फूल आ गया।"

इतनी दूर पर भी लोचन को सुनायी पड़ गये वे शब्द। आज कितने दिनों बाद बादल छंटे हैं और मन में सूरज उगा है! उसने और एक कदम बढ़ाया। यह फूल पाकर सुंदरी जरूर बात करेगी--इसी सपने में वह विभोर हो उठा। फूल की ओर झुक गया।

आगे एक गढ्ढा...लोचन डुबकी लगा गया। मगर लोचन को कुछ-कुछ तैरना आता है। वह दो घूंट पानी पीकर कुछ परेशान हो गया था। फिर भी तैर-तैरकर कुंई की नाल पकड़ ही ली।

फिर पूरा जोर लगा उसे खींचने लगा। एक बार, दो बार खींचा। मगर फूल सहज में टूटा ही नहीं। तीसरी बार खींचा तब तक लोचन का आधा दम निकल चुका था।

अब की देह का सारा दम लगाकर दांत भींच आखिर एक बार और खींचा। फूल उखड़ आया। लाल लाल, सुंदर कुंई फूल!

अब तक लोचन थक चुका था। कुंई फूल पकड़ किनारे की ओर आने की कोशिश की, लेकिन उसके हाथ-पांव अवश हो गये। तभी उसे लगा जैसे उसके पांव फंस गये हैं। खींचकर निकालने की चेष्टा करने लगा। मगर लगा जैसे किसी पतली डोर में बंध गये हैं। लोचन लाचार हो दो-चार डुबकी खा चुका था।

तभी सुंदरी किनारे पर बुरुंदा से कह रही थी—"देखो, लोचन भैया कैसे डुबकी लगा रहा है!"

वह इसी बीच सात-आठ घूंट पानी पी चुका था।

कुछ कुछ होश था। किसी तरह पानी के ऊपर सिर निकाल चीखा—"सुंदरी....ए.. ..सुं.....न्द....!" उसने सोचा, सुंदरी उसके पास दौड़ी आयेगी।

मगर उसके मुंह में पानी भर गया। आवाज सुनाई नहीं पड़ी। सिर्फ गों गों करता रहा। सुंदरी ने सोचा—लोचन पहले बात करने के लिए यह खेल दिखा रहा है।

लोचन के पांव पोखर की दलदल में फंस गये थे। उसे छटपटाकर हाथ-पांव पटके। कुंई का फूल तो हाथ से छूटकर पानी पर तैरने लगा था, लेकिन लोचन ऊपर नहीं आ पा रहा था।

पानी पर सिर्फ फूल को तैरते देख बुरुंदा ने कहा, "ऐ दीदी! देख तो, लोचन भैया डूब रहा है!"

सुंदरी ने उसे धकियाकर कहा, "धत्... कलमुंहा...छोकरा! आग लगे तेरी जीभ पर, वो क्या तैरना नहीं जानता जो डूब रहा है! कटी नहीं रे तेरी आग लगी जीभ!"

अंधारुआ

गले में हाड़ बांधा। दांत में तिनका दिया। जीभ रहते हुए भी तुतलाना पड़ा पहली प्रधान को। घर घर ठीकरा लिये फिरना पड़ा।

स्याह अंधेरे में अपनी मोटी-सोटी सांवली बांह ऊपर उठा, गांव के छोर वाली दुकान के पास बैठ पहली सबसे अपने मन की बात कहने की चेष्टा करता। तरह तरह के दरदीले बोल निकालकर ग्राहकों की जेब से पैसा-धेला झाड़ने का उपाय करता। कोई देता, कोई मुंह मोड़कर चला जाता। अधिकांश उसकी ओर दांत निकालकर हंस पड़ते; उसे चिढ़ाते। पहली माटी में लोटता। बाल बिखेरे, हाथ पसारे बहुत कुछ कहता। सब कहते—"फरेब कर रहा है।"

काली-कलूटी देह, गंदे कपड़े, उबड़-खाबड़ छाती, काली रात के साथ मिलकर अलग से पहचान में ही नहीं आता वह।

जिद्दी बच्चे दूध न पीयें तो मांएं उन्हें यह कहकर डरातीं--'देख, देख, वो अंधारुआ आया। गांव के नाके पर बैठा जीभ लपलपा रहा है।"

पहली पुरस्तम (जगन्नाथ पुरी) जा रहा है। राह में सांझ होने पर किसी गांव में रुक जाता। सूरज डूबने से पहले दो-चार दाने मुंह में डाल लेता। किसी के बरामदे में दो पूले पुवाल बिछाकर पांव पसार देता। वह जिस गांव जाता उसके पीछे छोकरे ताली पीटते, दौड़ते। आवारा कुत्ते भी 'हाउ हाउ' भौंकते, फिर 'सूं-सां' करते पांवों में दुबकते, उसे सूंघकर चले जाते।

अंधारुआ दिन भर चलता और फिर सांझ ढले तक भीख मांगता। अंधेरी रात। उसका फूला पेट किसी गर्भवती औरत की तरह नीचे की ओर लटक आया है। लेकिन उसी हालत में चलते-फिरते अंधेरे की तरह लाठी लिये अंधारुआ चलता रहता...।

कभी कभी अंधारुआ सपना देखता--पके खेत में लहरा रहा है धान। चोखे चोखे धान के पौधे-ही-पौधे, बेशुमार। अरबी की क्यारी की रेख में सांप, बिच्छू और तिलचट्टों का मेला लगा है। चारों ओर आमिषी गंध पाकर चील भी झुंड-के-झुंड उड़ रही हैं।

उसी घने अंधेरे में मचान बनाकर खेत के बीच एक जगह आग जलाये पहली रखवाली

कर रहा है। धान की जड़ों में जमा है ढेर-की-ढेर खाद। खाद नहीं, हाड़ है। पहली के हाड़--उसकी स्त्री गेली बऊ के हाड़...!

पहली को याद आता है--घोर ठंड के दिनों में भी कैसे खूब तड़के अंधेरे में केवटों के घर चूड़ा कूटने की आवाज सुनते ही गेली बऊ ठंड से कांपती गली, रास्ते, कुरी, अमराई, नाले तक घूम-फिर टोकरी भरकर गोबर चुग लाती और पिछवाड़े में ढेर कर देती...। और पहली अपना खून-पसीना बहाकर उस सारी खाद को कूट-कूटकर चूरा बनाता, ले जाकर खेत में बिछा आता...।

केवल इतना ही नहीं, खेत की पत्थर सी सख्त माटी में हल का मूठ पकड़े चलता तो कितना कष्ट होता। यह याद आने पर पहली के मन के भीतर गहरे तक सिहरन दौड़ जाती। माथे पर आग के लौंदे की तरह सूरज, नीचे तपती-जलती माटी...दोनों पैर सीझकर परत-दर-परत छिलके उतरते जाते।

पहली की इतनी हाड़तोड़ खून-पसीने की मेहनत को सार्थक कर जिस दिन पके खेत में बेशुमार धान के पौधे लहराकर हवा में आंख-मिचौली खेलने लगते, उस दिन उसके जीवन में बड़ा महोत्सव हो जाता। सब-कुछ भूलकर वह देखता रहता अपनी क्यारियों की ओर...।

उसके बाद एक दिन...

पहली सोच रहा था--

स्याह अंधेरा। मंगसिर[1] की सरसराती बरफीली हवा कलेजे को चीर रही है। पहली मचान पर एक गमछा ओढ़े, चित लेटे, बटुए से चूना और तंबाखू का पत्ता हथेली पर मल रहा है। खेत में कोई चबर चबर आवाज आयी। पानी-कीच में धान के पौधे रौंदता कोई चारों ओर मानो मथता फिर रहा है। पहली ने सोचा, कोई बराह[2] या भालू होगा शायद।

गुस्से में लाठी तानकर खड़ा हो गया।

धान के पौधों की सांवली सी कतार को चीरती पानी की लकीर चमचमाती दिख रही है। घने अंधेरे में पहली की आंख में पड़ गया खूब बड़ा काला-कलूटा कोई जंतु। नाक से तेज सांस निकल रही है।

पहली उसके पीछे पीछे दौड़ा। मगर वह काली छाया धान के पौधों को कूदती-रौंदती भाग गयी।

धान का एक भी पौधा रौंदा जाता तो पहली की देह का अंजुरी भर खून सूख जाता।

आगे है एक बड़ा गड्ढा। जंतु और आगे न जा सका, मुंह फिराकर लौट आया वापस। पहली की लाठी धम् से जा लगी उसके सिर पर, ठीक बीचोबीच।

---

1. अगहन मास।

2. सूअर।

पहली ने बिजली की चमक में देखा--दो बड़े बड़े पैने सींग ऊपर की ओर सीधे चले गये हैं।

पूंछ उठाकर जंतु एकदम घबराकर भागा। पहली ने देखा, कुछ दूर जाकर वह कांटों के झुरमुट में धड़ाम से गिर पड़ा है। और फिर कीचड़-गारे से उठ ही न सका दुबारा।

पहली मचान पर आकर चैन से सो रहा। उसने रात में लेटे लेटे सपना देखा--कोई विशालकाय कलूटा कंकाल...उसे गीध-कौवे घेरे हुए हैं। एक भूखा गीध उस लाश की नाभि में चोंच धंसा रहा है। लाश के चारों खुर किसी ने काट डाले हैं, कुल्हाड़ी से।

पुरोहित जी ने पोथी देखकर बताया--"तीन पाद दोस लगा है। पुरस्तम[1] जाकर मुक्तिमंडप[2] के आगे प्रायश्चित किये बिना पातक नहीं छूटेगा। प्रायश्चित न होने तक मुंह में तिनका रखोगे, किसी से बात नहीं करना।"

गांव भर में फुसफुसाहट चली--"पहली हाड़ बांधेगा, गोहत्या की है।"

उस दिन के पहली और आज के अंधारुआ में कितना फर्क है।

पहली सोचता--उस दिन पद्म पुराण पढ़कर पुरोहित निधि मिश्र ने उसे क्या कहा था। डर से चेहरा फीका पड़ गया। आंखों के आगे तैर गया जलती आग का चूल्हा--बड़े हंडे में तेल उबल रहा है। इधर-उधर देखा। थर्रा गया। आंखों के आगे तैर गये भैंसों के मुंह जैसे दो जमदूत। उन्हीं का चित्र तो पंडितजी महाराज पुराण में टिमटिमाते दीप के उजाले में दिखा रहे थे।

तीनरंगी वह तस्वीर याद आयी। कितनी बड़ी बड़ी आंखें, कैसे सींग, दोनों हाथ बंदर की तरह रोयेंदार, पैने पैने नाखून। वह डरे बच्चों की तरह नींद में बिलबिला उठा।

"आया... वो... आया... लो...!!"

कभी कभी राह चलते सूनी दोपहर में थककर पेड़ की छांह में बैठ जाता। चारों ओर सुनसान, सांय सांय। उसे याद आयी नीचे गांव वाले रामा गौड़ की बात। गाय मारकर छुपा दी, पर जब मरा तब जीभ पर घाव-ही-घाव हो गये थे। कीड़े पड़ गये, मुंह में कुलबुलाने लगे। कितना गू-मूत, खून-मवाद होकर सड़-सड़कर जीया। फिर भी क्या प्राण सहज ही छूट पाये उसके?

आखिर बस्ती वालों ने पूछा--"क्यों रामा, क्या किया है? बोल दे। वरना सहज ही पराण नहीं छूटेंगे।"

रामा मान गया, गाय मारी थी। हिचकी उठी। तीन बार गाय की तरह रंभाया और प्राणवायु उड़ गयी....!

इसके आगे पहली सोच नहीं सका। उसे सुनायी पड़ता, कोई मरखनी गाय खूब दूर

---

1. जगन्नाथ पुरी।
2. पुरी के जगन्नाथ मंदिर में स्थापित धर्म संबंधी विषयों पर विद्वानों की परिषद।

पर रंभा रही है। डर के मारे पेड़ को कसकर बांहों में भर लेता...

शायद पास ही दो-एक गायें चर रही हैं। धौली, मटियाही, और उनकी बछिया कूदती चारों ओर फिर रही हैं। पहली को लगा, सींग उठाये वे सब उसे ही मारने आ रही हैं। लाठी लेकर उतर पड़ा... घबरायी आंखों से इधर-उधर देखा...।

कभी कभी पहली सपना देखता—कोई मरी काली गाय पेट फुलाये उसके आंगन में पड़ी है। पेट में छोटी सी बछिया है। गेली बऊ की मां चबूतरे के पास बैठी चुपचाप रो रही है, और उसका मरा बच्चा फिर जी गया है। वह बापू बापू किलकता उसे पुकार रहा है। पहली की नींद झट से टूट जाती। उठ बैठता, जैसे दूर कोई सूं-सां करता चर रहा है।

कभी कभी राह चलते पहली थककर खड़ा रह जाता। उसे लगता मानो कोई पीछे से उसे आवाज दे रहा है। पैने पैने सींग, हाथ में फांस बनी रस्सी। उसे याद आता रामा गौड़ का चेहरा। खून-मवाद और कुलबुलाते कीड़े। मन को खुद-ही-खुद कुछ समझाता, फिर आगे अपनी राह चल पड़ता। सौ बार बड़े ठाकुर (देवता) का नाम लेता...!

पुरी का बड़ दांड[1]। सैकड़ों कोढ़ियों के बीच पहली भी ठीकरा लिये भीख मांग रहा है। बड़ देवल[2] पर ठाकुरजी की लंबी तीन मोड़ की ध्वजा फहरा रही है। पहली एकटक उधर ही देख रहा है। बड़ दांड पर पैर रखने के दिन से, उसके मन में थोड़ा साहस आया है। अब वह पहले की तरह न बड़बड़ाता है और न ही भयंकर सपना देख चौंकता है। पास लेटी कोढ़ी औरत पूछती है—''तू कितने दिन हाड़ रखेगा, बाबा?''

पहली अंगुली पर गिन, अंगुली दिखाकर इशारा करता--'सात दिन।' सात दिन बाद वह गांव लौट आया। गेली की मां सिलवर के बने हाथ के कड़े, बरतन-भांड़े बेच-बाच कर पांच रुपये लायी थी। उन्हीं रुपयों को अंटी में रख पुरस्तम गया था वह। घर भर की चीजें बेच, पुरस्तम में अपना पातक छुड़ाकर अब वह वापस आया है।

एक महीना इक्कीस दिन पूरे हुए। पंचगव्य लेकर, ब्राह्मण को भोजन करवाया। मुक्तिमंडप के गोसाईं महापुरुषों को कुछ दे-दिलाकर उनकी चरन-धूल और आशीर्वाद लेकर घर लौट आया। गेली की मां के लिए महाप्रसाद का कुडुवा[3] और सूखे निर्माल्य[4] की पोटली भी लाना न भूला था। लौटते समय उसके पांव जमीन पर टिकते ही न थे। मन खुशी में उछल रहा था।

उतरती सांझ के झुकमुके में गांव पर उसका हलका-झीना परदा पड़ रहा था कोई। गांव के सिरे पर महुए के पेड़ पर मधुमक्खियों की सांझ की सभा चल रही थी। गेली की मां अपना भूखा मुंह साड़ी के आंचल में ढांपे तुलसीचौरे के पास संझादीप जला सिर झुका

---

1. जगन्नाथ मंदिर का चौड़ा पथ।
2. जगन्नाथ मंदिर।
3. पके चावल की छोटी हांडी।
4. महाप्रसाद का सुखाया हुआ भात।

रही थी। पीछे से पहली ने आवाज दी--"घर में सब ठीक-ठाक तो है, गेली की मां?"

गेली की मां ने जो जबाब दिया उससे पहली का तो हलक सूख गया। घर लौटने की हंसी-खुशी पलक झपकते ही कहीं गायब हो गयी।

"पंद्रह दिन से घर में चावल नहीं, मांडिया बकरी खा गयी। तीन दिन हुए--जो शीत के दिन वाली झड़ी शुरू हुई थी उसमें रसोई की भीत ढह गयी। और जो खेत में धान पैदा हुआ...जमींदारजी ने, जब तुम पुरस्तम गये, पीछे से उसे अगले बरस के लगान के बाबत जब्त कर लिया। अब पिछले बरस का लगान महीने भर में दाखिल न किया तो घरबार कुड़क करने की धमकी दे गये हैं।"

सिर पर हाथ रखे उसने सब सुन लिया। कुछ नहीं कहा। पुरी से लाया प्रसाद लेकर दोनों ने किसी तरह रात काट दी।

पहली ने सुबह देखा--चूल्हे पर चढ़ाने के लिए चावल नहीं, साग-तरकारी तो दूर, रसोई घर की भीत ढेर हुई पड़ी है। एक कोने में दीमक की बांबी सिर उठाये बहुत बड़ी हो गयी है। हांड़ी, कुड़ी जो दो-चार थीं, भीत के गिरने से सब चूर चूर हो गयीं। घर भर में ठीकरे पड़े हैं। पहली दो महीने पुरस्तम में पड़ा रहा--घर में छदाम-कौड़ी भी नहीं रही। गिरवी रखने के लिए जो दो-चार बरतन-भांड़े थे--सब बेच-बाच कर पुरी से गोहत्या का पातक छुड़ाने गया था। बाकी रहा क्या, जिधर हाथ बढ़ाये? लुगाई के दोनों हाथों में सिर्फ एक एक शंखा[1] है, वो भी दिनोंदिन ढीली होती जा रही है।

सुबह पहली को देख गांव के बाम्हन दौड़े--भोजन देना होगा। गांव के बाम्हन जब तक शुद्ध न करें, भला पातक छूट सकता है? जमींदार का प्यादा आकर दुआरे बैठा था--पिछले बरस का लगान दो, नहीं तो सामंत जी मुकदमा करेंगे। जात-भाइयों ने जिद पकड़ी--जात-बिरादरी को खिलाये बिना शुद्ध कैसे होंगे?

पहली निकला मजदूरी करने। मगर पौष का महीना। धान-कटाई के बाद काम कहां मिलेगा? फिर उसने देखा--गांववाले उसे देख नाक-भौंह सिकोड़ लेते हैं। एक ने तो उसे सुनाकर कह दिया--"गो-मारक को छूने में भी पाप लगेगा।" तब से पहली अलग-थलग सा रहने लगा। किसी से आगे बढ़कर मेल-जोल नहीं करता।

बिरादरी को भोज दिया नहीं। पहली को जात से बाहर कर दिया। बाम्हन-गोसांई लोग अड़ गये। धोबी, नाई, आग, पानी--सब बंद। अब पहली अकेला रह गया।

पहली की कसी हुई देह देखते-ही-देखते सूखकर कांटा हो गयी। गेली की मां ऐसी कि उसे फूंक मारो तो गिर पड़े। बस हाड़ों का ढांचा भर रह गया है।

स्त्री को उसने उसके पीहर भेज दिया।

पहली के एक दिन चूल्हा जलता तो दो दिन उपवास। दुकानदार, धोबी, नाई, साहूकार--सब ने लेन-देन बंद कर दिया। पहली को कुछ नहीं सूझता, क्या करे?

---

1. सुहाग की चूड़ियां।

हानि, दुख, अभाव वगैरह सहते सहते पहली का मिजाज बिगड़ गया। पुरस्तम क्षेत्र में इतने पैसे खरच करके जो काला दाग मन से मिटा आया था, फिर से उभरकर मन में रेखा खींच रहा है।

पहले की तरह फिर वही भयंकर सपने उसे पागल कर देते हैं। कभी-कभी चौंककर उठता है वह, उसे लगता जैसे काला-कलूटा कोई जंतु सूं-सां करता उसके चारों ओर चर रहा है। वह रातों में सपना देखता--कोई मरखना बैल मानो सींग भोंकने के लिए पूंछ उठाये उधर ही आ रहा है। सपने में चीख उठता वह– ''वो.... वो.... घोंपा....भागो, सींग घोंप देगा....भागो.....!''

सब कुछ बेच-बाचकर बचा था पहली का यह टूटा-फूटा घर। वह भी लगान न दे पाने पर नीलाम में उठ गया। इतनी बड़ी दुनिया में उसके लिए कहीं दो गज जमीन भी न रही। घर नीलाम होते समय वह टिमटिमाती निगाह से देखता रहा, मुंह से एक भी शब्द न निकला। जब उसे बता दिया गया कि अब तुम इस घर में नहीं रह सकते, वह चुपचाप उठकर खड़ा हो गया। एक सब्बल उठाई और पिछवाड़े के कमरे को खोदा, मरी हुई गेली के जनम के समय की छठ-पूजा वाली सामग्री ले आया। पूर्वजों की पूजा-वेदी को भी खोद लाया रसोई में से। धीरे धीरे वह घर छोड़ बाहर निकल आया। बस, उस दिन के बाद वहां नहीं लौटा।

बाप-दादों के जमाने का घर चला गया--पहली के मन की हालत और ज्यादा खराब हो गयी। कभी यहां, कभी वहां.... इसी तरह दिन कटने लगे, रातें बीतने लगीं।

घर के बीच खड़े सहिजन के पेड़ से पहली को बहुत प्यार था, ढेर-की-ढेर चूल्हे की राख डाली है उसमें। सहिजन में गुच्छे-के-गुच्छे फलियां होतीं, दो-एक तोड़ पखाल भात[1] के साथ खाने के लिए सहज ही उसका हाथ नहीं उठता--पककर चाहे नीचे गिर जातीं वे। इसी की छाया में बैठ कितनी ही चांदनी रातें काटी हैं। बाहर खड़े हो पहली उस पेड़ को देखता, जाकर उसके तले खड़े होने का बहुत मन करता, पर वह लौट आता। जमींदार का नौकर उसे देख हंसी करता–''क्यों रे, गोहत्यारे पहली!''

पहली को याद आता--घर के पिछवाड़े कनसिरि[2] भर गयी होगी। कुएं की बगल में वह सदाबहार के पौधे और गोड़ी बाण[3] फूलों से लद गये होंगे। मन कहता, चल जरा एक बार जी भर देख तो आयें।

टूटी छाती में कोह उठता। उसका मन किरच किरच हो टूट जाता। अकसर कितने ही भयावने सपने देखता। हड़बड़ा जाता। उसे लगता, इसी बीच वह कब का मर चुका है।

---

1. भात में पानी डालकर खाना।
2. एक प्रकार की हरी सब्जी।
3. एक प्रकार का फूलों का पेड़।

पहली का घर नीलाम हुए महीना भर ही हुआ था कि बस्तीवाले उसके बारे में कहने लगे--''पहली प्रधान पागल हो गया है। गू-मूत में लथपथ इधर-उधर फिरता रहता है। आदमी को देखकर क़हता है--'देखो... वो आया...घोंप देगा... होशियार'!''

पहाड़ की ओर ईंधन चुगने कुछ बावरानी छोकरियां गयी थीं। वे सांझ ढले धोबी साहू की दुकान पर बतिया रही थीं--''पहली बैठा है पहाड़ पर। बस बैल की तरह चीख रहा है, कहता है--वो आया...देखो... आया...सींग हैं कैसे....? सूं-सां कर रहा है। मैं तो मर गया। मिट गया महाराज!''

सब कुछ सुन निधि मिश्र जी गंभीर होकर बोले, ''उसका पाप असर दिखायेगा ही, नहीं तो जायेगा कहां? शुद्ध हुए बिना भी कहीं गोहत्या का पाप छूटता है? हजार कहा, लेकिन हमारी बात तो उसे खराब लगी। दस-पांच रुपये खरचने ही की तो बात थी--बाम्हन-भोज करा देता, शुद्ध-पूत हो जाता, आज वह चैन से बैठा होता। धर्म कहीं चला थोड़े ही गया है?''

परीक्षित ब्रह्मा ने कहा--''आजकल कोई सास्तर-पुराण की बात मानता है, मिश्र जी? देखो तो, मरते समय कैसे गो की तरह चीख रहा है। उसका अब समय आ गया है।'' उसका पाप उसके सामने से न दूर जाता है, न मिटता है। सूने पहाड़ पर पहली का कंकाल। किसी भयंकर कल्पना की प्रेतात्मा उसके मन पर लंबी लंबी छाया करके दबोचे है। उससे उद्धार कहां? उस के साथ जुट गयी है दिनों की भूख, प्यास, अभाव, दुख-दर्द और अपमान। सब मिलकर उसके मन को चूर-चूरकर पीस डाल रहे हैं।

पहली देख रहा है--उसके आगे घर-बार, स्त्री-परिवार, जान-पहचान के कोई नहीं है। सिर्फ खाली, सूना सूना...। और कोई भारी-भरकम पोथी, जिसके पन्नों पर छपी है बड़े बड़े यमदूतों की फोटो--काली काली आंखें, पैने पैने सींग। उस पोथी के अक्षर एक धर्राती चक्की जैसे....।

पहली के अचल-स्तब्ध मन में और कोई हलचल नहीं होती। चारों ओर से कोई उसे रौंदता हुआ सा लगता है। हर तरफ उजाड़-ही उजाड़ नजर आता है।

बेंत के झुरमुटे से कौआ कांव कांव किये जा रहा है। वन, जंगल, डूंगर की चोटी--सब उसे मानो जिंदा आदमी की तरह बार बार पुकार रहे हैं--'आ...आ...आ!'

पहली ने देखा, निचले गांव वाले रामा ग्वाले की लाश। उसके मरे चेहरे पर ताजा हंसी दिख रही थी उसे।

और दूर पर सूं-सां करता कोई चर रहा है।

पहली चीखता सा बेहोश होकर पछाड़ खाकर एक नुकीले पत्थर पर गिर पड़ा।

अगले दिन पत्तर बीनने वाली छोकरियों ने गांव में जाकर बताया सबको--''पहली हांफ-हांफकर थूक में लथपथ पड़ा है। अभी या कुछ देर में बस...।''

बकरी चरानेवाला नोंका बस्ती में जाकर कहने लगा, ''पहली को घेरे दो यमदूत बैठे

हैं जिनका मुंह एकदम बैल की तरह है। जा...जा... वे लौट गये।"

गांव के दो-चार गावदी जवान पहुंचे वहां। जाकर देखा--पहली पत्थर के बीच सिर छिपाये पड़ा है। खोपड़ी का एक हिस्सा उड़ गया है--भेजा निकल आया है पहली का।

खबर पाकर गेली की मां उसी रात लौटी। अपने घरवाले को शुद्ध करने, गोहत्या छुड़ाने के लिए कुछ रुपया-पैसा लायी थी। उसी रात पहली के पास लिवा जाने के लिए कितने लोगों से उसने निहोरे किया। मगर इतने बड़े गांव में कोई भी आधी रात डूंगर की ओर जाने को राजी नहीं हुआ।

भोर तड़के गेली की मां उधर चली। बावरानी छोकरियों से पता पूछा। जाकर देखा, पहली मर चुका है। मुंह झाग से भरा है। आंखें धंस गयी हैं।.... कान के पास का खोपड़ी का टुकड़ा किरच किरच हो कहीं उड़ गया है।

उसकी आंखों में आंसू भर आए। बस, टिमटिमाती उधर देखती रही वह।

बिना शुद्ध किये पहली की लाश है।

कैसे कोई उठायेगा? गांव में इस बात पर तर्क-वितर्क चला जोरों से।

गेली की मां ने अपने घरवाले को शुद्ध करने के लिए पीहर से लाये दस रुपये पल्लू से निकालकर गांव के मुखिया के हाथ में पकड़ा दिये--लंबी पसरकर सबके पांवों में पड़ गयी।

बाम्हन-गोसांई और जात-बिरादरी के सब लोग खुश हो गये। पहली की लाश को ढेर-के-ढेर आशीष देने लगे।

राजकुमार

खूब ऊंची दीवारों से घिरे महल में राजकुमारी बंदी है। सिंहद्वार पर झुंड-के-झुंड सिपाही पहरे पर तैनात हैं।

कुंडली देखकर ज्योतिषी महाराज ने बताया था कि यह कन्या उनकी घोर अशांति का कारण होगी। अतः राजा ने गढ़ से बाहर घने जंगल में एक महल बनवाकर बचपन से ही राजकुमारी को इस महल में बंदी बनाकर रखा है।

बाहर से चिड़िया तक राजकुमारी को नहीं देख सकती। इसके लिए महल के चारों ओर कड़ा पहरा और लोहे की तरह अभेद्य दीवारें खड़ी की गयी हैं। इन दल-के-दल पहरेदारों पर निगाह रखने के लिए इस बूढ़े सरदार पहाड़सिंह को नियुक्त किया गया है--जिसकी छाती में हाथी का बल है, जिसकी आंखें बघनख की तरह पैनी और तीखी हैं।

राजकुमारी का मन उदास है। दुख में बैठी बैठी वीणा बजा रही है। अवंती राज्य के राजकुमार शिकार के लिए गये थे। थके हुए वे एक तालाब के किनारे विश्राम कर रहे हैं। पास ही घोड़ा बंधा है, धनुष निकालकर नीचे रख दिया है।

राजकुमारी की दर्दीली आवाज हवा में तैरती, तालाब की लहरों पर फिसलती हुई धरती से आ टकराती है। राजकुमार चौंक उठे।

'इस निर्जन जंगल में नारी का स्वर!' राजकुमार इस आवाज का पीछा करते करते फूलों से घिरी ऊंची दीवार से ढकी अट्टालिका के आगे जा पहुंचे।

राजकुमार ने झरोखे से नीचे झुककर देखा--राजकुमारी उनकी ओर महल पर से देख रही है। आंखों में अनबूझ संकेत, होठों पर करुण मुस्कान का इशारा।

तभी अपनी आंख के काजल-मिले आंसू से भोजपत्र पर कुछ लिखकर राजकुमारी ने अट्टालिका से फेंक दिया नीचे की ओर। इस में उसने अपनी सारी कहानी लिख दी थी।

राजकुमार ने धनुष उठाया और घोड़ा दौड़ाया सिंहद्वार की ओर। सरदार पहाड़सिंह बैठा चरखे पर सूत कात रहा है, सिपाही थककर दुपहर में इधर-उधर सो रहे हैं। इस सुनसान राजमहल पर किसी शत्रु की आशंका कभी उनके मन में आयी ही नहीं।

राजकुमार के घोड़े की टाप सुनकर पहरेदार चौंककर खड़े हो गये। सरदार ने सींगा

फूंका। सिपाहियों ने बरछे संभाल लिये।

राजकुमार ने धनुष पर दो तीर साधे, और फिर सरदार की आंख को निशाना बनाकर छोड़ा। सरदार हुंकार भरकर नीचे गिर पड़ा। उसकी उन हिंस्र आंखों से खून की धार बह आयी...।

सिपाही बरछे लिये राजकुमार की ओर दौड़े। मगर तब तक राजकुमार घोड़ा दौड़ाते हुए बिजली की तरह अंतर्धान हो गये। फिर कुछ समय बाद मुड़कर एक एक सिपाही को निशाना बनाते गये--जैसे पेड़ कट-कटकर गिर रहे हों। बाकी जो रह गये, उनमें से कुछेक ने राजकुमार को घेर लिया और उन्हें मारने के लिए बरछे तान लिये। राजकुमार जीवन-मरण के बीच खड़े हैं। बेहला वालों ने तान पर एक करुण मूर्च्छना छेड़ी। एकदम एक बरछी आकर राजकुमार के दाहिने हाथ पर पड़ी। जो तमाशा देख रहे थे, उनकी पलकें आंसुओं से बोझिल हो आयीं। राजकुमारी ने भी आंचल से आंखें पोंछीं।

राजकुमार ने तूणीर से एक और तीर निकाला। लालटेन और मशाल की रोशनी में वह झलमला रहा था। सिपाहियों का घेरा राजकुमार को कसता जा रहा है।

ठीक तभी राजकुमार तिरछे मुड़कर उनके घेरे से निकल आये। एक दम पास वाले सिपाही के सिर पर तीर छोड़ दिया। उसके गिरते ही राजकुमार ने कमर से अपनी तलवार निकाल ली। बिजली की तरह बाकी बचे सैनिकों को गाजर-मूली की तरह काट छिन्न-भिन्न कर दिया। कुछेक जान बचाकर इधर-उधर भाग खड़े हुए।

सबकी आंखों में आशा लौट आयी। राजकुमारी ने आंसू पोंछते पोंछते देखा कि तीर से मरे सिपाही नीचे पड़े धरती पर लोट रहे हैं। किसी की जीभ निकल आयी है तो किसी की तालू में धंस गयी है, और राजकुमारी वरमाला लिये....वहां से धीरे धीरे उतर रही है लकड़ी के मंच पर से। दर्शकों की सहानुभूति राजकुमार के साथ थी और राजकुमार की बहादुरी की सभी वाह-वाही कर रहे थे।

बावरी बस्ती के नकुला ने राजकुमार का भेष बनाया था। पाउडर में पुता उसका गोरा चमचमाता चेहरा, माथे पर सोने का मुकुट, देह पर जरी की पोशाक ठीक अवंती के राजकुमार जैसी फब रही थी।

भारत लीला समाप्त हुई। तमाशे का भेष उतार, अपनी विदा की भेंट लेकर सब अपनी अपनी राह गये।

अगले दिन दुपहर का समय। धू धू जलती जमीन। पेड़-पौधे-लता सब धूप में जल रहे हैं। राजकुमार हल लिये खेत से लौट रहा है। उसके गोरे-चिट्टे चेहरे पर पाउडर नहीं है। दिन भर धूप में तपते तपते उसकी देह तांबई पड़ गयी है। फूले गालों से पसीना चू रहा है टप टप। कमर में एक छोटा सा गमछा बांधा हुआ है।

राजकुमारी का पार्ट करने वाली लड़की माणिक अपने काका के लिए कांसे के कटोरे में भात लिये जा रही है। गांव के छोर पर अमराई में नकुला से भेंट हो गयी। नकुला लाठी

का सहारा लेकर कुछ क्षण खड़ा रहा। माणिक बोली, "राजकुमार!" और फिर हंसकर अपनी राह चल पड़ी। राजकुमार लौट आया अपने मालिक के घर की ओर।

राजकुमार के दिन किसी तरह कट जाते। मांड में नमक डालकर कांसे का कटोरा भर गले से उतार लेता। लाठी उठाकर खेत की ओर चल पड़ता। दिन भर खेत के काम में दिलोजान से जुटा रहता। हाड़ों के पिंजर में कभी तिल्ली में दर्द होता या भूख से छटपटा जाता तो खेत की मेंड़ पर कुछ देर जा बैठता। उधर मालिक अपना छाता लिये, आम तले खड़ा पहरा देता है। आवाज आती है–'क्यों रे, बैठ गया....?' खेत से लौटकर सूखी देह पर थोड़ा पानी उड़ेल लेता, भात खाकर औरतों का बताया हुआ काम करता। साहूकारिनी के पान-सुपारी से लेकर राजकुमारी की भालकुणी[1] की मूर्ति बनाने के लिए जोहड़ से चिकनी मिट्टी लाने तक हर काम करना पड़ता उसे।

दिन निकलते ही वह काम पर चला जाता है, सांझ ढले थका-मांदा घर आता, बैलों के लिए सानी-पानी करता। गायों को चारा देता। घर के और भी पांच काम करता।

सुबह से शाम तक इस निरानंद जीवनचर्या में उसके सुख के भी कुछ पल हैं या नहीं, कोई नहीं जानता। नकुला के बाप ने साहूकार से करज लिया था, वह करजा नहीं चुका पाया तो बेटे को पांच बरस के लिए वहां बिना तनखा के गिरवी रख दिया। इन पांच बरसों में मेहनत करके इस राजकुमार को पितृ-ऋण चुकाना होगा।

राजकुमार के इस रोजमर्रा के जीवन में कभी कभी मीठा सपना जाग उठता है, हर रोज उसी दुर्लभ क्षण का इंतजार करता है राजकुमार।

सांझ को राजकुमारी (माणिक) लकड़ियां चुनकर लौटती। लकड़ी का गट्ठर फेंक, मटका ले कुंए की ओर चल देती। तभी राजकुमार (नकुला) हल लिये खेत से लौटता। पोखर के किनारे बैलों को रोककर वह हाथ-पांव धोने लगता। घाट के पत्थर पर खड़ी हो राजकुमारी मुस्कुराकर कहती–"राजकुमार!"

बस यही सुनने के लिए नकुला का मन सांझ को काम में नहीं लगता। सांझ ढलते ही बैल वह खोल देता और खेत से लौट पड़ता।

कभी कभी साहूकार इतनी जल्दी बैल वापस लाने पर टोकता, उसकी सात पीढ़ी को गाली देता। दस तरह के बहाने बना नकुला साहूकार को समझा-बुझा देता। कभी कहता, 'दहनावत बैल को बोगी[2] हो गया है।' कभी कहता, 'मालकिन के लिए पान की खातिर सुपारी लानी है। थोड़ा पहले लाने की ताकीद की थी उन्होंने।'

उस दिन शोखी से माणिक ने पूछा, "राजकुमार, तेरी राजकुमारी कहां है?"

नकुला ने बुद्धू की तरह कह दिया, "मालूम नहीं।"

किनारे पर झिलमिलाती चांदनी पानी पर तैर रही थी। राजकुमारी ने कहा, "तू कहीं

---

1. मंगला देवी।
2. एक तरह की बीमारी।

से ले क्यों नहीं आता? तेरी देह की परवाह रखता है कोई? सदा क्या कुंवारा ही बना रहेगा?''

माणिक का मन जानने के लिए हंसी में नकुला ने पूछा, ''क्या तू मेरी राजकुमारी बनेगी?''

माणिक झेंप में मुस्कुरायी और मटका लेकर मटकती हुई चल पड़ी। नकुला भी पीछे पीछे हंसता हुआ चल दिया।

नकुला को बुखार है। सारी देह तवे की तरह जल रही है। उधर साहूकार के गुस्से की सीमा नहीं। कई दिन से काम-धाम चौपट पड़ा है। खेत में नाम मात्र को भी कुछ काम नहीं हो पाया।

नकुला की समूची काया दुख रही है। हड्डियों की गांठ पर जैसे कोई बिच्छू डंक मार रहा है। नकुला अचेत सा है। मुंह में दो बूंद पानी देने वाला भी कोई नहीं। साहूकार कहता है--''साला नखरा कर रहा है।''

आठ दिन हो गये, माणिक नकुला को देखे बिना ही लौट आती है। मन में दुख है, उसका राजकुमार कहां गया....?

कुछ दिन और बीते। नकुला की देह में चेचक निकल आयी। पहले छोटी छोटी, और फिर खूब बड़ी बड़ी। साहूकार और साहूकारिनी दोनों घबरा गये। बाल-बच्चों का घर, कब क्या हो जाये!

ज्वर व चेचक के कोप में जब वह अचेत था, एक दिन साहूकार ने कहा, ''तू अपने घर चला जा। यहां कौन देखभाल करेगा? बाल-बच्चों की बात है, कब क्या हो जाये? समझे। और फिर पराया पूत...भले-बुरे की आफत कौन सिर पर ले?''

नकुला उनकी बात ठीक से समझ नहीं सका। साहूकार ने ऊंची आवाज में सब समझा दिया। इतना ही नहीं, दया करके नकुला को रास्ते के जेबखर्चे के लिए चार पैसे भी दे दिये। ''तबियत ठीक होते ही यहां चले आना,'' बार बार ताकीद की।

नकुला का गांव यहां से दो कोस है। उससे हिला-डुला भी नहीं जाता था।

सांझ को लौटकर साहूकार ने देखा, नकुला गया नहीं। गुस्से में तमतमा उठा। नकुला के कपड़े, लाठी आदि सब लेकर बाहर बरामदे में फेंक दिये। ''कल तक घर नहीं छोड़ा तो मेहतर बुलाकर बाहर निकलवा दूंगा।''

भोर हुई। नकुला घिसटते घिसटते अपने दो-एक कपड़े समेट लाया। गुहाल घर से निकल आया। सारी देह पर मक्खियां भिनभिना रही हैं। आज पंद्रह दिन से पेट में एक दाना भी नहीं पड़ा। बस, कल रात साहूकारनी ने कटोरा भर पना बनाकर जो दिया था, उतना ही पेट में गया है।

नकुला का सिर सांय सांय कर रहा है। पांव फूले हुए हैं। दानों में मवाद भरा हुआ है। राह में कंकरियों से टकराकर परत-के-परत छिलके उतर रहे हैं।

गांव के छोर पर अमराई है। नकुला दम लेने को रुक गया छांव में। अब दो कदम भी चलने की ताकत नहीं रही थी। सोचा था, घड़ी भर बाद कुछ दम लेकर चल पड़ेगा। मगर एक बार पेड़ के तले बैठकर वह फिर उठ भी नहीं सका। जड़ के सहारे सिर टिका कर वहीं लेट गया। सारी देह पर चेचक के दाने जगह जगह धंसे जा रहे थे। मानो हाड़ों तक पहुंच गये हैं।

पंद्रह दिन हो गये माणिक से राजकुमार की भेंट नहीं हो सकी। रोजाना पोखर के पास बैठी बैठी लौट जाती है। आंखों में नाचता रहता है उसके राजकुमार का गोरा-चिट्टा चेहरा, सोने का मुकुट, जरी की पोशाक में सजीली देह। रात-दिन वह सपना देखती--उस रात सपना...।

उसे लगा जैसे वह खुद कोई राजकुमारी है। राजकुमार सिपाही-सरदार के हाथों पकड़ा गया है। झट से नींद खुल गयी।

सुबह माणिक ईंधन चुगने अंमराई की ओर निकल पड़ी। लकड़ियां बीनते बीनते देखा--एक जगह कुछ कौवे मंडरा रहे हैं। कोई सड़ी-गली गंध आ रही है।

राजकुमारी चल पड़ी उसी झुरमुट की ओर। किसी आदमी की काया पड़ी है। आदमी जी रहा है। टिमटिमाती एक आंख से देख रहा है। सारी देह घावों से सड़ रही है। देह में फोड़े-ही-फोड़े। दुर्गंध भरी हुई है। कौवे एक आंख कब की नोच ले गये हैं। और एक हाथ का मांस नोच-नोचकर खा रहे हैं। पास ही उड़ रहे हैं। घबराकर सन्न रह गयी वह। उस आदमी को पहचानने की कोशिश की। पहले कुछ समझ में नहीं आया। फिर कुछ पहचान में आया। वह आश्चर्य में पड़ गयी, मुंह से बोल भी नहीं निकले। कुछ क्षण बाद धीरे से बोली, "राजकुमार!" राजकुमार की दूसरी आंख कौवे नोच रहे थे। वह कोई जवाब न दे पाया।

रिक्शावाला

ई.आई.आर. के टाइम-टेबल के मुताबिक देहरादून ऐक्सप्रेस को भोर साढ़े छह बजे हावड़ा स्टेशन पहुंचना था। मगर उस दिन गाड़ी पहुंची सैंतालीस मिनट देर से। रात भर हम कुछ लोग तीसरे दर्जे के डिब्बे में बारिश के छींटों से भीगते रहे। हमारी इस हालत के लिए पंचांग वालों का अशुभ लग्न उतना जिम्मेदार नहीं, जितना हमारे छोटे से डिब्बे की टूटी खिड़की थी। रात भर अपनी जोड़-तोड़ करते हुए इंजीनियरी लगायी, मगर ठीक नहीं कर पाये। सूटकेस लेकर जब गाड़ी से उतरे, तब तक हमारी दशा इतनी खराब हो चुकी थी कि अपने चारों ओर एक घेरे में खड़ी घोड़ागाड़ियों का व्यूहभेदन करने में भी हम समर्थ नहीं हो सके। लाचार हालत में एक फिटन के साथ मोल-भाव किया, तभी मेरी आंखों में वे दो असहाय और बुझी सी आंखें पड़ गयीं। मैं उन गहरी आंखों वाले की ओर देख ही रहा था कि उसने जिज्ञासा के स्वर में पूछा, "बाबू, रिक्शा?"

मैं उसे कोई उत्तर देता, उसके पहले ही आकर उसने मेरे हाथ से सूटकेस लेकर रिक्शे में लाद लिया। कोई चारा न था। मैं उसके पीछे हो लिया।

कलकत्ते में घोड़ागाड़ियों की बहुतायत वाले रास्ते पर रिक्शे पर जाना खतरे से खाली नहीं। फिर उस रिक्शे की हालत, रिक्शेवाले की भाव-भंगिमा देख मैं उस पर भरोसा कर ही न सका।

रिक्शे की हालत ऐसी कि जरा सी टक्कर लगे तो वह टूट जायेगा। रिक्शावाला भी वैसा ही कमजोर। उसके दुबले पांव उसकी दुबली काया का बोझ ढोने में असमर्थ दिख रहे थे। उसकी आंखें गहरी नींद के कारण फूली फूली दिख रही थीं। लगता था जैसे सुबह मुंह नहीं धोया। भिनभिनाती ठर्रे की गंध आ रही थी। उससे किसी को भी उबकाई आ जाये। उसके गंदे दांत ऐसे भद्दे दिख रहे थे कि उससे बात करने को भी जी नहीं कर रहा था।

अपना सूटकेस उतार मैं दूसरे रिक्शे में जा रहा था कि उसने दृढ़ता से कलाई थामकर मुझे रोका। उसकी खीझ से बचने के लिए मैंने धमकाने की कोशिश की। उसने और भी ऊंचे स्वर में जवाब दिया। किसी भी तरह उसने सूटकेस उठाने नहीं दिया। उसकी जिद

व जोर-जबरदस्ती का जवाब देने के लिए मैं पास के पहरा देनेवाले की मदद ले सकता था। मगर कल रात का दुर्योग, भोर की धुंध और कोयले के चूरे में मिली कलकत्ते की हवा का प्रभाव मेरे मन पर एक और ही प्रतिक्रिया पैदा कर रहा था।

मैं कुछ विरोध किये बिना चुपचाप जाकर रिक्शे पर बैठ गया। उसे झिड़ककर मैंने हुक्म देते हुए कहा, "चलाओ!"

गंगा के चारों ओर जूटमिलों से निकला धुंआ आकाश को मटमैला किये हुए है। बेशुमार जहाजों का भोंपू बीच बीच में सुनायी पड़ जाता है। हावड़ा पुल पर गमछा, कुर्ता-लुंगी पहने सैकड़ों हिंदू-मुसलमान कुली बीड़ी पीते अपने अपने काम पर चले जा रहे हैं। बीच बीच में बड़ी बसों के बोझ से समूचा पुल ढलक जाता है। कतार-की-कतार टैक्सियां, मोटर और घोड़ागाड़ियां। बीच में यह जरा सा रिक्शा कब खो गया, इसमें किसी को ख्याल ही न रहा उनका। पुल पार करते ही लगा, रिक्शावाला धीरे-धीरे संयत होता जा रहा है। नशेबाज का भाव मिटकर उसकी जगह एक प्रतिभावान मिलनसार व्यक्ति की भंगिमा खिल उठी। उसने मेरे साथ गप्प लगाना शुरू कर दिया। उसकी बातें कुछेक शिकायतों के सिवाय कुछ न थीं। एक ताजा गप्प सुनने के लोभ में कोई उस बोझिल कथावाचक का श्रोता बनेगा तो वह निराश ही होगा। मगर वैसा कोई श्रोता बनने की उच्च्य अभिलाषा मेरे मन में बिलकुल न थी। बस, अनमना सा बीच में हूं-हूं करता अपनी उत्सुकता का प्रमाण दे रहा था।

पहले तो शुरू की रिक्शे-किराये की बात--"छह आने से एक पैसा भी किराया कम नहीं लेता।" इस तरह मुझे इशारा कर रहा था कि इतना किराया देने को तो मैं बाध्य हूं।

फिर उसने कहना शुरू किया--"इस धंधे में एक पैसा भी मुनाफा नहीं होता। आमतौर पर दिनभर में रुपये-डेढ़ रुपये की मजूरी हो जाती है, मगर मालिक इसमें से बारह आने रिक्शे का किराया काट लेता है। दिन भर की मजूरी कभी अठन्नी भी हो जाती है कभी नहीं भी।"

इसके बाद अब आयी परिवार की बात। प्रसंगवश बताया--"बाल-बच्चे खूब हैं। इस थोड़ी सी मजूरी में उनका पेट भरना मुश्किल है। स्त्री को तपेदिक है। अस्पताल में छोड़ दूं तो घर पर खाना-पकाना कौन करेगा, बच्चों की खबर कौन रखेगा? फिर भी इलाज में कोई कमी नहीं। तीन रुपये खर्चकर एक तावीज ले आया हूं।" स्त्री के जीवन की दुनिया में किसी की चिंता नहीं।

इसी तरह गप्पें मारता रहा। रास्तों पर खूब फिसलन हो रही थी। सुबह सब रास्तों पर शायद नलके खोल दिये गये थे। अभी तक पानी सूखा नहीं। उस फिसलन-भरे रास्ते पर घोड़े की लीद और आदमी के पांवों की धूल मिलकर ऐसी चीकट-फिसलन हो गयी थी कि पग पग पर फिसलने का डर होता था। वैसे मैं खूब डर रहा था--कहीं सुबह-ही-सुबह रिक्शे-सहित किसी बड़ी बस के नीचे कचूमर न निकल जाये।

कुछ देर बाद देखा तो स्ट्रैंड रोड के पास बड़े बाजार की ओर जो ट्राम लाइन मुड़ती है--उधर से किसी एंग्लोइंडियन को लिये एक टैक्सी तेजी से आ पहुंची। सड़क पर पड़े पानी को इतनी जोर-से छिटका कि मेरे कपड़े न बच सके। कुछ रहीम (यह नाम था उस रिक्शे वाले का) की आंखों में आ लगा। कुछ क्षण को उसे एकदम अंधा कर दिया। एक हाथ से गाड़ी को थामा, दूसरे से आंखें पोंछीं। मगर गति ऐसी थी कि पूरा रिक्शा हिल उठा और ट्रामलाइन से ठोकर लग गयी। रहीम ने अपनी गाड़ी और सवारी को बचाने की पूरी कोशिश की। मगर कोई फायदा नहीं हुआ। वह फुटपाथ पर धड़ाम से गिर पड़ा। तकदीर से वह, रिक्शा और मैं तीनों ही किसी तरह बच गये।

रहीम को गिरता देख सड़क के सारे लोग हंस पड़े। कुछ दुकानदार अपनी गद्दी से उठ आये, बिना मांगे मुखिया की तरह मुझे उपदेश देने लगे--"भाड़ा मत देना। दूसरी गाड़ी कर लो।" उपदेश देकर चले गये मुझे। रहीम बेचारा वैसे ही फुटपाथ पर कीचड़ में सना पड़ा था। मुंह से एक लौंदा थूक फेंका। शायद दांत से उसकी जीभ कट गयी थी। थूक लाल दिख रहा था। रास्ते पर सिपाही टहल रहा था। दौड़ा आया वह। रिक्शा का नंबर नोट कर लिया। थाने में चालान करने की धमकी दे डाली। रहीम की तो बुद्धि काठ हो गयी थी--चोट का दर्द वह भूल गया। सिपाही के हाथ-पांव पकड़े, दस्तूरी दी, तब जाकर उसके हाथ से छूटा। तब फिर से गाड़ी खींचने को तैयार हुआ, लेकिन उसकी गाड़ी में जाने का मुझ में अब और साहस बिलकुल नहीं रह गया था। फिर बीच सड़क में यों हास्यास्पद होकर मन इतना खट्टा हो गया था कि सारा दोष उसी पर लादने लगा। जी भर कर उसे कोसने लगा। लेकिन उसने जुबान नहीं खोली, किसी अपराधी की तरह सब-कुछ चुपचाप सह गया। मुझे बार बार आश्वासन देते हुए कहने लगा--"अब ऐसी दुर्घटना कभी नहीं होगी। आज कसूर हो गया है। जीवन में ऐसा पहली बार हुआ, इसी वक्त हुआ वरन् पहले कभी नहीं....। आगे भी कभी ऐसा नहीं होगा।"

मगर मैं भी जिद्दी था। आदमी अपनी जान की तो सबसे पहले रक्षा करे। रहीम आकर बार बार सलाम करने लगा, मिन्नतें करने लगा। कहने का मतलब था--पहले ही सवारी को...यों छोड़ना नहीं चाहेगा।

उसकी मिन्नत में आकर मैं सब भूल गया। होशियारी से गाड़ी चलाने का हुक्म दिया। सिगरेट जलाकर गाड़ी में बैठ गया, फिर एक बार।

कुछ दूर जाने पर रहीम ने कहा, "दो बरस पहले भी एक ऐसी ही दुर्घटना हुई थी। तब बड़े बाजार मोड़ के पास जोर से मोड़ने जा रहा था कि गाड़ी की धुरी ही टूट गयी। अपनी गाड़ी के दाम के लिए मालिक ने उस पर सौ रुपयों की नालिश कर दी। सवारी ने जूता खोलकर मेरी पिटाई कर दी। नालिश के चक्कर से बचने के लिए मैंने औरत के गहने बेच डाले। मालिक को कुछ रुपये दिये, बाकी रुपयों की माहवार किश्त कर दी। एक कागज पर अंगूठे का निशान लगाकर दे दिया।"

आज तक उस पिछले रिक्शे के पैसे चुकता नहीं हुए। इसके बाद उसने स्वीकार किया कि कल रात से उसने कुछ नहीं खाया है, इसी कारण ऐसा हुआ। "कल रात जो मजूरी मिली, सारी ताड़ीवाले के यहां उड़ गयी। हाथ में एक पैसा भी न था। उधर औरत से गाली खाने के डर से घर नहीं गया, और न रात को खाना खाया। भूखा-प्यासा स्टेशन पर पड़ा रहा हूं।" कुल मिलाकर वह बताना चाहता था कि वह पक्का रिक्शेवाला है। इन सब आनुषंगिक दुर्योगों की दुहाई देकर अपनी गलती छुपाना चाहता था।

उसकी बात सुनकर मुझे जोर से हंसी आ गयी। जो आदमी दस मिनट पहले कह रहा था कि ऐसी दुर्घटना कभी नहीं हुई, पहली बार ऐसा हुआ है, उसके मुंह से यह स्वीकारोक्ति सुनकर मुझे वह बड़ा धूर्त लगा। मैंने धमकाया--"जोर से गाड़ी चलाओ!" मेरा पारा ऊंचा देख, वह बुद्धू की तरह हें हें कर हंसता हुआ गाड़ी खींचने लगा।

असल में मुझे खुश करने के लिए तेजी से दौड़ाने लगा... उसकी पीठ के हाड़ उस वक्त अजीब ढंग से उठते-गिरते रहे।

कुछ ही दूर चलकर वह डगमगाते कदम संभाल न पाया। एक भैंसागाड़ी से टकरा गया। नतीजा यह निकला कि भैंसागाड़ी वाले ने उसकी घंटी छीन ली। मुझे भी इतना गुस्सा आया कि उसे पुलिस में दे दूं। अबकी बार सारा दोष भैंसागाड़ी पर थोप दिया--खुद को निर्दोष प्रमाणित करने लगा। किसी तरह नहीं माना कि स्वयं उसके कारण टक्कर हुई है, उसका निर्लज्ज झूठ सुनकर मेरा रोम रोम जल उठा।

तभी पीछे से एक और रिक्शा खाली आ पहुंचा। रहीम का दोस्त था--रिक्शेवाला बीनू। रहीम की हालत देख हो-होकर हंस पड़ा--"स्साले, बेईमान! ठीक हुआ।" फिर मुझे ऐसी विपदा में डालने पर रहीम को बेइज्जत करने लगा, ताकि मेरी सहानुभूति उधर हो। मैं रहीम पर इतना खफा हो चुका था कि होश-हवास ही न रहा। सामान उठाकर मैं तुरंत उस रिक्शे से उतर गया और उसे रास्ता दे दिया। बीनू मुझे बिठाकर गाड़ी खींचने जा रहा था कि उसने पीछे से आकर बीनू पर हमला कर दिया। दोनों एक-दूसरे को पूरे दम से गाली-गलौज करने लगे। बीनू के दो-एक धौल ही रहीम के लिए काफी थे, इसलिए अब बीनू को छोड़कर वह मुझ पर आक्रमण करने आया। इतनी दूर तक का सारा पैसा न दिया तो मेरा सामान न छोड़ेगा। ऐसे बुरे व्यवहार के लिए गुस्से में लाल होकर मैंने कहा--"भाड़े-वाड़े का एक पैसा भी नहीं मिलेगा।" बीनू भी उसे पीटते पीटते ले गया और गला पकड़ एक बिजली के खंभे पर धकिया दिया। रहीम पस्त हो गया। अब उसमें और झगड़ा करने का साहस न रहा। चुपचाप अपने रिक्शे को पकड़ मुझे और बीनू को कोसने लगा पीछे से।

रहीम को काबू में लाकर अपने विजय-गौरव में फूला आ रहा था बीनू। सलाम करके खड़ा हुआ। उसके भावों से लगा, जैसे वीरता के लिए मुझसे कोई अधिक बख्शीश चाहता है। "मकान पर चलो, देंगे।"

मैं बनारस से उस दिन दून-एक्सप्रेस से लौट रहा हूं--इस आशय का तार पहले ही दे दिया था। वे सब उत्कंठा से मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे, किसी प्रेषित पतिका की तरह। मेरे पहुंचते ही सब एक साथ जय-जयकार कर उठे। मुझे लगा शायद--भारत के वाइसराय को ग्रेट वे आफ इंडिया पहुंचने भी पर ऐसा सत्कार मिला है या नहीं? इतना ही नहीं, मेरे लिए उन्होंने डेढ़ रुपये खर्च कर मेट्रो हाउस में बालकोनी की टिकट भी पहले से ही खरीद रखी थी। 'लव इन दी सन' में जॉन क्राफोर्ड का अभियान परदे पर देखने का कार्यक्रम उस सांझ तुरंत बन गया था।

सिनेमा में नौ बजे वाला शो देख हम सब लौट रहे थे। गोल्ड फ्लैक के धुएं के छल्ले छोड़ते जा रहे थे। एस्प्लेनेड की चकाचौंध में सब कुछ भूल गये थे--रोजमर्रा का दुख-दर्द, सब कुछ। हमें लग रहा था--सांझ का एस्प्लेनेड आदमी के लिए नहीं है, न आदमी का बनाया हुआ है।

धरमतल्ला पार कर बहूबाजार की ओर गंदी गली में घुसे। हमारा मकान कुछ दूर था। अचानक देखा, एक चारमंजिला मकान के आगे खड़ा रहीम 'बाबू! बाबू!' की आवाज लगा रहा है। उसकी करुण पुकार से सारी गली भर गयी है।

इतनी रात गये कोई करुण स्वर में चीख रहा है, हम सब विचलित हो गये। चारों ओर घेरकर खड़े हो गये। सुबह वाली अपनी सवारी की बात उसकी घोर व्यस्तता में कहीं लीन हो गयी थी। हम सबके आगे वह अपना दुखड़ा कहने लगा।

उसकी लंबी नालिश की फरद में जो घटना मिली, वह यों थी : रहीम ने दिन भर मेहनत कर बारह आने कमाये। सांझ को घर लौट रहा था। कल से घर नहीं गया था। घर पर बाल-बच्चे भूख के मारे छटपटा रहे होंगे--यही सोच तेजी से घर की ओर लौट रहा था। तभी एक बाबू चवन्नी भाड़ा तय कर गाड़ी में बैठे। इस ऊंची कोठी के आगे उतरकर बोला--"किराये के खुले पैसे नहीं हैं। नौकर के हाथ रुपया भेज रहा हूं।" यह कहकर उसके बारह आने पैसे लेकर चले गये । भला इतने बड़े घर के बाबू, अविश्वास कैसे करता वह? दिन भर की अपनी कमाई बढ़ा दी उसके हाथ में।

"बारह आने ले बाबू बस, गये सो गये। तीन घंटे से इस ठंड में खड़ा आवाज लगा रहा हूं--कोई नहीं सुनता। न बाबू और न नौकर--किसी का अता-पता ही नहीं।"

रहीम से हम सब की सहानुभूति हो आयी। इसे ठगा है, ठग को सजा देने का सबने निश्चय कर लिया। हमने मिलकर आवाज या दस्तक दी। देर तक आवाज लगायी। देर तक धक्के लगाये, तब दरवाजा खोलने दरबान आया। बाबू को बुलाने के लिए कहा गया, तो वह बोला--"बाबू सो गये हैं। अब रात में वे नहीं उठेंगे।" हम ने रहीम के पैसे मांगे, उसने साफ-साफ सुना दिया--"यहां कोई बाबू-फाबू रिक्शे में नहीं आये।"

हम रहीम की सचाई जानने के लिए उससे कई तरह की जिरह करने लगे। मगर रहीम की रुंआसी आंखें, करुण आवाज उसकी बात का सबसे बड़ा सबूत दे रही थीं। सबने

मदद का आश्वासन दिया। बगल में जाकर थाने में रिपोर्ट लिखा दी।

मगर पुलिस इंस्पेक्टर उस घर का नंबर सुनते ही, "भागो, भागो यहां से।" भगाते हुए कह उठे--"रहीम तो झूठा है। नशेबाज है, अरे, उस घर के बाबू तो बड़े जमींदार हैं। उनकी अपनी दो-दो ब्यूक गाड़ी हैं।"

रहीम कितना रोया, सौगंध खायी--सब बेकार। हम भी थाना बाबू को कोसते कोसते लौट आये। रहीम ने कहा, "मेरा भाड़ा न दिया, न सही, पर मेरे मजूरी के बारह आने ही लौटा दिये होते। वह फफक-फफककर रोने लगा। मेरे सभी संगी-साथी उस जमींदार को कोसते हुए बोले--"स्साला ठग...धोखेबाज कहीं का....!"

थोड़ा पीछे हट मैंने जेब से एक रुपया निकाला और उसे रहीम के हाथ पर रख दिया।

रहीम कुछ नहीं समझ पाया। जिज्ञासु की तरह मेरी ओर देखने लगा। बात को सरस करने के लिए मैंने उससे कहा, "सुबह मैं आया था तेरी गाड़ी में। दो बार टक्कर हुई थी, अतः गुस्से में किराया नहीं दिया था। लो, उसी किराये के ये पैसे दे रहा हूं।"

मेरे साथ वाले सभी हो-होकर ठहाका लगाने लगे--"तो गुप्त दान चल रहा है।" मैं लजा गया।

रहीम ने मेरी मेहरबानी के लिए सलामकर रिक्शा संभाला और खींचते हुए दूसरी राह चलता बना।

अंधेरी रात। उसका रिक्शा तो नहीं दिख रहा था, मगर घंटी की टनटन की आवाज देर तक हम सभी सुनते रहे।

दारोगा का कुत्ता

प्रतापगंज के नामी दारोगा बलियार सिंह हैं। उनके पिता का कहना है कि 'मछली खाए तो हिलसा, नौकरी करे तो पुलिस की'। उनके कुलदीपक ने उनकी यह अभिलाषा पूरी कर दी।

दारोगा सरीखे दारोगा हैं बलियार सिंह। काली चमकदार सांड़-मार्का देह, उस पर इस्त्री की गयी खाकी पोशाक, चमचमाता चौड़ा बटन, साथ ही सुनहरी कील लगे सामने के दांत चमक जाते हैं। चेहरे पर बड़ी बड़ी मूंछें। ऐसा रौबदार दारोगा इस इलाके में कभी नहीं आया।

दारोगाजी के पदानुरूप ही उनकी पत्नी भी गर्वीली है। डिप्टी साहब की स्त्री के साथ इस बात पर जोरदार बहस हुआ करती है कि किसके पति बड़े हैं। डिप्टी साहब की बीवी कहती--"तुम्हारे बाबू कोई कसूर करें तो हमारे बाबू उनको जेल भिजवा दें।"

दरोगाइन भी उलटा आक्रमण करती--"जेल तो भेज देंगे, हाथ में हथकड़ी नहीं लगा सकते। तुम्हारे बाबू कोई कसूर करें तो हमारे बाबू उनको हथकड़ी पहनाकर बांध लावेंगे।"

डिप्टी साहब की बीवी को तो जैसे आग में घी पड़ गया। मगर प्रतिशोध नहीं लेती। आखिरी ब्रह्मस्त्र छोड़ती--"हमारे बाबू का वेतन दोगुना है।" इस तथ्यपूर्ण तर्क के सामने वह सिर झुका लेती। मगर दरोगाइन चूकती नहीं, दांत कसकर कहती, "सारा देश ही नमकहराम है। कोई और हो तो वेतन दूना होता।"

हेडमास्टरजी की पत्नी पान की जुगाली करते करते मध्यस्थ बन समाधान करती-- "ना...ना, कोई बड़ा या छोटा नहीं। दोनों अपने में बड़े हैं। हमारे बाबू को देखो--कौन पूछता है उन्हें? मगर वे न होते तो देश में न होता डिप्टी और न होता दारोगा। सब घोर मूर्ख ही रह जाते।"

ऐसे नामी दारोगा का कुत्ता भी 'सुलतान' है। उसकी वंशावली से उसके पूर्वजों के अभिजात्य का पता चलता है। दूर तक ढूंढो तो केवट बस्ती के आठ-दस साल पहले की एक आवारा

कुतिया तक जा सकती है उसकी वंशावली।

मगर इस इलाके में सबका कहना है कि वह अलसेशियन है। कोई स्पेनियर्ड बताता है। किसी का अंदाज है कि तिगिरिया के राजा साहब इसे विलायत से लेकर आये थे।

दारोगाजी की कोठी पर रोज आने वाले सैकड़ों दर्शनार्थियों का फाटक पर 'सुलतान' ही सबसे पहले स्वागत करता है। तनिक सूं-सा कर सूंघता है। फिर मुंह मोड़कर बैठ जाता है। कुछ लोग वृषभ-पूजा की तरह उसे मुड़ी चना-मीठे लाजा देते। कंट्रेक्टर या सरपंच तो पका केला खिलाते हैं।

आखिर एक दिन 'सुलतान' चल बसा।

छोटे से शहर के जाने-माने लोग, ठेकेदार, व्यापारी, पंचायत के मेम्बर, मामलातकार, खद्दरधारी, परमिट वाले आदि छोटे-बड़े बाबू-भैया हाजिर रहते। "ओह, कुत्ता भी क्या कुत्ता था!" एक कहता। कोई दूसरा कहता--"वो कोई कुत्ता था, अरे ब्रह्मज्ञानी था। पूर्वजन्म में खंडगिरि की गुफा में काफी जप किया होगा। देखो...सदा फाटक के सामने आंख मूंदे ऊंघता रहता था। मक्खी को भी नहीं मारता था।"

पूरे समारोह के साथ शवयात्रा निकाली। हर दल, हर मत के लोग कुत्ते की शवयात्रा में शामिल थे। दो कीर्तिनिया दल भी आ गये, स्वेच्छा से। 'बोल हरि बोल', 'राम नाम सत्य है', 'अल्लाह ओ अकबर' आदि कई नारे लगा रहे थे।

दरोगाइन ने भी जुलूस दूर से देखा, वह मन-ही-मन गर्व और गौरव से फूली न समाई। जुलूस किसी तरह डिप्टी साहब की कोठी के सामने से गुजरे, इसे देखने के लिए चुपचाप दो सिपाहियों को तैनात कर दिया था। गर्व में भरे सोच रहे थे, 'जब कुत्ते का ही इतना मान है, तो कुत्ते के मालिक का कितना अधिक होगा!' इतना सोचते सोचते वे फिर थूकते--'छिः छिः! कैसा अमंगल चिंतन!'

दुनिया में हर बात हो सकती है, लेकिन मौत किसी को नहीं बख्शती--चाहे दारोगा हो या मंत्री। दो वर्ष पूरे हुए, न हुए, दारोगा जी का भी ऊपर वाले का सम्मन आ गया। ऐसा कोई बड़ा कारण भी न रहा, बस तीन दिन का बुखार। फिर छाती में घड़घड़ाहट और बस खत्म।

चारों ओर यही चर्चा--आह! दारोगाजी चल बसे। ठेकेदारजी को कुछ भूख-सी लगी। अंटी में कोई कम तो नहीं देना पड़ता था। काम हो चाहे न हो।

अब शव उठेगा। काफी कह-सुनकर दो-चार आदमी ही जुटा पाये। मगर इतने से इतना बड़ा मुर्दा उठ सकेगा, दाह तो दूर की बात। आखिर थाने से सिपाही बुलाये गये।

दारोगाजी की स्त्री एक कोने में पड़ी है। बच्चे 'में में' करते रो रहे हैं। क्या हुआ? सब समाप्त हो गया। ऐसे पति की अंतिम यात्रा देखने आ गयी बाहर। मगर लोग-बाग कहां?

कुत्ते की शव यात्रा का दो वर्ष पुराना दृश्य आंखों के सामने तैर गया। इसमें और उसमें अंतर आंखों को पीड़ा दे रहा था। छाती को विदीर्ण करने वाले दुख में भी क्रोध उभर आया। कहने लगी–"सारे नमकहराम हैं!"

टामी

मैं कवि बिलकुल नहीं। फिर भी टामी को देखते ही मन में हजार तरह की बातें उभर आती हैं। आह, बेचारी! लाड़, चाव, स्नेह--जीवन में शायद अपनी छोटी-सी जिंदगी में कभी नहीं देखा। सिर्फ दुख, कष्ट, ठोकरों के बीच बढ़ती आयी है आज तक। शायद ऐसे ही उसकी आधी-अधूरी जिंदगी खतम हो जायेगी एक दिन।

हमारे यहां छोटे-बड़े सभी टामी को 'दुर दुर', 'भाग भाग' करते हैं। यहां तक कि बूढ़ा नौकर भी दोनों वक्त अच्छी तरह एक-दो बेंत सटकारे बिना नहीं रहता। बेमतलब टामी को पीटना हमारे घर का एक शौक बन गया है। सबको इसमें कुछ-न-कुछ मजा मिलता है। उस दिन टामी को खाने को कुछ न मिला तो वह भूख से छटपटाकर रसोई के दरवाजे तक पहुंच गयी। बूढ़े नौकर ने जलता लुआठा दे मारा। टामी का माथा जल गया। चोट से उसका सिर भी लहू-लुहान हो गया। रसोई के चमचमाते फर्श पर लाल लाल खून फैल गया।

किसी ने कहा--"बेचारी नन्हीं सी जान, जरा भी दया नहीं आयी।" दादी मां का उस दिन बड़ी एकादशी का व्रत था। तुलसीचौरा के पास माला जप रहीं थीं। टामी की चीख सुनकर तेजी से आयीं, लंबा सा आशीर्वाद दिया--"बहुत अच्छा किया, बेटे। हजारी उमर हो तेरी। कुलछनी कुतिया बैठने ही नहीं देती। दो दो बार पूजा के लिए रखा भोग खराब कर दिया।"

टामी बेचारी मार खाकर वहीं पड़ी रही। दादी मां से शह पाकर नौकर फिर आया। अपने फीलपांव वाले मोटे पैर से दो लात फिर जमायीं उसके घायल सिर पर। चें...चें कर वैसे ही पड़ी रही बेचारी। बस आंखें टिमटिमाती जिस-तिस के मुंह की ओर ताकती रही। मानो उस दृष्टि से बहुत-कुछ कहना चाह रही हो।

टामी सब की आंख का कांटा है। मानो कोई फालतू चीज है। उसमें जीवन नहीं, अनुभूति नहीं। बस, जूठन की तरह वह सबकी जरूरत के बाहर पड़ी है। कोई कभी याद नहीं करता, न ही बुलाता है। जोर से हुड़का देने पर भी वह नहीं जाती। अपने मन से वह आयी है, अपनी मर्जी से पड़ी रहती है। सब की लात-ठोकर वैसे ही सहती है। पता नहीं किस माया-ममता के कारण हमारे घर से बंधी पड़ी है।

हमारे यहां एक और पालतू जानवर है। वो है 'सारिया' तोता। सब उसका आदर करते हैं। बहू रोज राम राम सिखाती है। छोटी बहन हर रोज अपने हाथों दूध-भात खिलाती है। यहां तक कि बूढ़ा नौकर भी सारिया को दो-चार बार देख आता है। छुपाकर कुछ खाने को दे आता है। बड़ा लाड़ला है सारिया। सबका आदर और स्नेह पाकर मानो जमीन पर पांव ही नहीं टिकते उसके। टामी को देखकर पंख फुला, कमर मरोड़कर हरि के सिखाने के मुताबिक कहेगा-'जूठाखानी, कुती! मैली कुती कर....र....कर....र!' टामी बेचारी कुछ नहीं समझ पाती। मगर इतना जरूर समझती है कि सारिया मजाक कर रहा है। क्योंकि वह सारिया की ओर घड़ी भर देखती हुई खड़ी रहती है। फिर चुपचाप अनजान बनी सारिया के पिंजरे तले बैठकर ऊंघने लगती है। सारिया चोंच झाड़ता। उसमें से दूध-भात कुछ नीचे भी गिर जाता। बस वही खुशी से खा लेती। इसी तरह उसके असहाय, अभिशप्त जीवन के दिन कट जाते।

टामी को नहीं चाहते, इसमें टामी का भी कसूर कम नहीं। वह दिखती बड़ी कुत्सित है। एकदम काली देह। माथा त्रिभुज की तरह ऊपर की ओर उठा हुआ। चपटी, चिकनी थूथन। उसमें जीभ लपलपाती रहती है। भरपेट खाना न मिलने से देह की हड्डी हड्डी दिखती है। तरह-तरह के घाव, खुजली भी सारी देह पर भर गयी है। उसकी देह से कभी जूं, कभी चिंचड़े, कभी जोंक झड़ते रहते हैं। आदमी तो आदमी ठहरा, वह कोई साधु-महात्मा तो है नहीं। अतः टामी सबकी घृणा का पात्र बनी हुई है। सब उसका अनादर करें तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

पड़ोस के डाक्टर बाबू के 'भालू' को ही ले लो--कितना सुंदर, साफ चेहरा है। सफेद रोंये रेशम या सूत की तरह चमचमाते हैं। पतली कमर, लोचदार। बड़ी बड़ी सांवली आंखें दूर तक फैली। मगर टामी..... धत्....!

एक और बड़ी कमी है उसमें। वह है उसका बिलकुल शांत स्वभाव। किसी को वह कुछ नहीं कहती। घर में चाहे कितने ही अपरिचित आयें, काटने नहीं दौड़ती। उलटे उनके पांवों के बीच सिर डालकर हिल-मिल जाती है--मानो किसी जन्म का परिचित खाविंद है। आधी रात में चोर आ जाये तो टामी दो-एक बार जोर से भौंकेगी। मगर चोर कुछ चालाक हुए तो एक मुट्ठी चावल का भाजा डाल दे, बस वह चुप हो जायेगी। उनके सदुपयोग में लग जायेगी। कितना ही अपरिचित आदमी हो चाहे, टामी को एक-दो बार स्निग्धतापूर्वक हाथ से सहला दो तो टामी पूरी तरह उसकी हो जायेगी। उसे काटना तो दूर, उलटे उसके पैरों में लोटने लगेगी और उसकी देह से जाकर अपनी देह रगड़ने लगेगी। इसी बात पर घर में सब उस पर खफा। शांत रहना तो मानो उसकी बहुत बड़ी गलती है, जिसको क्षमा नहीं किया जा सकता। आदमी में जो गुण माना जाता है, पशु में वह दोष बन जाता है। और कुत्तों की तरह टामी भी गुस्सैल होती, आदमी को देखते ही काट खाने को दौड़ती, रात दिन भों भों कर भौंकती, तो शायद उसके गुण का मोल कई गुना बढ़ जाता, खाने-पीने

की कमी से हाड़ों का ढांचा नहीं होना पड़ता। मगर अबोध कुतिया, आदमी की इतनी कूटनीति कैसे समझ पाती? वह सदा वैसे ही शांत रहना पसंद करती है। यह उसकी बुद्धि का दोष है या प्रकृति का दोष, पता करना कठिन है। क्योंकि वह चालाक होती तो कब से अपनी प्रकृति बदलकर सबके आदर-ममता का पात्र बन गयी होती।

टामी के शांत रहने का एक और कारण है। चौबीसों घंटे लात-ठोकर खाकर वह इतनी शांत कैसे रह पाती है? इतनी चोट, भूख-प्यास में जरा सा तेज बचाये रखना कोई साधारण बात है? रोज भूख, प्यास, ठोकर, लात खा-खाकर यह टामी जड़ बन गयी है, अचल हो गयी है। जोर से एक बार भी भौंकने का उसमें साहस नहीं रहा। गुस्से के लिए देह में न जोर रहा, न ही इच्छा।

इसके अलावा लाड़, चाव स्नेह किसे कहते हैं, टामी ने बचपन से ही कभी न जाना। तभी यदि कोई हलके से उसकी देह सहला दे, मुट्ठी भर मुड़ी डाल दे, तो वह चाहे चोर हो, डाकू हो, अपरिचित हो, टामी उसकी ओर पूरी तरह से झुक जायेगी। आदमी का यह नरम स्वभाव उसे नया लगेगा। दुनिया में आदमी उसे खाना दे सकता है, उसकी देह सहला सकता है। यह मानो उसके लिए नया अनुभव होता है। उसके जीवन की यही चरम उपलब्धि होती है। ये सुंदर पल उसके जड़ जीवन में चेतना की लहर दौड़ा देते हैं। सब भूलकर उस आदमी के आगे लोट जाती है। तभी अनजान अपरिचित आदमी को काटना तो दूर, उलटे जाकर उसके हाथ-पांव चाटने लगती है, कूं...कूं कर उनके पांवों में लोट-पोट होने लगती है। यह है टामी का स्वभाव। इस स्वभाव के कारण घर में सब टामी से चिढ़े रहते हैं। मगर टामी सदा टामी रहती है।

टामी को घर से भगा देने की भैया की कई दिनों से इच्छा है। दो-तीन बार नौकर से यह बात कही भी है। नौकर ने भी कभी हुकम को तालीम करने में कमी न रखी। मगर टामी को कितना ही पीटो, कहीं नहीं जाती। दो-चार बांस की लकड़ी उसके पीटने में चाहे टूट जायें, टामी हमारा घर छोड़ और कहीं नहीं जायेगी। टामी कितनी ही बेवकूफ है, पर भैया उसे बिलकुल नहीं चाहते, यह बात मन-ही-मन वह खूब समझती है। तभी वह अंदर ड्योढ़ी में भैया की चप्पल की आवाज सुनते ही एकदम भाग निकलती है। साढ़े-दस बजे वे कचहरी चले जाते हैं। इस के बाद वह घर लौट आती है। जूठा-सूठा जो जहां मिला, खा लेती है। भैया के लौटने के समय फिर घर से बाहर कहीं चली जाती है। भैया के घर पर रहने का समय का उसे खूब ज्ञान हो गया है।

इस बात को लेकर भाभी और भैया के बीच काफी झगड़ा हो गया। बात शुरू हुई--बुलू की पढ़ाई-लिखाई को लेकर। बुलू भैया के पास जरा भी पढ़ना नहीं चाहता, क्योंकि भैया ठहरे क्रोधी। जरा कोई गलती हुई कि चटाक से थप्पड़ लगा देते हैं।

अतः बुलू पढ़ाई के समय भाभी के पास जा छुपता है। भैया चिढ़कर खींचतान करते हैं। भाभी बुलू का पक्ष लेकर उसकी वकालत करती हैं। उस दिन किसी बात पर भैया

ने बुलू को एक थप्पड़ मारा था। बुलू जोर से रो उठा। अब भाभी को भला कौन संभाले? बुलू को पढ़ने की जगह से उठा ले गयी। एकदम कड़े शब्दों में भैया को सुना दिया--"तुम्हारे मारे तो एक मामूली कुतिया तक घर छोड़ भाग जाती है। यह तो वैसे भी बच्चा है... जाओ ना। सात जनम में ऐसी पढ़ाई नहीं देखी थी मैंने....।"

भैया हतप्रभ हो गये। भाभी के मन में टामी के प्रति दया में इससे कोई वृद्धि हुई हो, सो भी नहीं। टामी का भाग्य सदा से ही ऐसा है।

घर में सिर्फ हार ही उसे चाहती थी। मगर बिल्ली का बच्चा जब से पैदा हुआ तब से टामी को पास ही नहीं फटकने देती। इस बिलाव को वह स्कूल जाते समय भी गोद में ले जाती है। सोते समय पास लेकर सोती है। और जिस दिन खाते समय पोड़-पीठा[1] हाथ से गिर पड़ी थी तो टामी ने खा लिया था, उस दिन से वह भी उस की दुश्मन बन गयी। इस तरह टामी घर में सबकी मार, गाली सहती रही। घर भर का जमा क्रोध वह सिर झुकाकर अकेली सहती है। कभी कोई उज्र नहीं करती। कोई असंतोष नहीं। किसी प्रकार के असंतोष की शिकन तक अपने माथे पर नहीं आने देती वह।

चुपचाप सब सहती। बस जूठन के सहारे टामी हमारे घर में पड़ी है। नौकर की लाठी, दादी मां द्वारा बुहारी की मार, भैया की चप्पल की मार... सब कुछ ही बर्दाश्त करती है। मैं कुछ नहीं समझ पाता, बस गहरी सांस लेकर कह देता--"हाय रे अभिशप्त जीव!"

उस दिन स्कूल से लौटा तो देखा कि दादी मां दर्दीले स्वर में कह रही हैं--"अरी हार। बेटी जा, टामी को थोड़ा दूध तो दे आ... बिचारी ने सुबह से कुछ नहीं खाया, आह! गला तो सूख गया होगा।"

"अरे ओ... तुम्हीं जरा जाओ," नौकर से कहा।

बात कुछ समझ में नहीं आयी। मन-ही-मन ताज्जुब हुआ--आज टामी के प्रति दादी मां में अचानक नेह-प्यार क्यों?

मुझे देखकर हार दौड़ी आई। हाथ पकड़कर कहने लगी, "नंदा भैया! चलो, टामी को देख आयें!"

हार मुझे खींचती सी घर के पिछवाड़े ले गयी। वहां जो देखा लगा जैसे कोई सपना देख रहा हूं।

एक साफ बोरा पड़ा है, जिस पर चारों हाथ-पांव पसारे टामी चित पड़ी है। बड़ी बड़ी आंखें तनिक मुंदी दिख रही हैं। उसे घेरे हैं चार पिल्ले--वे भी आंख मींचे हैं। भाभी और नौकर दो कटोरी लिये उनके मुंह के आगे दूध लगा रहे हैं, नौकर टामी का सिर सहलाता कह रहा है--"...ले...ले...खा...खा।"

आनंद और खुशी से मेरा मन नाच उठा। इस अनाहत और असहाय जीव के प्रति उनके प्यार और आदर का कारण समझ उनकी ओर मैं मुग्ध हो विस्मय से देखता रहा।

---

1. एक तरह की मिठाई।

माटी का ताज

ससुराल जाने के साल भर बाद पति से छोटा-मोटा झगड़ा कर उससे तलाक ले अमीना बैलगाड़ी में सामान लादकर आ गयी। बापू दिलेर मियां उस वक्त बाहर बरामदे में बीड़ी बना रहा था। दूर से बैलों के घूंघर-घंटी की आवाज सुनकर कुछ लोग बाहर देखने निकल आये कि कौन आ रहा है। पड़ोस का मदना खटोई भी थाली पर से उठ गया यह देखने कि कौन आ रहा है। उत्सुकता से सब उधर देखने लगे। बैलगाड़ी से उतर, उठी हुई आंखों से बचने के लिए अमीना तमतमाती हुई घर में चली गयी। एक कटाक्ष में मदना को बींध गयी। अस्पष्ट आवाज में बोली, "मदन भैया, सलाम!"

बूढ़े दिलेर खां ने बीड़ी बनाना बंद किया। बेटी की ओर देखा। फिर कैंची झनझना उठी।

मदना अपनी कुल्हाड़ी, लोहे का गज, निहान लेकर पसीने में भीगता निकल पड़ा पत्थर काटने। कुल्हाड़ी की चोट ठीक से पत्थर पर नहीं पड़ रही। मगर मदना अनथक पत्थर काटता रहा। पसीने पसीने होता रहा।

अमीना आयी तब से गांव भर की आंखें दिलेर खां के घर पर गड़ी रहती हैं। क्या हिंदू क्या मुसलमान, बस्ती का जो कोई उधर से निकलता है दिलेर के घर पर जरूर निगाह फेंकता जाता है। दो-चार छोकरे साइकिल का चक्का चलाते चलाते टकराकर गिर पड़ते हैं, ठीक दिलेर के घर के आगे। धीरे धीरे उठते हैं, कुछ हो जाता है--अनायास। दिलेर देखने के लिए सिर उठाता है। दो-चार मुसलमान छोकरे पिछले वर्ष ताजिया देखने गये तो एक टेनिस की गेंद ले आये। गांव के रास्ते पर खेलते खेलते दिलेर के घर जान-बूझकर फेंक देते। इस तरह बचपन की पहचान की अमीना आपा को देखने का मौका नहीं छोड़ते।

दिलेर खां यह सब न समझता हो, ऐसी बात नहीं। मगर मन की बात वह मन में ही छिपाये रखता है। हाथ की कैंची से सूखे तेंदू पत्ते काटते काटते फेंक देता है। झनझनाहट होती है।

पीहर आकर अमीना एकदम बदल गयी है।

दो दिन बाद। सांझ को मदना खेत से लौटकर आंगन में बैठा था तो सुना--अमीना

अपने घर की ओर किसी से झगड़ा कर बैठी है। केवल इतना ही नहीं, झगड़ा करते करते ही, कहते हैं, वह बेहोश हो गयी। पता नहीं, क्या क्या बकती रही। शादी होने के साल भर के भीतर ही अमीना क्यों ऐसी चिड़चिड़ी हो गयी? मदना समझ ही नहीं पाया उस की बात।

अगले दिन दुपहर में मदना घर आया तो पत्नी से सुना कि उनके और अमीना के घर के बीच की टूटी बाड़ को बकरी लांघ गयी। अमीना आकर चार बात सुना गयी उसकी घरवाली को।

मदना के आगे उसकी घरवाली गुरुवारी फरियाद करने लगी हाथ-पांव हिला हिला--"पठान की बेटी के जो मुंह में आता है, कह देती है। उसकी बातें एकदम छुरी की तरह चुभ जाती हैं। यों बिना समझे क्या खसम छोड़ देता। उई मां! ऐसी कोई कलहगिर भी है इस दुनिया में? उस पठान के घर कोई और जनानी नहीं। वो जुलेखा है, जुवेदा है, हमीद नीसा है, इस तरह क्या और कांटें में वो फांस डाल किसी से झगड़ा करती हैं? उनकी आवाज आज तक किसी ने सुनी?" मदना ने गंभीर होकर सारी बात सुनी, लेकिन बोला कुछ नहीं।

पथिरिया साही के आखिर में है मदना का घर। उसके घर से सटकर है दिलेर खां का घर। छान से लगकर छान है और बीच में बाड़ लगी है। छान से छान लगकर घर होने से पता नहीं पिछले सौ वर्ष में कितनी बार झगड़ा हुआ होगा। मगर अमीना ने आकर जैसी फजीहत की, वैसा तो मदना ने कभी सपने में भी नहीं सोचा होगा।

अमीना मैके आकर एकदम बदल गयी। घर की सारी बागडोर उसके हाथ में चली गयी है। छोटी बहन मरियम उसके आगे मुंह नहीं खोल पाती। और सत्तर वर्ष के बूढ़े बाप को देखो--कैसे चूहा बन जाता है उसके आगे।

बाप के कमरे में जो बीड़ी का कचरा पड़ा रहता था, वह अमीना ने आकर पिछवाड़े की ओर फेंक दिया। मुर्गियां रोज रसोई में घुसकर हजार तरह की गंदगी फैलाती रहती हैं। अमीना ने उसे पकड़कर एक डलिया के नीचे ढंककर बंद कर दिया है। घर-बार में कहीं जरा भी गंदगी देखी तो मरियम की देह पर हाथ जमाने में भी नहीं चूकती।

दिलेर खां सुबह से शाम तक बैठा बीड़ी बनाता रहता है बरामदे में। दिन भर में कई बार अमीना का गरजना-तरजना व चिल्लाना और साथ में मरियम की रुलाई सुनता। हाथ रोक उस तरफ कान लगाता है। फिर गंभीर होकर फुर्ती से हाथ चलाने लगता। कभी कभी मरियम अमीना से लात-ठोकर खाकर बापू से फरियाद करती। बापू बेचारा सब सुनता, मगर कहता कुछ नहीं। बस, बीड़ी बनाने में लगा रहता।

सिर्फ घर में ही नहीं, अड़ोस-पड़ोस के लोग भी अमीना के व्यवहार से तंग आ गये, अमीना की आग में झुलस उठे। कोई कोई तो दिलेर से अमीना के विरुद्ध शिकायत कर जाता। कोई सलाह देकर कहता--'अमीना का दुबारा निकाह जल्दी कर दो।' अपनी सहेलियों

से अपने निकाह की बात सुनती तो दांत पीसकर ऐसे झिड़कती कि उनकी बोलती बंद हो जाती। निकाह बातों में ही रह जाता।

अमीना को सबसे ज्यादा गुस्सा मदना की घरवाली पर है। उससे झगड़ा कर जी भर गालियां सुनाने के लिए वह हरदम किसी मौके की तलाश में रहती है। उस दिन अमीना का मुर्गा मदना के घर में किसी तरह बाड़ लांघकर भीतर चला गया। इसी बात पर गुरुवारी की चौदह पीढ़ियों की खबर ले ली। गुरुवारी उसकी मुर्गियों को आवाज देकर उनके अंडे बाजार में बेच आती है--यह बात अमीना सबको जोर देकर कहती। किसी के साथ झगड़ा करते समय अमीना को न तो अपने कपड़ों का होश रहता, न घरबार का। वह हांफने लगती। उस दिन गुरुवारी के साथ झगड़ा करते करते अमीना बेदम होकर होश खो बैठी। हाथ-पांव ऐंठने लगी। गोरा चेहरा स्याह पड़ गया। मरियम देर तक माथे पर पानी के छींटे मारती रही, तब जाकर होश आया।

मदना सांझ ढले घर लौटा तो गुरुवारी ने उससे आगे सारी बात कही। "इसका प्रतिशोध न लिया तो मैं पीहर चली जाऊंगी," धमकी दी। मदना ने 'देखेंगे देखेंगे' कहकर बात टाल दी। अमीना के साथ आमने-सामने पड़ झगड़ा करने की उसकी जरा भी इच्छा नहीं होती थी।

"अमीना ससुराल से आकर कुछ चिड़चिड़ी, कड़े मिजाज की हो गयी है," वह पत्नी को समझाने की कोशिश करता ताकि बात को वह सह ले और आगे न बढ़ाए।

ज्यों ज्यों दिन बीतने लगे त्यों त्यों गुरुवारी अमीना के अत्याचारों से अस्थिर हो उठी। किसी दिन मदना की गाय दिलेर के आंगन में चली गयी, कभी बरसात में मदना के नाले का पानी जाकर दिलेर खां के खलिहान में भर जाता। इन छोटी छोटी बातें को लेकर अमीना ने गुरुवारी के विरुद्ध जो प्रलय मचा दिया, इस में बस्ती के और पांच लोग भी गुरुवारी का पक्ष लेकर अमीना को कायल किये बिना न रह सके। पंचू खां, मागुणी बख्श, इरफान मियां आदि गांव के मुखिया लोगों ने दो-चार बार इस बात को लेकर दिलेर खां को समझाया। मगर बेटी को धमकाने की दिलेर में जरा भी हिम्मत न थी। भले लोगों का उपदेश सुन, दबने के बजाय अमीना जलती आग में घी की तरह और भड़क उठी जोर से।

आखिर निरुपाय होकर मदना ने जाकर एक दिन दिलेर खां के आगे मुंह खोलकर फरियाद की। बरामदे के नीचे हाथ जोड़कर खड़ा हो, बोला, "ये सब क्या अच्छा लगता है, दिलेर भैया? घर की बात बाहर रास्ते पर होना क्या अच्छा लगता है तुमको?"

बूढ़े दिलेर खां ने बीड़ी बनाते बनाते सब सुना। दो क्षण बीड़ी बनाना रोककर माथे पर हाथ मारा, खुदा को दुआ-सलाम कर रह गया। फिर अपने काम में लग गया।

मदना उसके नाम से बापू के पास शिकायत करने आया है उसकी। अमीना ने अब की गुरुवारी को छोड़ मदना की सात पीढ़ी की बखिया उधेड़ कर रख दी। मदना को सुना-सुनाकर जोर से कहा--"हरामजादा, बीवी का गुलाम बना फिरता है। मुझे नहीं जानता।

दोनों का खून पी जाऊंगी।"

अमीना से ऐसी गाली सुनने का उसका पहला अवसर था। पहले तो उसे अपने कानों पर विश्वास ही नहीं हुआ। जिस अमीना के साथ बचपन से खेल-कूदकर आदमी बना है, वह उसके मुंह पर ऐसी बात कहेगी। समझ ही नहीं पाया। मन में उथल-पुथल मच गयी।

उस रात नीचे आकाश में पूरा चांद चमक रहा था। उस चांदनी में मदना आंगन में चटाई पर लेटा लेटा इधर उधर की बातें सोच रहा था। बचपन की उस भोली-भाली और आज की इस झगड़ालू अमीना के बारे में तुलना करता रहा। इसमें उसे कहीं कोई सामंजस्य ही नहीं दिखा।

उसके जीवन के बीते वर्ष फिर जी उठे, एक नये रूप में खड़े हो गये उसकी आंखों के आगे। याद आया--बचपन में अमीना और वह कैसे घरौंदे बनाते, खेला करते थे। उसी खेल के बाद सफेद झक चांदनी याद आ गयी--अमीना के गुलाब से चेहरे पर केशों का स्याह झरना नाचता खेलता। और उसके होठों पर सदा एक शोख हंसी नाचती रहती। पतले होठों पर मुलायम मुस्कान। वह मन-ही-मन सोचने लगा--कहां गये वे दिन? क्या दुबारा उनमें लौटा नहीं जा सकता?

तब मदना की मां जीवित थी। मदना के घर माणबसा[1] के दिन मां चुपके से जाकर अमीना और उसकी बहन मरियम को बुला लाती। मदना, अमीना और मरियम को पंक्ति में बिठाकर तीनों के आगे केले का एक एक पत्ता रख पिठा[2], पना, शरबत आदि परोस देती। फिर खाना-पीना हो जाने के बाद, तीनों की जूठी पत्तल खुद उठाकर घर के पिछवाड़े फेंक आती।

"पठान का जूठा उठाती है!" घर वालों में से कोई ताने देता, तो वह जवाब दे देती--"ओह, भला गौ की पूंछ के बराबर तो ये बच्चे हैं। उनकी भी कोई जूठन होती है? क्यों रे, अमीना क्या मेरी बेटी नहीं? और क्या मेरे पेट से पैदा होती तो क्या अपनापा अधिक होता?" अमीना के घर कभी ईद, नमाज-रोजा या खाना-पीना होता, तो अमीना चुपके से आकर मदना को बुलाकर ले जाती। शब-ए-बारात, ईद, बारावफात के मौके पर अमीना ने खुद मदना को क्या कुछ नहीं खिलाया है? मदना को अपने घर में खाते देखकर बूढ़ा दिलेर खां कहता, "हमारे घर खाने पर तेरी जात तो नहीं गयी, रे मदना? गयी तेरी जात गयी!..."

पठान के घर खाया है--यह बात सुन बस्ती के कुछ लोगों ने मदना की मां को धमकाया। उस पर तरह तरह के बंधन लगाये। मां हंसकर कहती--"मेरे बेटे को तुम बेटी नहीं दोगे, न सही। वह कुंवारा रह जायेगा, बस!" मगर बाद में कुछ सहमकर बोली, "ठीक

---

1. मंगसिर के गुरुवार को की जाने वाली पूजा।
2. मिठाई।

है, आज मैं उसे गंगाजल, पंचामृत देकर शुद्ध कर लेती हूं। कितना ही मना करो वह नालायक छोकरा किसी की सुनता ही नहीं। क्या घर में किसी चीज का अभाव है?" मदना पास में होता तो कहती, "नासपिटे!" और झूठी-सच्ची दो-एक थप्पड़ या चपत भी लगाकर खींच ले जाती उसके सामने। "इस पेटूमल को कभी पूरा पड़ता ही नहीं " बस, वहीं उस जटिल समस्या का फैसला हो जाया करता था। इतना ही नहीं, बचपन में आंख-मिचौली खेलते। बाघ-बकरी खेलते समय दोनों एक-दूसरे के आगे कितने प्रण करते। फिर लाज से लाल पड़ जाते, उन्हें याद करके। आज उन भूली बातों ने मदना के मन को मथ डाला है।

मदना को याद आया--कितने ही दिन हुए....ऐसे ही भादों की पूनम की रात थी... उस के हाथ में अमीना का हाथ...दोनों आंगन में, धुंधली चांदनी रात में, सहजिन के पेड़ तले बैठे भविष्य की बात कर रहे थे। कानाफूसी करते हुए धीमे धीमे बोल रहे थे। तब शायद मदना पंद्रह का और अमीना बारह-तेरह की हो गयी होगी। रात कितनी हो गयी, उधर किसी को होश ही नहीं था। मदना की मां रसोई का काम निपटाकर आंचल की ओट में ढिबरी लिये निकली। आकर बोली, "आज तुम दोनों का खेल खतम नहीं होगा?" तब जाकर दोनों को होश आया। अपने अपने घर गये। मदना चित लेटा आंगन में उस घने सहिजन की ओर ताकता रहा। रात के सन्नाटे में चांदनी में नहाए सहिजन के बेशुमार पत्ते पानी में सेवार की तरह झूम रहे थे।

मदना को याद आया, कभी कभी वे दोनों गांव के छोर पर सौ बरस के बूढ़े हाजी साहब मुस्तफा के पास कहानी सुनने जा पहुंचते थे--अरब के रेगिस्तान के मुसाफिर की कहानी, बुलबुल की कहानी, अलीबाबा और चालीस चोर की कहानी, बगदाद की डायन की बात, निर्जल रेगिस्तान में ऊंट और फकीर की बात। सुनकर दोनों डरते हुए और पास पास सट जाते। दूर रेगिस्तान के उस पार खजूर के झुरमुटे में बेहोश सोये हरे द्वीप पर चले जाने की बात अमीना की भरी आंखें कहतीं। वे नशीली आंखें आज भी मदना को याद हैं।

मदना पंद्रह बरस की उमर तक किसी को जानता ही नहीं था। अमीना को छोड़ किसी दूसरी को। अमीना भी तेरह बरस की उमर तक 'मदना भैया' कहती। तब एक का घर ही दोनों का घर था। दोनों एक-दूसरे के दिन-रात के साथी थे, और रात में सपने बन जीवन का सबसे तरल और मधुर समय बिताया था उन्होंने।

इसके बाद एक दिन--

उस दिन मदना की अमीना से भेंट नहीं हुई। कितना ढूंढा, पोखर, झुरमुट, अमराई आदि पर जहां जहां अमीना के साथ उसकी नित भेंट हुआ करती थी। चारों ओर वह उसे दो-तीन दिन व्यर्थ में ही खोजता फिरा। चौथे दिन सवेरे सवेरे मदना जाकर अमीना के घर के बाहरी बरामदे में चुपके से जा खड़ा हुआ। बूढ़ा दिलेर खां बरामदे में ही बैठा बीड़ी बना रहा था। उदास चेहरे से मदना ने पूछा, "अमीना है?"

बूढ़े दिलेर खां की सफेद दाढ़ी पर हलकी सी हंसी की लहर दौड़ गयी। पल भर बीड़ी बनाना रोककर बोला, "अमीना बड़ी हो गयी है। अब किसी से भेंट नहीं करेगी। जल्दी ही उसकी शादी होने वाली है।"

मदना चुपचाप लौट आया। उसके बाद से अमीना के साथ बातचीत का कोई मौका नहीं आया, न मदना कभी अमीना को पूरी नजर देख सका।

दूर, बहुत दूर से कभी कभी अमीना की छाया उसकी आंखों में पड़ जाती, पर वह ठीक से देख पाता, उसके पहले ही वह चली जाती, कहां गायब हो जाती।

किसी दिन गणेश मारवाड़ी के घर का पक्का काम करने निहान और हथौड़ी लेकर निकला तो अमीना के घर के पास थूहर की बाड़ में किसी की चूड़ियों की खनक सुनाई पड़ी। दूर से अमीना उसकी ओर अपलक देख रही है। आंखें चार होते ही अमीना की आंखें झुक गयीं, चुन्नी ठीक कर वह तुरंत पेड़ की ओट में जाकर छुप गयी।

फिर एक दिन मदना उस राह जा रहा था, देखा तो अमीना अपने घर के कुंए से पानी खींच रही है। मदना को देखते ही अमीना का गगरा कुंए में ही रह गया। बाहर का दरवाजा खुला रह जाने पर अमीना के घर का बाहरी आंगन रास्ते से ही दिख जाता है। रस्सी हाथ-पांव में उलझकर रह जाती। उसकी सूखी बड़ी बड़ी आंखें दूर से उसकी समूची देह बींध जातीं। इसी तरह जाने-अनजाने, बोले-बिन बोले, देखे-अनदेखे दोनों के दिन बीतते रहे।

मदना ने एक दिन अचानक सुना कि अमीना के घर पर काफी हो-हल्ला हो रहा है। काफी लोग-बाग आये हैं। कोरमा, पुलाव और जाफरानी बिरियानी से दिलेर मियां का घर-बार महक रहा है।

इस के एक पखवाड़े बाद ही, तराई में बसा एक छोटा सा गांव बाजे-गाजे, पटाखे और रोशनी से भर उठा। दूल्हा आया, बारात आ पहुंची। मौलवी, काजी, नाऊ आदि सब आये।

दूल्हे की तरफ से दो वकील अमीना का मत जानने के लिए आम रिवाज के अनुसार अंदर गये। दूल्हेवालों ने देने के लिए सोने का हार भेंट किया। इसके बाद अमीना से काजी ने पूछा, 'वधू अमीना की मर्जी है या नहीं?' नामर्जी का कुछ पता न चला। उसकी सहमति जानने के लिए उसके हाथ में पांच रुपये दिये गये। एक वकील ने थाली लेकर उसमें रुपये गिरा दिये और कह दिया--वह राजी है, यह बात बता देने का हुक्म दिया। शायद इसके बाद अमीना का हाथ कांप गया था। उसके बाद उसके क्लांत शिथिल हाथ की मुट्ठी से चांदी के रुपये अपने बोझ से खुद झनझनाकर गिर पड़े थे। वकील अमीना की सहमति लेकर दूल्हे के पास हाजिर हुआ। अमीना के उस हाथ के इशारे में उसके मन की सहमति थी या नहीं, इसे समझने का किसी के पास वक्त न था। खुद अमीना भी इतने बाजे-गाजे,

लोग-बाग, कुटुंब के लोग, काजी-मौलवी की भीड़ में अपने मन की बात कुछ कह नहीं पायी।

दूल्हे की इस शादी से सहमति है या नहीं, यह जानने के लिए अब वकील ने जाकर आम ढंग से पूछा, "कुबूल है?" उसने तुरंत रजामंदी जाहिर की--"कुबूल है।" वहां उपस्थित सब लोग खुश हो गये। काजी साहब ने विवाह का सारा काम निपटा दिया। गांव भर को पता चल गया--शुक्रान पढ़ी गयी।

शादी के बाद रुखनुमाई शुरु हुई। दूल्हा-दुल्हन को एक-दूसरे का मुंह देखने के लिए अलग कमरे में लाया गया। अमीना के हाथ में एक आईना थमा दिया गया। उसमें अपने खाविंद का चेहरा देखेगी। आईने के साफ कांच पर उस के खाविंद का काली काली दाढ़ी वाला चेहरा उभर आया। अमीना की अनिच्छा होने पर भी आंखें वहां से हटकर आवारगी में उस कमरे की दीवारों पर इधर-उधर फिरने लगीं। शुभ दृष्टि का लगन मुरझा गया।

यथा समय बारात रुखसत हुई। अब दिलेर खां का घर सुनसान हो गया। उस सन्नाटे की तेज धार माटी की दीवार को लांघकर इधर आती और हर पल मदना को चीर जाती।

तभी मदना को याद आया--ससुराल जाने के दो घंटे पहले अपने आंगन में खड़े होकर फटी दीवार से एक बार अमीना को देखा था उसने। अमीना वधू के रूप में सजकर अपने आंगन में खड़ी थी। शादी के शोरगुल से बचने के लिए हटकर जरा दम लेने के लिए खड़ी थी वहां। मदना ने आंख से आंख मिलते ही देखा--अमीना की आंखें कई दिनों की उनींदी हैं। वह और आगे देख नहीं सका उस ओर।

अमीना की शादी के बाद मदना ने जिद पकड़ ली शादी के लिए--पता नहीं किस पर, कई दिन का, कौन सा गुस्सा निकालने के लिए। किसी को भी गले में बांधने के लिए उतावला हो उठा। कोई पूछता तो कहता--"क्यों? शादी तो सभी करते हैं। मैं क्या आदमी नहीं? मैं शादी के लायक नहीं?"

महीने भर में मदना गुरुवारी को चार कोस तंडीकणा गांव से उठा लाया। आज इस सुनसान रात में सहिजन की धुंधली छाया में अतीत की वह पुरानी कहानी फन उठाकर खड़ी हो गयी है।

दिल की गहराई में सोये नाग आज विस्मृति के ढूह-तले से बाहर निकल खुली रोशनी में फिरना चाहते हैं।

सोचते सोचते पता नहीं कब मदना की आंख लग गयी। इसी बीच रसोई का काम पूरा कर गुरुवारी भी आकर ऊंघती सो रही उसके पास। आधी रात गये नींद टूटी। देखा, सफेद कपड़ों में कोई हिलडुल रहा है, और एकटक उसे देख रहा है। मदना ने छाती पर से गुरुवारी का हाथ झटक दिया। आंखें मलते हुए खड़ा हो गया। देखा, आकाश में सफेद झक चांद वैसे ही मुस्कुरा रहा है। वह छाया दीवार की ओट में धीरे धीरे सरकती जा रही है। मदना ने आवाज दी, "कौन, कौन है?"

कोई आवाज नहीं। जहां दीवार फटी हुई है, उधर छाया नहीं, धुंधलका भी नहीं। चांदनी में अरवा चावल की तरह सब साफ दिख रहा है। छाया को उस ओर जाते देख मदना पहचान गया--अरे, यह तो अमीना है। उसकी दोनों बड़ी बड़ी आंखें ज्वार-भाटे जैसी दिख रही हैं। उनमें क्लांति-ही-क्लांति की परतें जमी हुई हैं। मदना ने आवाज दी--"अमीना!"

छाया उस टूटी दीवार के पीछे दिलेर खां के आंगन में चली गयी। मदना लौट आया।

फिर रात भर उसे नींद नहीं आयी। मन डर से भर गया। वह अमीना का मतलब कुछ भी नहीं समझ पाया। अमीना की बड़ी बड़ी आंखें हर पल शिकारी की तरह उसका पीछा करती रहीं। गुरुवारी डर न जाये, अतः कोई बात खुलासा कर नहीं कही उसे।

मदना को याद आया कि अमीना सुबह धमकी दे गयी है--'दोनों का खून पी जाऊंगी!' तो क्या वह इतनी रात गये मेरा और गुरुवारी का खून करने आयी थी? किंतु अमीना की आंखें उसकी इस आशंका का प्रतिवाद करती सी लगीं उसे। खून करने ही आती तो यों उसकी तरफ एकटक देखती नहीं रहती। उस रात का सारा रहस्य, सारी गहराई उसकी आंखों में छुपी थी। मदना को याद आया--ससुराल जाने से पहले भी अमीना ठीक इसी तरह देख रही थी। फिर याद आया--कहां...., उसके हाथ में कोई छुरी या गंडासा तो नहीं था।

मदना को इस रहस्य का कोई ओर-छोर नहीं मिला, सोचते रहने के बावजूद भी।

इसके बाद कुछ दिन बाद अमीना अचानक बेहोश होकर गिर पड़ी। वह बराबर बड़बड़ाने लगी। वह अपने पति और गुरुवारी के विरुद्ध जहर उगलने लगी--अपने पति को जहन्नुम में भिजवा कर रहेगी।.... गुरुवारी का खून करेगी--ऐसी ऐसी बातें दिन भर बड़बड़ाती रहती।

कई कविराज आये, हकीम आये, मगर अमीना को होश नहीं आया।

वह अपने बाल नोंच लेती, अपनी बांहों को काट-काट कर घाव कर लेती। अपने पति और गुरुवारी को गालियां देते देते थक जाती, तब वह मदना की ओर मुखातिब होती--मदना ही सारे अनर्थ का मूल है, मदना ने मेरा खून किया है। वह और जोर जोर से बड़बड़ाने लगती।

रात कफ जम गया छाती में। कविराज ने नाड़ी देखकर कहा--निमोनिया के लक्षण हैं। बेहोशी में वैसे ही बड़बड़ाती रही।

अगले दिन कफ और बढ़ गया, गला रुंधने लगा।

सुबह खबर फैल गयी--अमीना मर गयी है। गुरुवारी ने खुशी में मदना को बताया, "मेरी... वो मेरी आफत मिट गयी है!" मदना ने उसकी बात का कोई जवाब नहीं दिया, अनमने स्वर में कहा--"ओह, बेचारी बहुत छटपटाकर मरी!"

अमीना की लाश पश्चिम की ओर लिटा दी गयी। अंतिम स्नान कराया गया। नमाज पढ़कर ताबूत में रखा गया। कब्रिस्तान चल पड़े। अमीना की आत्मा को सद्‌गति के लिए मौलवी ने जनाजे की अजान पढ़ी--'शुभनका आलम हुमा वही मजीका सनौका वातवार

हक समूह का वाता अल्ला यदूका वलाइलाहागरेका.... ।'

कंधा देने वाले सारे रास्ते ताबूत उठाये, कंधे बदलते जा रहे थे-- काना आलम खयार।

बेलदारों ने कब्र खोदी, शव का संस्कार किया गया। अमीना की देह उस गड्ढे में लिटा दी गयी। आखिरी नमाज पढ़ी गयी--

"बिस्मिल्हा ही मजरीहा वमुरशाह इनारवी लडाफुर रहीम...."

और धरती के गर्भ में अमीना की नन्हीं सी माटी की देह कहीं छुप गयी।

कुछ दिन बाद मदना ऐसे ही दिलेर खां के घर पहुंचा, बोला, "अमीना का मजार बनवाना होगा। मैं खुद पत्थर काटकर चूने का पलस्तर देकर बना दूंगा। एक पैसा भी मजूरी नहीं चाहिए।" बूढ़ा दिलेर खां बीड़ी बनाते बनाते सब सुनता रहा, गंभीर होकर। फिर बोला, "तेरी जैसी मरजी हो कर, खुदा की जो मरजी। मैं अब और किसी को रोकूंगा नहीं।"

अगले दिन जाकर देखा, मदना अमीना की कब्र पर चिनाई कर रहा है।

रोज सांझ को वह पत्थर की चिनाई कर लौटते समय वहां रुकता, पत्थर पर पत्थर रख कब्र बनाने लग जाता।

रात में तोरई के फूल की तरह चांद सांवले मसान पर चांदनी बिखेर देता। तब मदना अमीना की कब्र पर बैठ अपने अतीत के जले मसान की ओर देखता। याद आता वह दिन जब गांव में किसी की कब्र देख अमीना ने उससे कहा था--'मेरे मरने के बाद तू ऐसी कब्र बना देगा तो?' दूर से अमीना की बचपन की कोमल हंसी की तरह चांदनी तैर आती है और कब्रिस्तान की धरती पर फैली घास में लहराती हुई बह जाती है।

कोई नहीं

कलकत्ता के बड़ा बाजार में अंधेरी बाइ लेन में वह छोटा सा संकरा टीन का घर। हमेशा की तरह उस दिन भी सांझ में मजलिस अच्छी तरह से जमी थी। घर के नाम पर ईंट की बनी चारदीवारें, उस पर लंबे लंबे बांस डालकर लंबी लंबी टीनों से ढांप दिया गया था। पिछली दीवार पर चार हाथ ऊंची बड़ी जाली--उसी को ये झरोखा कहते हैं। उस झरोखे के अंदर की ओर एक टाट बंधा है जो बांस की खपच्चियों के सहारे झूल रहा है। रात में कभी कभी अधिक ठंड पड़ने पर टाट डालकर झरोखा बंद कर दिया जाता है। घर के अंदर चारों ओर चमगादड़ चीं चीं करते हैं। दीवारों पर, फर्श पर चारों ओर गंदगी और जाले; हर जगह चमगादड़ों की बींट।

पीछे की ओर एक बांस टंगा है, उसकी अलगनी बनायी गयी है। उस पर झूल रहे हैं दुनिया भर के गंदे गमछे, मैले-कुचैले कपड़े, चिरी-फटी गंजियां, कमीज, कोट वगैरह। घर में नीचे रखे पिटारे, काठ के संदूक वगैरह कुल मिलाकर दस-बारह होंगे। पान चबाकर चूने के हाथ पोंछते पोंछते काले संदूक बाहर की ओर से एकदम सफेद दिखने लगे हैं।

उसी सीलन-भरी अंधेरी कोठरी में रात होने पर पांच आदमी कंथा डालकर, सिरहाने धोती का तकिया लगाकर लेट जाते हैं। दिन उगने पर अपने अपने काम पर निकल जाते हैं। कौन किधर जाता है, कब लौटता है, ऊधव भैया के होटल में कुछ खाकर फिर काम पर चला जाता है--किसी को किसी की खबर नहीं होती।

पांचों कार्पोरेशन में मजदूर हैं। सड़क की मरम्मत करते हैं। कहीं सड़क कटने-टूटने पर दोनों ओर बांस की टोकरी के नीचे जली लालटेन रख देते हैं। 'रास्ता बंद है' या 'रोड क्लोज्ड' का टीन लटकाकर अपने अपने काम में जुट जाते हैं। कोई अलकतरा डालता, कोई कुदाल, फावड़ा उठाता और पत्थर फेंकता, फोड़ता, कोई भारी रोलर चलाकर उसे समतल करता। पसीने में तर औरों के साथ जोर से बोल उठता, 'हो....ले....सा....!''

जिस दिन मजदूरी मिलती उस दिन सांझ होने पर लौटते समय त्रिनाथ ठाकुर की पूजा शुरू करते। बारी बारी से हरेक उस दिन का गांजे, सुलफे का खर्च देता। खंजड़ी पर थाप लगती, भजन-दोहा बोलते, गांजे की फंकी के साथ दुनिया भर की डींग हांकते, दूर की लफ्फाजी की हवा घर में पैंतरा मारती। पांचों की दिन भर की चर्या--उनका पांचों का

खाना-पीना, काम-धाम, बातचीत--सब करीब करीब समान है, कहीं रंच भर भी फर्क नहीं, फर्क सिर्फ उनके रात के सपनों में होता।

रात की नींद में अचेत कोई कुछ सपना देखता, कोई कुछ। दूर गांव के हरे-भरे बगीचे में अधबने फूस के घर में ठंड से कांपती अस्सी बरस की बुढ़िया। इस बार छान नहीं बंधी, बरखा में भीत गिर गयी। उसी में बैठी बुढ़िया डाकिये की राह ताकती है--आतुर प्रतीक्षा करती करती उसकी धंसी आंखें।

कोई सपना देखता है--एक मुरझाया सा ताजा खिला चेहरा, आंसुओं में भीगा, तार तार साड़ी के आंचल में दिन-पर-दिन और भी मुरझाता जा रहा है। आंचल माथे पर किये सांझ ढले तुलसीचौरे के आगे सिर नवाकर संध्या-दीप रखकर गुनगुनाते स्वर में वह पता नहीं क्या कुछ मनौती करती है। वह अधनींद में बड़बड़ा उठती है--"हां मैं हूं, मैं हूं.... मां, आयी....।"

कोई सपना देखता है थुलथुल पेट, नाक बहता छोकरा... पेट में प्लीहा, देह में ज्वर, पांव फूले फूले हुए। वह लेने को हाथ बढ़ाता है। पत्थर की तरह सख्त ईंट की दीवार से दाहिनी कुहनी जोर से टकरा जाती है। दर्द के मारे नींद में भी चीख उठता है। ऊपर चमगादड़ चीं चीं कर मानो उसे चिढ़ा रहे हैं। घर के पास मुखर्जी साहब के मकान में दुष्ट सुआ भोर से ही सुराग पाकर लोहे के पिंजरे में, नौकर रामा को आवाज दे रहा है--'ओ रामा, ओ रामा! क्र...र....क्र.....ट्....!'

उस दिन सांझ से ही मेघ घिर आये थे। समय पर अपने अपने काम से लौटकर सब कोई कमरे में सुख-दुख बतिया रहे थे। धोकड़िया बागान के मित्र के मकान में काम करने वाला मागुणिया घर गया था। सबके घर की बात, भले-बुरे की खबर, निर्माल्य[1] के कण, ग्रामदेवी का प्रसाद और पता नहीं क्या लेकर सब मिलकर मागुणिया से गांव के हालचाल पूछ रहे हैं। बरामदे में जलते चूल्हे पर बड़ी बाल्टी में सोड़ा और साबुन के पानी में कुछ मैले कपड़े उबल रहे हैं। सुबह धोने के लिए मैले कपड़ों की चीकट-भरी गंध घर में भर रही है, बरसाती हवा के साथ उस अधखुले किवाड़ को धकेलती हुई।

इस बार खेती का क्या हाल है? इस दफा मेले के शुरू में सलटन कैसा हुआ, रामलीला हुई या नहीं? अणिजेना के बाप की सुधी किरिया में कितने बामण पधारे, दही-चिवड़ा खाने? गोवरी नदी दुबली होकर भी उफान में आकर घर-बार कैसे बहा लेती है.... आदि बातों का उत्तर देने के बाद मागुणिया ने पूछा, "कुंजिया भैया कहां गये? उसकी भारजा[2] सूख सूख कर कांटा हो गयी है। मेरे हाथ खबर भेजी है गोरी ने कि अब की मंगसिर में कुछ रुपया-धेला लेकर गांव आयें, लक्ष्मी-पूजा के अवसर पर।"

---

1. देवता को लगाया गया चावल का भोग।
2. पत्नी।

मुस्कुराकर अगाधु ने कहा, "दिन भर तो कुंजिया भैया हमारे पास रहता है, रात होने पर उसका पता किस को मिलेगा? कल देखा, हफ्ते भर के रुपये लेकर रेशमी चूड़ियां खरीदीं, गमछे में बांध छुपाकर सांझ को कहीं जा रहा था।"

अपर्तिया ने आंख झपककर संकेत किया, बोला, "वो सब क्या अगाधु भैया नहीं जानते? वो तो झामापुकुर गली की किसी खानगी के चक्कर में पड़ा है। रोज उस रांड के पास गये बिना आजकल उसका खाना ही हजम नहीं होता।"

छप्परफाड़ हंसी से भर गया सारा घर।

ठीक उसी समय। झामापुकुर से जो गंदी सी गली जाकर कार्नवालिस स्ट्रीट वाले ट्राम के पास ठनठनी काली की तरह निकलती है, उसी में किसी टीन के टूटे घर में कुंजिया अपनी छाती पर रधिया को झुकाये कान में कह रहा है–"ठाकुर जी की दुहाई, तुम्हें देख हमारी गौरी की याद आ जाती है। तोहार चेहरा ठीक उसी की तरह। वैसा ही डील-डौल, भरा भरा। तुहार ओठ उसी की तरह झुका है। तू हंसत हो, लगता जैसे गौरी हंस रही है। तभी तुम को देख हम गौरी को भूल गये। तू ही तो गौरी नहीं हमार? सारा धंधा छोड़ यहां आये रहे। मौरा का नकल हो।" वह खें-खेंकर जोर से हंस पड़ी। लालटेन के धुंधले उजाले में रधिया की छाती उठ-गिर रही है। टालकर बात बदलने के लिए बोली, "गौरी को इतना चाहते हो? मगर तू हमरे यहां ई दफा हफ्तावारी सारी खरच कर दी, उसे क्या भेजोगे?"

खाट के नीचे पड़ी खाली बोतल की ओर देखा। कुंजिया चुप रहा। अचानक उसका चेहरा स्याह पड़ गया। उदास स्वर में बोला, "सो तो है। सब देई दिया तोहे। घर का भेजेंगे?" आवाज में लगा, जैसे वह थककर चूर हो गया है।

रधिया ने गुमान में कहा, "मोहे रुपया देकर अफसोस करत हो? नहीं चाहिए तोहार रुपली। ले लो। हम तोहार का....?

कुंजिया ने घबराकर कहा, "गुस्सा होइ गयी इस पर। हम तोहार से क्या रुपया मांगत है, रे रधिया?"

मुंह बिगाड़कर रधिया ने कहा, "मांगते तो क्या होता? तेरा मन यदि नहीं मानता, मैं कोई देने के लिए जबरदस्ती थोड़े ही करती हूं।"

उसने बात टालनी चाही, "छिः, तू हम पर गुस्सा करती हो, राधी। तुम औरतें ऐसी ही हो। गौरी भी गुस्सा हो तो इसे ही मुंह फिराय के बोले। तू गुस्से में बोले तो गौरी की तरह तोहर अंखियां नाचत रहीं। एक दफे मेले से सिलवर का कंगन दो ठू लाने को कही। हम चांडाल वहां जुआ का दाव लगाये और भूल गये। खाली ही आ गये घर। उस दिन उसका रूठना देखी। दो दिन तक बोली ही बंद। सौगंध-सपथ सब बेकार, कुछ नहीं सुना। तेरी तरह मुंह फिरा बैठी रही। बस भींत से बोलती, हम सूं कछू नहीं। तेरा गुस्सा सच्ची वैसे ही लगता है।"

खीझकर रधिया बोली, ''सदा तो गौरी-गौरी, बस... दुनिया में और कोई बात ही नहीं! उस निगोड़ी की बात मेरे आगे काहे बोल रिहे हो? चिंनगी सी लगती है हमारी देह में। जा अपनी गौरी... चिट्टी के पास... कित्ती दफे कह दिया, हमां कोऊ गोरी-काली नांय ... मैं रधिया... राधा हूं, राधी।''

कुछ रुककर बोली, ''ठीक है, तू जा अब। अबी वो दारुवाला पठान आयेगा, मेरा झोंटा खींच लेगा। तुझे मेरे घर में देख उसने मो पर हाथ उठाया था।''

राधी मुंह मोड़कर सो गयी।

राधी से गाली-गलौच सुनकर कुंजिया अपराधी की तरह निकल आया। बाहर ठनठनिया काली मंदिर में संध्या-आरती हो रही थी। कुंजिया को याद आया--इस घड़ी अपने गांव में चबूतरे पर आरती हो रही होगी। बेचारी गले में आंचल डाले तुलसीचौरा के पास संध्यादीप जलाकर प्रणाम करती होगी।

आंखें गीली हो आयीं उसकी। पिछले बरस खेत सूख गया। तब बहू और भाभी को घर पर छोड़ कलकत्ता चला आया। आशा थी, साल भर में कुछ पैसे जमाकर, कमाकर फिर गांव लौट जायेगा। पर दो बरस हो गये। कुंजिया गांव नहीं लौट पाया। पिछले बरस पैसों का अभाव रहा। इस बरस छुट्टी नहीं मिली। घर लौटती चिड़िया के राह में अटकने की तरह उसका मन एक तरह से किरच किरच हो गया है। दिन भर लोहे का रोलर खींच-खींचकर रास्ते में बलुआ पत्थर से अपनी सब्बल सरीखी बांहों को पथरीली बनाकर सांझ को थका-हारा लौटता है। गौरी की बात, गांव की वात सोचते सोचते सो जाता है। यही थी उसकी घिसटती-पिटती जिंदगी की दिन-चर्या।

बहुत दिन हुए... आज से कोई चार महीने पहले झामापुर वाली गली के एक टुकड़े की मरम्मत हो रही थी। कुंजिया पसीने में तर, रोलर खींच रहा था। तभी उसने देखा, रास्ते के किनारे टीन के घर में बरामदे में बैठी राधी धूप में बाल सुखा रही है। मुंह में पिक्का लगाये है। कुंजिया ने तनिक रुककर उसकी ओर देखा। उसे लगा, जैसे गौरी का सुंदर चेहरा उताकर रधिया के कंधे पर बिठा दिया गया है। वह सोचने लगा--'गौरी क्या सचमुच यहां लौट आयी है?' उसे अनमना समझकर और यह कि वह पिछड़ न जाये, इसलिए संगियों ने पीछे से धकेलकर कहा--''हो ले सा...!''

कुंजिया को होश आ गया। रोलर फिर खिंचने लगा, रास्ते पर कच्ची कंक्रीट पीसता हुआ लोहे का वह भारी रोलर चलने लगा आगे, और आगे।

उसी दिन कुंजिया घर लौटा, नहा-धोकर साफ-सुथरे कपड़े पहने और कोई दो बरस बाद वहां जाकर रधिया से भेंट-मुलाकात कर आया। रधिया से पता चला कि उसका घर जलेश्वर में है। भुलावा देकर कोई ले आया ससुराल से, और फिर कलकत्ता में छोड़ गया है।

तब से कुंजिया को रधिया में अपनी बिछुड़ी हुई गौरी मिल गयी है। दिन भर की

हाड़तोड़ मेहनत के बाद जब गौरी की याद आती, तो मन में हूक उठती। दोनों आंखें छलछला आतीं और वह रधिया के पास दौड़ा चला आता। दरवाजे पर दस्तक देकर कहता-- "रधिया, मैं आया हूं।"

कुंजिया के रोलर जैसा भारी जीवन, सदा कीचड़-गारा, कंकड़-पत्थर रौंदती घिसट-घिसटकर चलती जिंदगी। उसमें अब दो बरस बाद मिली हैं दम लेने की जगह। जरा सी छाया। हो सकता है यह सिर्फ छाया है, निहायत झूठ। मगर इससे क्या फर्क पड़ता है? थके-हारे बटोही के टूटे मन की तरह हर बात को नाप-तोलकर विचार करने का समय कहां?

बरसात की रात। कुंजिया ने उस दिन रधिया के दरवाजे पर जाकर देखा, अंदर से किवाड़ बंद हैं। उसने सोचा शायद शरीफ मियां ड्राइवर हो जो रधिया के यहां आता रहता है। वह वहां से जाने को मुड़ गया था, पर उसने खिड़की से अंदर आने का इशारा किया और किवाड़ खोले। उसका हाथ पकड़ अंदर ले गयी रधिया खुद।

लालटेन के टिमटिमाते धुंधले उजाले में कुंजिया ने देखा, रधिया रो रही है। देर तक सौगंध-शपथ दी तब जाकर रधिया ने बताया कि दारू पीने के लिए उस ड्राइवर ने पैसे मांगे। रधिया ने मना कर दिया तो उसने उठाकर दारू की बोतल दे मारी। कुंजिया ने देखा, उस टूटी बोतल से रधिया का दाहिना हाथ जख्मी हो गया है। कुंजिया ने आंखें फाड़-फाड़कर घर में चारों ओर देखा। देखा, दीवार पर एक ओर कोई फटी कमीज टंगी है और उस कमीज में बहुत पुराना खून का दाग लगा है। कहीं कहीं लापरवाही में बीड़ी पीने के कारण कहीं कहीं सुराख हो गये हैं। कुंजिया ने सोचा, दौड़कर कुरते को चीर-चीरकर फाड़ डाले। यह समझने में उसे देर न लगी कि कमीज उसी ड्राइवर की है। उसने गुस्से में दांत पीस लिये--"क्यों उस नशेबाज को यहां आने देती है? तेरे को क्या इज्जत की परवाह नहीं है?"

कुंजिया से सहानुभूति पा रधिया फफक-फफककर रो पड़ी। उसे बच्ची की तरह गलती बताकर उस पर नाराज होने वाला, दुख में हमदर्दी जताने वाला दुनिया में इतने दिन बाद कोई तो मिला। छाती का संचित दुख आंखों की राह उतर आया। उसकी छाती में रोते रोते मुंह दुबका दिया। कुंजिया से बोली, "वह... वह मुझसे नशे में पैसे मांगता है, न दूं तो यों पीटता है... पीट-पीटकर लुगदी बना देता है। गहने वगैरह जो दो-चार थे, सब दारू में उड़ा दिया उसने। कभी कभी हाथ में पैसे न हों तो मना कर देती हूं। मगर वह जंतु छोड़ेगा? बक्सा, पेटी सब खोलेगा, ताला तोड़ देगा, जबरन ले जायेगा। मना करूं तो मार-पीट ...। अब तक पचासों बार कुटाई कर चुका है मेरी।"

"...पचास बारि, आज तक तो नहीं कहा मुझे। मैं उस बदमाश का खून पी जाता।" कुंजिया ने गुस्से में कहा।

रधिया ने कुछ नहीं कहा, सिर झुकाये रही।

ऐसे दुष्ट को घर में आने ही क्यों देती है? कुंजिया की समझ में नहीं आया। वह

जानता है, वेश्या पैसे के लिए काम करती है। मगर रधिया की और ही बात है। वह ताज्जुब में पड़ गया। आंख टिमटिमाकर देखता रहा। इस के बाद अन्यमनस्क होकर खाट के नीचे पड़े बीड़ी के टुकड़े को मसलने लगा अपने पांव के अंगूठे से।

खुली खिड़की के रास्ते से गैस की रोशनी आकर रधिया के गंदे बिस्तर पर उजाला कर रही थी।

बाहर टुप टुप बरखा। टीन के घर पर छोटी छोटी बरसात की बूंदें एक अजीब सी मादक आवाज पैदा कर रही थीं, मानों अभी नींद आ जायेगी। कुंजिया देर तक उधर कान लगाये रहा। "ऐसी बरखा में गौरी क्या करती थी, जानती है?... रसोई का कामधाम कर मेरे पास आ बैठती थी। कहती, तू सो जा। मैं तेरे सिरहाने रात भर जागती रहूंगी। और तब मैं कहता--ना, ना, तू सो जा, मैं तेरे सिरहाने जाग लूंगा। आखिर में हम दोनों में से कोई नहीं सोता। बस, उस पनीले अंधेरे को देखते देखते रात भर बैठे रहते, जागते रहते।"

रधिया गंभीर हो गयी। फिर भी बाहर से वह मुस्कुराने का बहाना कर रही थी। "मैं तो गौरी नहीं।"

कुंजिया ने कहा--"नहीं हो। मगर तेरी आंख, तेरी यह हंसी, नजर सब तो उसी की तरह है। इत्ता सा भी फरक नहीं री! तुझे देख मैं गौरी को भूल जाता हूं।"

रधिया ने गुमान में कहा, "हो, तभी तुम शायद मेरे पास आते हो। क्यों? दिखने में मेरा चेहरा, रूप-रंग गौरी सा न होता, तू कभी आता? क्यों?"

कुंजिया बात की इतनी गहराई में नहीं जा पाता, क्या जबाब देता? इस बात पर कुछ देर सोचता रहा। आखिर बोला, "ना।"

दुख और ईर्ष्या में रधिया का चेहरा फीका पड़ गया। वह कुछ क्षण चुप रहकर बोली, "क्यों, तो फिर मेरा कोई काम नहीं? मेरा अलग कोई हिसाब नहीं? मैं नारी नहीं, मेरा कोई अलग चीज नहीं। मैं कुछ नहीं?"

कुंजिया ने इतना समझा कि रधिया कोई बात कह रही है, हालांकि वह उसकी बात पूरी तरह समझ नहीं पा रहा। बात टालने के लिए कहा, "ना, ना, मैं वैसा कहां बोला?"

रधिया गंभीर होकर बोली, "मैंने तुझे जबसे देखा तब से तू गौरी के सिवा कभी कुछ बोलता ही नहीं। हजार बार कहा तूने कि मैं गौरी जैसी हूं, तभी तुम आते हो। क्या यह सच नहीं?"

कुंजिया सिर खुजलाते खुजलाते बुद्धू की तरह बोला, "हां, ई बात तो है। हम तोहे गौरी की तरह अपना आदमी समझे रहे।"

रधिया ने कहा--"देखो, मैं कहे देती हूं तोहे, मैं गौरी की छाया नहीं। मैं राधी। किसी की नकल नहीं। नकल नहीं बनना मुझे।" रधिया नथुने फुला रही थी। रधिया भी एक जीवित नारी है। उसकी अपनी स्वतंत्र पहचान है, उसका आहत नारीत्व आज इस बात को जोर देकर घोषणा करना चाहता है। जिस सस्ती देह को वह अन्य चीजों की तरह बाजार

में बेचती है, उसमें से मानो आज कोई चीख रहा है--रधिया, रधिया किसी की नकल नहीं। गौरी या किसी और का मुखौटा लगाकर उसकी दया से कुंजिया का नेह-ममता का दान नहीं ठगना चाहती। अपने में वह है। उसमें किसी को सुख न मिला, तो ऐसा सुख पाने का उसे हक क्या है? क्या गरज है ऐसे लोगों से मांगकर शरण लेने की? क्या जरूरत है दूसरे से उधारी के पदारथ के भुलावे में रख दिखावा करने की? छिः छिः...।'

कुंजिया बिलकुल नहीं समझता रधिया की बात।

कुछ दिन बाद--

कुंजिया ने जाकर देखा, रधिया के दरवाजे पर एक रिक्शा खड़ा है। रधिया के घर में चीजें बंधी रखी हैं, ट्रंक, बक्सा आदि बांधा जा चुका है।

कुंजिया अवाक रह गया। पूछा, ''माजरा क्या है?''

रधिया ने बिस्तर लपेटते हुए कहा, ''मैं शाम बाजार जा रही हूं। शरीफ ने एक कमरा वहां लिया है। हम वहां अब एक साथ रहेंगे।''

कुंजिया ने कहा, ''क्या तू उस नशेड़ी के साथ जायेगी? वो तो तेरी पिटाई-छिताई करता है। तेरे गहने ले गया। बेच डाले... दारू पी गया उनकी और तू उस बदमाश के साथ...?''

''हां, उसी बदमाश के साथ रहूंगी। वो नशेबाज है, मारता भी है, मानती हूं। मगर... क्यों वह मुझे पीटने का साहस करता है? मुझे अपना नहीं मानता तो मुझ पर हाथ उठाने की हिम्मत करता? इतना जोर दिखाता? पराये को कोई दो बात भी कड़ी बोलेगा? मैं खानगी हूं, रंडी हूं... मगर उसके लिए जिंदा आदमी हूं। खानगी रधिया जिंदा है--यह बात वह जानता है, तभी वह मेरी गलती देखकर मुझ पर हाथ उठाता है।''

और फिर आईने में अपना चेहरा देखने लगी। साड़ी का पिन ठीक करते करते बोली, ''तेरे लिए तो मैं बस एक छाया हूं। किसी और का भूत... उसकी नकल हूं... मैं खुद कुछ नहीं। तुम मुझे इतना पराया समझते हो?... रधिया को प्रेम नहीं करते, उसमें दिखती गौरी को प्रेम करते हो। हो सकता है तेरी गौरी सती-सावित्री हो, और हो सकता है रधिया कोठे की छोकरी। मगर मैं भी अलग हूं, अपना कुछ है मेरा--यह कभी नहीं नहीं समझा तूने।''

अब कुंजिया क्या कहे इस बात पर?

अचानक रधिया बोली, ''चलो, बाहर आओ, ताला लगाना है। घर वालों को चाबी पकड़ानी है!''

रधिया सामान रख रिक्शे में बैठ गयी। कुंजिया की ओर देख आंचल से आंसू पोंछ लिये।

अगला दिन... दुपहर में काम चल रहा है। खूब दनादन। कुंजिया रोलर खींचता हुआ आवाज मिलाकर बोल रहा है--''हो...ले...सा...!''

इसी बीच गांव से सदानंद बेहरा आ गया। उसने काम में खबर दी--"कलकत्ता में तू किसी औरत को लेकर बस गया है, यह बात जानकर गौरी दूसरे से शादी कर चली गयी। पिछली मंगसिर की अमावस के दिन केवट के हरिया महारणा के भतीजे चेमा महारणा के साथ।"

कुंजिया एक-दो क्षण रुक गया। कुछ सोचा। उसे अन्यमनस्क होता देख संगियों ने जान लिया कि वह पिछड़ रहा है। संगी भइया ने कसकर पीछे से धकिया दिया।

फिर कुंजिया को होश आया। लोहे के रोलर से गली थराथरा रही थी। वह चिल्लाया--'हो...ले...सा...।'

हाथ

वह हाथ देखा करता है। शहर की दीवारों से सिनेमा के बड़े बड़े पोस्टर खींचकर ले आता है। सड़क के किनारे एक ओर बिछाकर बैठ जाता है। उसके बैठने की जगह एक नहीं है। जब जहां से भीड़ गुजरती, उसी ओर एक किनारे पर अपना आसन बिछाकर बैठ जाता है। आसन और क्या है, मैले-फटे कपड़े या बोरी का बना हुआ। बस्ते में किसी जमाने की पुरानी चीकट-भरी, मुड़ी-तुड़ी बदरंग सामुद्रिकी पर एक-दो किताबें हैं। किताबों के पन्ने और उनके कोने मुड़ गये हैं। पुराने हो गये हैं। अक्षर घिस-पिट गये हैं, उन्हें पढ़ना भी मुश्किल है। कवर का कागज एकदम फट गया है। पहले पन्ने पर छपी उस तसवीर में से आधी पता नहीं कब से गायब है। तसवीर का मतलब निकाल पाना अब मुश्किल हो गया है।

किताब के अलावा बस्ते में है कोहिनूर प्रेस से छपी हनुमान प्रश्नावली की किताब, खड़ीरत्न का लिखा पंचांग, एक स्लेट, जगन्नाथ का छापा, एक किसी दिवंगत डिप्टी कलक्टर साहब का दिया सर्टिफिकेट, जो कांच में बंधे किसी पुरानी फोटो जैसा दिख रहा है।

बस्ता खोलकर सबसे पहले सर्टिफिकेट निकालता। अपने मैले गमछे से पोंछकर उसे ऐसी जगह रखता जहां सबकी निगाह पड़ती। फिर तीन रंग वाली जगन्नाथ की तसवीर निकालता। फोटो में सिंदूर-चंदन लगाता। तीनों ठाकुर चंदन में ढंक चुके हैं। वह फोटो माथे से छुआता और बस्ते के आगे रख देता। और तब तनिक गहरी आंख से तिरछा करके आते-जाते लोगों को देखता। भीड़ पर गौर करता।

उसकी लंबी हड़ीली देह पर पड़ी रहती पुरी की बनी राम-नामी चादर। उसका छोर हवा में इधर-उधर उड़ता तो छाती के बड़े बड़े और घने बाल साफ दिख जाते।

उनके नीचे छाती की ऊंची-नीची मेंड़ स्पष्ट हो उठती। सिर के लंबे बाल कानों के पीछे पीठ पर झूलते। कान पर सदा खोंसा होता एक आधा मुरझाया गेंदे का फूल।

दिन में ज्यादातर वह अदालत के पास या कलक्टर की कचहरी के सामने वाले बरगद तले बैठा मिलता है। परीक्षा के दिनों में कभी कभी स्कूल के अहाते के पास भी आसन जमाता है। कोई मुकदमा जीतेगा या नहीं, किस को कितनी मियाद होगी, किस को इस बरस क्लास पास करने में सफलता मिलेगी या नहीं--लोग इसी तरह की बातें पूछने आते

हैं। दक्षिणा पा जाने के बाद जिसे जैसा कहना होता है, कह देता है। हाथ देखता या स्लेट पर कुंडली बनाता और संक्षेप में बता देता। बात ठीक जगह पर लगती तो ग्राहक चवन्नी-अठन्नी रख देता। वह पैसा माथे से लगाता और एक टीन के बंद बक्से में डाल देता। कभी कोई धनी-मानी जुट जाता--मुकदमा जीतने के लिए श्मशान में संक्रांति के दिन महाकाली की पूजा कर तावीज बांधने की खातिर मोटी रकम ले अंटी में खोंसता।

उस दिन चिलचिलाती दुपहर थी। गरमी के दिन थे। काठजोड़ी नदी की तपती बालू पर तैरती तैरती जेठ की लू आ रही है। कचहरी के पास नदी-किनारे ऊंचे ऊंचे दरख्तों में कुछ चमगादड़ धूप में छटपटाकर इधर-उधर फड़फड़ा रहे और चीं ची कर रहे थे। कोई आवारा कुत्ता भूखा, धूप में छटपटाता एक छोटे पेड़ की छाया में चारों पैर पसारे हांफ रहा है।

एक पतला सांवला सा हाथ ज्योतिषी की ओर बढ़ा। हाथ पर कतरा भर भी मांस नहीं। सिर्फ पैनी नुकीली हड्डियां दिख रही हैं। लंबे रोंएं और उभरी हुई नीली नीली नसें। रक्तहीन अंगुली के छोर पर गंदे नाखून साफ दिख रहे हैं।

वह हथेली को गौर से देखता रहा। उसके बाद उसने अपनी दाढ़ी-मूंछों के जंगल से हाथ दिखा रहे आदमी की ओर कनखी से देखा। उसका सूखा-स्याह चेहरा किसी अज्ञात आशंका में और भी अधिक स्याह पड़ गया।

बात क्या है?

खांसी उठी, अतः वह आदमी कुछ क्षण बोल नहीं पाया। देर तक वह आदमी खांसता रहा। उस दौरान मुंह से एक लोंदा खून निकल पड़ा। लगा जैसे जर्जर छाती के सूखे हाड़ टूक टूक हो गये हैं। बेदम होने के कारण वह सूखे पत्ते की तरह थरथरा रहा है। ज्योतिषी ने अपने स्वर को जरा कड़ा करते हुए कहा--"तुम न बताओ तो क्या हुआ, तुम्हारा हाथ कह रहा है कि तुम्हें राजयक्ष्मा हो गया है। तुम्हारी आयु-रेखा बहुत निर्बल हो गयी है।"

मानो किसी ने उस दुबले आदमी के चेहरे पर ढेर सारी कालिख पोत दी। अदृश्य भविष्य के बारे में अशुभ संकेत से वह समूचा सिहर गया। घबराहट में उसकी छाती और जोरों से धड़कने लगी। खांसी का एक और दौर जोरों से आ गया। अपनी अंगुली से उस ज्योतिषी ने उस हथेली को लेकर आयु-रेखा को मलना शुरू किया। एक खास रेखा पर जोर पड़ रहा था। गहराई से देखने लगा इसके बाद वह।

उसकी भाव-भंगिमा से लग रहा था मानो मैले हाथ की वह रेखा किसी पुते हुए नाले की धार है। वह खाली मैदान जैसी देह में कहीं लीन हो गयी है। सपाट हथेली पर आकर समतल हो गयी है। वह मानो उस हथेली को मसलकर साफ कर रहा है। उस मिटी रेखा को टटोल निकालने की कोशिश कर रहा है।

ज्योतिषी की आंखों की पकड़ाई में नहीं आती वह रेखा। यह देख वह रोगी और भी निस्तेज हो गया। सूखी पलकें और भी गहरी धंसी दिख रही हैं। उसका छोटा गंदा

चेहरा और सिकुड़ गया। किसी छोटे बच्चे के चेहरे की तरह दिख रहा है।

"तो मैं नहीं जी सकूंगा, पंडितजी?"

ज्योतिषी ने गौर से देखा। देर तक अपना भावावेग संभाले रहा। फिर कुछ कहने को ज्योतिषी ने सिर उठाया। होठों पर एक उदासीन क्रूर हंसी--आंखों पर अदृष्ट के निष्ठुर विद्रूप की तरह एक तीखा इशारा।

रोगी के चेहरे की तरफ देखने का साहस नहीं हुआ। उन्होंने सिर नीचा कर लिया। वहीं देखा, नीचे है जगन्नाथ की तीन रंग की फोटो। चंदन और सिंदूर के ढेर में छुपी उस दुर्बोध देवता की अस्पष्ट मूर्ति उसके अनदेखे भविष्य की तरह और भी स्याह दिखी। वह अब ठाकुरजी की ओर भी नहीं देख सका। उधर से आंखें फिराकर बस्ते में रखी किताब की ओर देखने लगा। काली-कलूटी किताबों के पुराने पन्ने उसे और भी डरा रहे थे। बाबा आदम के जमाने की मैली और चीकट पुस्तक में से वे मिटते जा रहे अक्षर उसकी धुंधलाती जा रही लौ के अस्तित्व की याद दिला रहे थे। हड़बड़ाकर फिर जल्दी से आंखें घुमा लीं। काली स्लेट पर खिंची उलटी-सीधी रेखाएं--वह कुछ नहीं समझ पाया। फिर भी वह बार बार उसे गौर से देखता रहा। खांसकर ज्योतिषी ने गला साफ किया।

अब रोगी समझ गया कि पंडितजी क्या बोलेंगे। कुछ सुनने में उसे डर लगा। फिर सिर उठाकर उसने ज्योतिषी की ओर देखा। चौड़े माथे पर उभरी दो नसें फूली फूली दिख रही हैं। अचानक सिहर उठा। कान में खोंसा हुआ गेंदे का फूल भी हिल गया। वे बोलने लगे। गालों की हड्डी तले दिखते दोनों गड्ढे भरकर फिर खाली हो गये। चेहरे की मांसपेशियां फूल उठीं। रोगी ने उसकी आवाज सुनी--"तुम्हारा हाथ कह रहा है...।"

"क्या कह रहा है मेरा हाथ? कोई भयंकर इतिहास लिखा है यहां?" वह सब सुनने की बिलकुल इच्छा नहीं। फिर भी सुनना पड़ा।

"तुम्हें मारकेश की दशा है। शुक्र महादशा का भोग तुम्हें नीचे-ही-नीचे लिये जा रहा है। यह जीवनरेखा के लिए ठीक नहीं।" उसने रोगी से कहा।

रोगी काला-स्याह पड़ गया। मृत्युदंड सुनने से पहले कठघरे में जैसे आसामी का चेहरा सूख जाता है, रोगी ठीक वैसे ही सूखकर बिलकुल सफेद पड़ गया।

उसकी खांसी का वेग बुरी तरह बढ़ गया। खांसते खांसते वह दुहरा हो गया और जमीन पर हाथ-पांव पटकने लगा।

कुछ देर बाद वह कुछ संभला और थिर होकर बैठा। पूछा, "मैं और कितने दिन जी सकूंगा? इसी मास में बेटी पराई करने के लिए लगन निकलवाया है। बस वही एक है ...। बड़ी छोटी सी प्यारी सी है। पंडितजी, उसका ठौर-ठिकाना करने के बाद कोई चिंता नहीं। आप के निहोरे करता हूं, जरा ठीक से हाथ देखकर आप ही बताओ, मैं और चार महीने जी सकूंगा?"

उसकी आवाज कांप रही थी। उसकी लाचारी देख ज्योतिषी जी के कठोर चेहरे पर

कुछ ऊष्मा लौट आयी। वे सकपका उठे।

उनकी काली दाढ़ी पर जलती हुई आंखों में कुछ चमक दिखायी पड़ी। क्या कहूं, वे सोचने लगे। देर तक किताब उलट-पुलटने के बाद थूक निगल मुस्कुराते हुए बोले--"तुम बहुत दिन जीओगे। अगले दो बरस तक तो तुम्हारा कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता। मां चंडी की दया से तुम्हारा रोग-दोष यों हवा में उड़ जायेगा। तुम यह अष्टधातु का बना सिद्ध तावीज पहन लो। लो, विषुव संक्रांति के दिन बहुत मंत्र-तंत्र से सिद्धकर अपने दायें हाथ का रक्त चढ़ाकर श्मशान चंडी से इसको लाया हूं। यह तावीज जादू की तरह बड़े बड़े रोगों को अच्छा कर देगा।"

उन्होंने रोगी के दाहिने हाथ में मंत्र पढ़कर तावीज को एक मोटे धागे से बांध दिया। रोगी के फीके चेहरे पर फिर ललाई उभर आयी। उसके मैले गालों पर मांस की झलक दिखने लगी। खुशी में दोनों आंखें नाच उठीं। खुश हो ज्योतिषी के पांवों में गिर पड़ा--"सचमुच चंगा हो जाऊंगा, पंडितजी महाराज? सब भगवान की इच्छा! पिछले बरस बड़ी मेहनत करके दो एकड़ में परती जमीन को तोड़ा है और चार बरस भगवान की दया बनी रही तो उसमें सोना उगाऊंगा।"

इसके बाद देवी की पूजा-पाठ के निमित्त एक रुपया ज्योतिषी के पांवों के पास रखा और चला गया। उसकी चाल से लगा, जैसे उसकी यह असाध्य बीमारी कुछ समय के लिए सचमुच छूट गयी है। भाव-भंगिमा, बातचीत से लगा, कि उसमें इतनी जिजीविषा है। इसके सारे संगी-साथी आश्चर्य से भर गये।

उसकी खुशी में खुश होकर ज्योतिषीजी ने उसको आशीर्वाद दिया--"मां श्मशान चंडी तुझ पर कृपा बनाये रखें। तेरा मंगल करें।"

रोगी के जाने के बाद मेरा मन उस हाथ देखनेवाले ज्योतिषी के पेशेवर ढोंग के विरुद्ध घृणा व गुस्से से भर गया। मन-ही-मन सोचा, 'उसे जरूर पुलिस में देना चाहिए।' वहां से चला गया। तब से उस ज्योतिषी की गतिविधि पर खास नजर रखने लगा।

उस दिन की बात है। धुंधले आकाश पर रोशनी धीरे-धीरे पटती जा रही थी। मैंने जाते जाते देखा, कालेज के पास एक पेड़ के नीचे बैठा वही जयोतिषी एक युवक का हाथ देख रहा है।

शायद कोई कालेज का छात्र है। देह की तुलना में उमर अधिक लग रही थी। काफी दुबला व बीमार लग रहा था। छात्र की आंखें भावुकता भरी थीं, मानो इसी में अपने जीवन की व्यर्थता का इतिहास व्यक्त कर रहा है।

छात्र ने पूछा, "बताओ, वह मुझे चाहती है या नहीं?"

ज्योतिषी ने मुस्कुराकर उसकी व्याकुलता देखी। उसका सारा मनोविज्ञान उनकी तेज और सतर्क निगाहों में अगले ही क्षण झलक गया।

कुछ क्षण हाथ को उलट-पुलट करने के बाद बोला--"तुम्हारे हाथ में चार शंख हैं।

पांच शंख हों तो राज्य-प्राप्ति होती है--धन-प्राप्ति और पुत्र-प्राप्ति निश्चित है।"

छात्र ने झुंझलाकर पूछा, "मुझे राज्य, धन या पुत्र नहीं चाहिए। तुम बस यह बताओ--वह मिलेगी या नहीं? मैं उसे चाहता हूं, हालांकि मन-ही-मन। कभी खुलकर नहीं बताया कि कितना चाहता हूं--कहूंगा भी नहीं।"

चालाक ज्योतिषी ने उसकी बात पकड़ ली। अचानक ज्योतिषी जी खूब गंभीर हो उठे। ऐसे प्रेम की परिणति क्या होती है, उसे जानने में एक मिनट भी न लगा। जिज्ञासु की उत्कंठा बढ़ाने के लिए धीरे धीरे रुक-रुककर कह उठे--"तुम्हारा हाथ कह रहा है...."

"क्या कहता है?" उद्विग्न हो छात्र ने पूछा। उसके व्याकुल स्वर से लग रहा था मानो ज्योतिषी के दो शब्दों में ही उसका सारा भविष्य झूल रहा है।

"तुम्हारे हाथ में वैसे विवाह में विलंब लग रहा है," ज्योतिषी ने कह दिया।

असहिष्णु हो छात्र ने पूछा--"मैं विवाह की केयर नहीं करता। मैं विवाह करना चाहता भी नहीं। मैं सिर्फ प्रेम करना चाहता हूं। विवाह उसकी तुलना में कितनी छोटी चीज है बताओ, वह मुझसे प्रेम करेगी या नहीं? बस इतना ही है मेरा मतलब।"

ज्योतिषी चुप। देर तक तरह तरह की रेखाएं खींचते रहे। अंगुलियों की पोर पर हिसाब लगाने लगे और फिर बोले--"हां, वह तुम्हें चाहती है। सांवली सी है? साथ पढ़ती है तुम्हारे। क्यों...?"

"ठीक, हां...हां।" छात्र ने बात बीच में रोकी। उसका पीला उदास चेहरा चमक उठा एकदम खुशी में।

इसके बाद कुछ संदेह में पड़कर कहा, "लेकिन वह तो मुझ से एक क्लास आगे है।"

ज्योतिषी ने कहा, "एक ही बात है। एक क्लास आगे-पीछे का कोई मायने नहीं। वह तुम्हें खूब चाहती है। मन-ही-मन तुम्हारी बात सोचा करती है। तुम्हारे सिवा दुनिया में दूसरे को देख ही नहीं पायेगी।" फिर छात्र के ललाट पर हाथ रखकर कहा, "तुम्हारे ललाट पर जो विद्या-बुद्धि की रेखा झलक रही है, उसकी करामात है... और फिर यह धन की तिरछी रेखा..."

फिर टोककर छात्र ने कहा, "विद्या-फिद्या, धन-फन की बात छोड़ो। आइ डोंट केयर। मैं चाहता हूं, वह प्यारे करे, प्यार! सिर्फ मुझे।"

ज्योतिषी ने उसकी बात पर सिर हिलाया--"जरूर प्रेम करेगी, जरूर। अगर न करे तो मैं हाथ देखना छोड़ दूंगा। शर्त लगा लो चाहे, बाबू!"

छात्र ने अठन्नी निकाल जयोतिषी के हाथ पर रख दी। चलने लगा तो ज्योतिषी ने कहा--"अमावस की रात तुम मेरे साथ कालियाबोदा के श्मशान चलना, मैं वह मंत्र से सिद्ध की गयी धूल दूंगा। उस धूल को लेकर उसके पीछे पीछे जाना। चलते समय, जब उसका बायां पांव उठता हो--धरती पर न टिका हो, तभी उस पर वह मंत्र से सिद्ध धूल वशीकरण

मंत्र के साथ पढ़कर तीन बार फेंकना। देखना--समूची तुम्हारी बन जायेगी। हां, इसके लिए देवी के वास्ते, तीन नग नारियल, सवा सेर अरवा चावल, पांच छटांक शुद्ध घी, सवा गज का एक गमछा और बारह अंगुल का एक वस्त्र...''

छात्र ने कहा, ''ठीक है, ठीक है, वो बाद में देखेंगे।'' वह चला आया वहां से।

मैं पीछे पीछे कुछ दूर तक आया। उसे आवाज देकर रोका। मैं उसके सारे सवाल सुन रहा था, सब कुछ देख रहा था--इसकी उसे कुछ भी खबर भी न थी। मुझे देख तनिक सकुचा गया वह।

पास जाकर मैंने कहा, ''आप से थोड़ा काम है मुझे। आप को एक मुकदमे में गवाही देनी होगी।''

''गवाही!'' वह आश्चर्य में भर गया।

''हां, गवाही। लोगों को ठगता है यह ढोंगी ज्योतिषी। अतः इस के नाम एक मुकदमा दायर कर रहा हूं। आप उस मुकदमे में गवाह बनें।''

''जनता का क्या नुकसान करता है यह?'' कुछ सहानुभूति-भरे स्वर में छात्र ने पूछा।

मैंने कहा, ''बहुत कुछ। आप क्या समझ नहीं पाते? इसकी झूठी बातों में कितने ही निरीह लोग बहक जाते हैं। कितनों का सर्वनाश कर डाला है। कितने भले लोग इसकी बातों का भरोसा कर अंत में निराश होकर पोटाशियम साइनाइड खा लेते हैं। किवाड़ बंदकर मार्फिया सटक लेते हैं। कालेज-बिल्डिंग के दुमंजिले से छलांग लगा आत्महत्या करते हैं। क्या आपको यह सब नहीं दिखता? यह एक पब्लिक न्यूसेंस है। इस पर विचार करना चाहिए।''

छात्र बेचारा ज्योतिषी के लिए हमदर्दी से भरा था। बोला, ''इसमें उसका क्या कसूर है? लोग उस की बातों पर विश्वास ही क्यों करते हैं? गलती तो उन लोगों की है।''

मैंने कुछ झुंझलाकर कहा, ''आप जैसे पढ़े-लिखे युवक ही जब उसकी बातों के भुलावे में आ जाते हैं, तो साधारण अनपढ़ लोगों को दोष देने से क्या फायदा? आप ही यदि इन अंधविश्वासों को उत्साहित करेंगे....।''

छात्र अपराधी की तरह सिर नीचा किये रहा। फिर छलछलाये स्वर में उस ने कहा, ''लेकिन आप जितना बेवकूफ समझते हैं, मैं उतना बुद्धू नहीं हूं। मैं बी.एससी. का छात्र हूं। फिजिक्स में आनर्स ले रखा है। मैं एकदम भौतिकवादी हूं। कुसंस्कारों से घृणा है। अंधी आध्यात्मिकता या अदृष्टवाद का मेरे लिए कोई अर्थ नहीं। मगर मैं, पता नहीं क्यों, इस ढोंगी ज्योतिषी को हाथ दिखाया करता हूं। हां, आप ने पूछा है तो जवाब भी दूंगा। पर मैं जो कैफियत दूंगा, उसका अर्थ आप जैसे चुस्त-दुरुस्त लोग कभी नहीं समझेंगे। पसंद की बात तो दूर है...। जिसके हृदय में चोट लगी है, जिसका मन घायल है, दिल टूट गया है--वही मेरी बात का अर्थ समझ सकेगा।''

इसके बाद कुछ क्षण चुप रहकर बोला, ''यह ज्योतिषी पक्का जुआरी है, झूठा है--इसकी हर बात मनगढ़ंत गप्प है। मुझसे ज्यादा अच्छी तरह कोई नहीं जानता। आजकल के लड़कों

के रंग-ढंग और उनके मन की हलचल को जो जानता है, वह इस तरह की अनेक उलूल-जुलूल भविष्यवाणियां करता है। इसमें कोई बहादुरी नहीं। ये सब साफ झूठ हैं। कुल मिलाकर धोखा देने का काम है। मगर इस झूठ की भी कभी कभी आदमी के जीवन में जरूरत पड़ती है। आदमी अपने टूटे मन को जोड़ने के लिए कई बार ऐसे झूठ का सहारा खोजता है। एक आकर्षक मीठे झूठ के नशे में वह निष्ठुर यथार्थ को भुला देना चाहता है।''

मेरी आवाज में शिकायत मर चुकी थी। आश्चर्य में भर मैंने पूछा, ''तो आप जानबूझकर यों अपने को ठगा देना चाहते हैं?''

छात्र ने कहा, ''आदमी कुछ देर अपना दुख-दर्द भुलाने के लिए कभी सिनेमा जाता है, रम पीता है, वेश्या के यहां जाता है और पता नहीं, क्या क्या करता है। खूब पैसे खर्च करता है। उसी तरह मैं अपने टूटे मन को जोड़ने के लिए पैसे खर्च करता हूं। खुद को भुलावे में रखता हूं। एक बड़े झूठ का आश्रय लेता हूं। मैं जानता हूं, यथार्थ मुझे कुछ नहीं दे सकता। परिस्थिति के निर्मम दबाव में पड़ हम दोनों एक-दूसरे को कभी नहीं पा सकेंगे, मैं अच्छी तरह जानता हूं। अतः इस मीठे झूठ के क्षणिक नशे में डूब एक तरह का आनंद पा लेता हूं। उसकी आलोचना करने की हिम्मत मेरे अंदर नहीं।''

मैंने कहा, ''ठीक है। आप जिसे प्रेम करते हैं और उसे पाना भी चाहते हैं तो साहस करके उसके पास जाइये और उसे पाने का प्रस्ताव रखिए। आदमी आदमी को चाहे, यह तो सुंदर, स्वाभाविक नियम है। मगर इसकी बजाय किसी ठग-ज्योतिषी से परामर्श करने से क्या आपका उद्देश्य पूरा हो जायेगा? यह सब तुम्हारी रुग्ण मानसिकता पर अत्याचार के सिवाय और क्या है?''

छात्र ने कहा, ''ना, ... ना, मैं उससे प्रेम करता हूं, यह बात उसे वताना नहीं चाहता। बताने का मुझमें नैतिक साहस नहीं, सो बात नहीं। मगर शायद वह ठुकरा दे, इस डर से अपने मन की बात वता नहीं सकता। वरन् इसी विश्वास को लिये, मन में आशा बनाये रहने में एक गौरव है। इस तरह के पाने में जो निरीह आनंद है, हो सकता है वह काल्पनिक हो, मगर यह यथार्थ की रुक्ष व्यर्थता से कहीं अधिक सुख देता है। तभी मैं उस ठग-ज्योतिषी को रोज पैसे देकर झूठ कहलवाता हूं। जिस क्षणिक सुख के लिए आदमी दारू पीता है, नशे में धुत हो जाता है, उसी क्षणिक निरुपाय आनंद के लिए मैं इस ठग की शरण में आता हूं। यही झूठ की सार्थकता है। इससे अधिक उससे मुझे कोई उम्मीद नहीं।''

मैं विस्मय से भरा उस छात्र की बातें सुनता रहा।

उसी दिन से रास्ते के पास उस ज्योतिषी को जब अपने धंधे में लगा देखता हूं, मन में उन लोगों के प्रति गुस्सा नहीं आता। एक तरह की दर्दभरी सहानुभूति से मन भर जाता है। मुझे लगता है, अंधे अदृष्ट का सारा षड्यंत्र इन हजारों काले काले हाथों की अस्पष्ट पांडुलिपि में मानो लिखा है। और उसी वीभत्स षड्यंत्र की नीच गोपनीयता को खोज निकालने का आश्वासन पाने के लिए हजारों असहाय लोग मानो इन ठग-ज्योतिषियों में किसी दुर्दांत अनुसंधानकर्ता को पा गये हैं।

कहानी नहीं

कलकत्ता गोदी के मजदूरों की एक सभा खत्म कर अमिय और अमिताभ दोनों गंगा-किनारे बैठे थे। दूर गंगा पर अनेक स्टीमरों की लाल-नीली छाया तैर रही थी। बीच बीच में सांझ की निस्पंद नीरवता भंग कर जहाजों की सीटी की आवाज तैर जाती।

कुछ क्षण चुपचाप बैठने के बाद अमिय ने कहा, "ना, ऐसे समय नहीं कटेगा। एक काम करो, एक कहानी कहो।"

अमिताभ ने कहा, "खयाल बुरा नहीं। मगर कहानी तो मैं कुछ नहीं जानता।"

"वाह रे, इतना बड़ा लेखक है। बाजार में इतने दाम हैं--देश-विदेश में इतना नाम है, फिर भी कहानी नहीं जानता। न सही, मन से बनाकर सुना। हर मासिक पत्रिका में जिसकी कहानी छपती है, देश भर में हलचल मचा देता है, उसके लिए एक कहानी बनाना कोई कठिन काम है?"

अमिताभ ने देखा, अमिय मेरी बात पर इतना उत्साहित नहीं है। उसने कहा--"ना ...ना, कुछ तो सुनाना ही होगा। यह समझ लो, किसी मासिक के लिए कहानी बना रहे हो। अब शुरू भी करो...।"

अमिताभ ने पूछा, "कैसी कहानी चाहते हो?"

"मैं चाहता हूं कोई खांटी रोमांस से भरी कहानी, एकदम इस सांझ से मेल खाती। उसमें खिल उठेगी सातवीं के चांद के बेसुरे छंद में मृदु मादकता।"

अमिताभ ने हंसकर कहा, "ठीक है, वही होगा। अपना नायक तय करो। क्या होगा वह?"

"नायक होगा, कोई हाल ही में आक्सफोर्ड रिटर्न, वरना बीमा-कंपनी का मैनेजर, अथवा कोई अच्छा टैनिस चैंपियन। और नायिका होगी रेवेंशा या बेथुन कालेज की छात्रा अथवा शांतिनिकेतनी नृत्य-कला में प्रवीण। वरना रोमांस जमेगा कैसे?"

"क्यों, समाज के निचले स्तर पर जो जीवन है वहां क्या रोमांस नहीं है?"

अमिय ने घबराकर कहा, "ना... ना, अच्छी कहानी में तेरी मार्क्सवादी चाल नहीं चलेगी। दुश्चरित्र भिखारी को लेकर व मजदूर को लेकर कभी खांटी रोमांस नहीं चल सकता।

कला व राजनैतिक धोखा दो अलग चीज हैं। तेरे पावों पड़ता हूं भाई, इस जोरदार सांझ को वैसी भयंकर कहानियां कहकर बरबाद मत कर। एक रसीली कहानी सुना।"

दोनों में देर तक लड़ाई चलती रही। अंत में संधि हुई कि कहानी का नायक मध्य वर्ग का होगा। अभिजात और सर्वहारा वर्ग के बीच वह सेतु होगा।

अमिताभ ने कहा, "मेरा नायक साधारण आम जिंदगी का प्रतिनिधि है, यथार्थ जीवन के सूक्ष्म सूत्र में उसके सारे जीवन की कहानी गुंथी है... इतना ही नहीं, उसकी प्रकृति में क्रांति का स्वर है। दुनिया के हर अन्याय, अनीति के विरुद्ध प्रतिवाद की आवाज उसमें जीवित है। एक बहुत बड़ा विद्रोही है, मध्ययुगीन सरदार की तरह।"

"तो कहानी हो चुकी। मैं जान गया, इसके बाद क्या होना है--षड्यंत्र, रिवाल्वर, इंकलाब जिंदाबाद, जेल, फांसी अथवा आत्महत्या। तेरा मतलब मैं समझ गया।"

अमिताभ ने अमिय की बात की ओर ध्यान दिये बिना कहा, "हां, मेरा नायक क्रांतिकारी है। समझ कि सारे अन्याय, दुर्नीति के विरुद्ध अभियान छेड़ा है उसने। डर की कोई बात नहीं, वह कवि भी है।

"ओह, कवि है! तब तेरी कहानी का फ्यूचर अच्छा है। कविता के साथ कई तरह की चाट होगी। प्रेम, फूल, चंदन, मूर्च्छना, विरह, दीर्घ श्वास। हां, अब शुरू कर, खूब जमेगी।"

"हां, वह कवि है। क्रांति उसका धर्म होने पर भी कविता उसके प्राण हैं। कवि न होता तो दुनिया का सारा दुख-दर्द यों इतनी गहराई से अनुभव कर पाता? दुनिया के अभावों और हाहाकार से उसकी आंखें यों बहतीं? कवि उसके प्रतिकार के लिए हर बाधा-विघ्न को छाती पर झेलता आगे बढ़ता है। उसके विचार में वही कवि है जो आदमी दुख-दर्द देख सिर्फ आंसू बहाकर संतुष्ट नहीं होता, उसके मिटाने के लिए जीवन का उत्सर्ग कर देता है। वह सोचता है, दुनिया का दुख-दर्द समझने के लिए कवि जैसा अंतःकरण चाहिए, उसमें परिवर्तन के लिए वैसे ही सैनिक और कर्मी की तत्परता भी चाहिए। इस कवि और कर्मी के समन्वय में ही उसका व्यक्तित्व है।

"उसमें जो इस दोहरे व्यक्तित्व की एकता तो समझ नहीं पाता, वह कुछ नहीं समझता। आलोचना उसका चंदन है और व्यंग-विद्रूप उसकी विभूति।

"इस आलोचना के निरंतर तूफान में वह पहाड़ की तरह सिर उठाये खड़ा रहने में गर्व का अनुभव करता है। उसे कोई भी हिला नहीं सकता, किसी भी प्रकार वह पथभ्रष्ट नहीं होता। जो निष्ठुर हैं, भयंकर और उच्छृंखल कहकर चोट करते हैं, उनको वह हंसते-हंसते उपेक्षा करता है। जो उसे फूल की तरह नरम, घास की तरह कोमल कहते हैं, उनकी बात वह लापरवाही से उड़ा देता है। वह झरने सा उद्दाम और उदास और अविनीत है।

"स्वप्न-प्रवण कवि की तरह वह यथार्थ के बाहर अपने स्वप्न का छायानीड़ बनाना नहीं चाहता। वह चाहता है यथार्थ जीवन में हर भले-बुरे का आलिंगन कर उसमें दृढ़ता से पर्वत के समान खड़ा रहना। वह सबसे अधिक प्रेम करता है जीवन को... सिर्फ कवि

अथवा सिर्फ कर्मी होता तो ऐसा संभव नहीं था। कवि और कर्मी है, इसीलिए आसानी से कर पाता है।''

''यह हुआ चरित्र-चित्रण और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण। मैं पूछता हूं, रोमांस कहां है? यह भाषण फिर कभी देना। पर रोमांस की बात सुनने का यह दुर्लभ क्षण टल गया तो फिर नहीं आयेगा। गिव मी सम रोमांस, जिसमें होगा लेक्लैंड का दृश्य। हाइलैंड की वीरता, इंडो प्लेन का सांवला प्रेम।'' अमिय ने शोर मचाते हुए कहा।

''रोमांस, जीवन को छोड़कर रोमांस कहां?'' अमिताभ बोला।

''मैं सीधे पूछता हूं कि तुम्हारा नायक प्रेम में पड़ा या नहीं?'' अमिय ने पूछा।

अमिताभ ने कहा--''अगर प्रेम में पड़ने का मतलब किसी को चाहने से है तो कहूंगा कि मेरा नायक प्रेम करता था किसी से। अपनी सारी श्रद्धा व स्नेह के साथ, भरपूर चाहता था किसी को। जिसे चाहता था, प्रतिदिन उससे वैसा ही अगाध स्नेह, ममता, और विश्वास मिला था।''

''ठीक है। मैंने सोचा था कि अंत में व्यर्थ प्रेम की करुण ट्रेजेडी होने वाली है। तुम्हारे नायक का जो वर्णन सुना, उसमें ऐसी शंका करना लाजिमी है। क्योंकि ऐसे प्राणी के भाग्य में सारी दुनिया में यही घटता आया है। खैरियत है कि कहानी ट्रेजेडी होते होते बच गयी। धन्यवाद है भई!''

अमिय की बदमाशी की ओर ध्यान दिये बिना अमिताभ ने कहा, ''उसका चाहना जैसा गहरा था, वैसा ही निर्मल भी। जिसे चाहा था वह उमर में उससे एकदम छोटी न होने पर भी अनुभव में एकदम छोटी थी। शिशु की तरह सरल और निरीह हृदय लिये देखती थी दुनिया को। खूब गहराई से चाहती थी, पर उसे समझा बिलकुल नहीं। नायक उसके लिए दुनिया में सारे सौंदर्य का प्रतीक था। वह चाहती थी उसके शरीर को--शायद उसके शिक्षित और भद्र मन को। परंतु जिस कारण उसका व्यक्तित्व था, उसे वह बिलकुल पकड़ नहीं पाती थी। इसका मतलब नायक के मत को नापसंद करती, सो नहीं। उलटे सहानुभूति दिखाती। मगर उसे बिलकुल समझ नहीं पायी। यानी उसकी कोई क्लीयर आइडियोलाजी न थी इस बारे में।

''नायक ने काफी दिन पहले कहा था--'देखो मीरा, मुझसे प्रेम करके तुम खतरे में पड़ सकती हो।' मीरा उस दिन हंसकर रह गयी। बड़े घर की बेटी थी वह, बचपन से खूब ठाठ-बाट से पली थी। वह चाहती थी कि दुनिया के यथार्थ से बहुत दूर बनायेंगे शांति का एक नीड़। नायक को एकदम पूरी तरह अपने पास पाना चाहती थी।''

''मतलब?'' अमिय ने पूछा।

''मतलब, मीरा सिर्फ उसे चाहती थी। इतना ही, इतनी ही दूर तक सिर्फ। प्रेम के अलावा और कोई आकर्षण न था उनमें। मीरा का प्रेम था--अकृत्रिम, सरल, निष्कपट। उसके अंदर की नारी किसी निरीह ग्राम-बाला की तरह अपना सारा स्नेह नैवेद्य की तरह

उड़ेलकर नायक की पूजा करने को व्याकुल थी।''

''इसके बाद?''

''इसके बाद जो होना था सो हुआ। एक दिन अचानक.... ।''

''क्या निमोनिया, इंफ्लुएंजा में कोई...?'' अधीर हो अमिय ने पूछा।

''एक दिन अचानक षड्यंत्र के मामले में कम्युनिस्ट कहलाकर नायक गिरफ्तार हो गया। इसकी उसे कई दिन से संभावना लग रही थी।''

अमिय ने बेचैन होकर कहा, ''नहीं, यार, अपनी कहानी के लिए उन्हें कुछ दिन और प्रेम करने दे। इतनी जल्दी जेल न भेजो। चाहो तो तुम एक मिनट में जेल से छुड़ा सकते हो, जैसे--प्रमाण के अभाव में मजिस्ट्रेट ने छोड़ दिया। या यों समझ लो कि छत्रपति शिवाजी की तरह जेल से चालाकी करके भाग निकला। इसके बाद पृथ्वीराज-संयोगिता की तरह नायिका का हरण कर चंपत हो गया देहरादून एक्सप्रेस में...।''

अमिताभ ने कहा--'' क्यों, ऐसा हो सकता है क्या? नायक के चरित्र के लिए क्या ऐसा स्वाभाविक होगा?''

अमिय ने कहा, ''मेरा कहा मान। नायक को एक बार विलायत घुमा लाते हैं। युवक अध्यापक बना देते हैं और नायिका को एक बार बेथुन कालेज में या हमारे रेवेंशा कालेज में भरती करा देते हैं तो स्वाभाविक-अस्वाभाविक की इतनी चिंता न होगी। रोमांस खुद ही जम जायेगा।''

बिना उत्तर दिये अमिताभ कहने लगा--''साल, दो-तीन साल। मीरा एकदम टूट गयी। जीवन उसके लिए बन गया एक बड़ा बोझ। फिर नायक टूटकर जेल से आया। इस बीच दुनिया का चेहरा ही बदल गया था। मेस मैनेजर ने पुलिस के डर से मेस में जगह नहीं दी। पिता ने चिढ़कर पैसे भेजने बंद कर दिये। अपने अलावा कोई दूसरा न था उसका इतनी बड़ी दुनिया में।''

''उसकी भेंट हुई होगी मीरा से। क्यों?'' अधीर हो अमिय ने पूछा।

''ना, भेंट नहीं हुई। मीरा ने खत-पर-खत लिखे। एक बार भेंट के लिए कितनी मिन्नतें कीं। मगर नायक पहाड़ की तरह अडिग। कवि मन ने कहा--'ये माला तेरी है। तुझे लेनी होगी।' मगर कर्मी मन ने कहा--'चुप रहो, कवि! यथार्थ के बारे में तुम में कोई धारणा नहीं। तुम सिर्फ सपने लेना जानते हो। सपने-ही-सपने।' मीरा उसके पास आकर रोयी। 'तुम इतने निष्ठुर हो?' कवि कहने जा रहा था--'मैं निष्ठुर नहीं हूं, मीरा! मैं तुम्हें प्रेम करता हूं।' मगर कर्मी ने उसे बोलने न दिया, बोला--'तुम मुझे भूलने की चेष्टा करो, मीरा। मैं फुटपाथ का जीव हूं। इस जीवन में फुटपाथ के सिवाय कोई ठिकाना नहीं'।''

''अंत में कवि की जीत हुई? क्यों?'' अमिय ने पूछा

''ना... जीत हुई कर्मी की।'' अमिताभ ने कहानी आगे बढ़ायी--''नायक ने कहा--'मीरा, तुम मुझे चाहती हो, यह मैं जानता हूं। मैं तुम्हें नहीं चाहता, ऐसी बात नहीं। मगर प्रेम

करना मेरे लिए सिर्फ सेंटीमेंट या शौक ही नहीं है, पेशेवर प्रेमी की तरह अपने प्रेम की वेदी पर तुम्हें बलि नहीं देना चाहता। तुम्हारे भविष्य के बारे में मुझे चिंता है। मुझसे विवाह के बाद तुम्हें यथार्थ से सामना करना पड़ेगा। जब तक उसके लिए तुम में साहस नहीं, तब तक यह सेंटीमेंट जितनी जल्दी मिट जाये उतना ही भला होगा। सचमुच मैं तुमसे प्रेम करता हूं, मीरा! अतः तुमसे ज्यादा तुम्हारे भले की चिंता है मुझे। मैं कोई स्वार्थी नहीं। स्वार्थ के लिए तुम्हारा इतना बड़ा जीवन जलकर नष्ट हो जायेगा। ऐसा मैं नहीं कर सकता। हालांकि जहां हममें एकता है, कामरेडशिप है, जहां जान-बूझकर राह चुनने की योग्यता व क्षमता है, वहीं कुछ बात और भी है। पर तुम तो सचेत नहीं हो, मीरा! तुम ने मुझे चाहा, यह सच है, लेकिन मेरे मार्ग के आकर्षण से चाहा, सो नहीं। एक अर्धचेतना भावुकता और सेंटीमेंट के सपनों में अंधी होकर इतने बड़े यथार्थ को भूल जाने पर वह जरूर एक दिन प्रतिशोध लेगा। यथार्थ की ठोस धरती पर तुम्हारी ये स्वप्न-लहरें कब तक टिक पायेंगी? आज का सेंटीमेंट कल के निष्ठुर व्यंग्य में तब्दील हो जायेगा। तब तुम पछताओगी, मीरा! जहां राह की ग्रंथि शिथिल है, वहां सहयात्री के रूप में कब तक सिर्फ सपने के नशे में राह चलोगी?'..."

"मीरा क्या बोली?" अमिय ने पूछा।

"वह बोलती और क्या? इतनी बातें वह नहीं समझती थी। बस, वह तो प्रेम जानती थी। इसके आगे कुछ नहीं। वह रोने लगी। विनती करने लगी।"

"मगर कहानी जटिल हो रही है।" अमिय बोला।

अमिताभ ने कहा, "नायक ने मीरा को काफी समझाया मगर वह बिलकुल मानी नहीं। अंत में कोई उपाय न देखा तो उसने झूठ का सहारा लिया। काफी सोचकर मीरा से कहा--'देखो मीरा, मैं एक और से प्रेम करता हूं। सच कहने का अब समय आ गया है। यह रहा उसका फ़ोटो मेरे पास।' कहकर खरीदी हुई फोटो दिखा दी।"

"मीरा ने क्या उसकी बात का विश्वास किया?" अमिय ने पूछा।

"पहले तो विश्वास नहीं किया। जब कई मनगढ़ंत प्रमाण दिये तो वह और क्या करती? विश्वास करना पड़ा। वह तो वैसे भी एकदम सरल थी। किसी बात का विश्लेषण करना तो सीखा ही न था।

"नायक ने सोचा था कि अब नायिका खफा होगी। ईर्ष्या करेगी। प्रतिशोध की चेष्टा करेगी। वह यही चाहता था ताकि मीरा उसे भूलकर सुखी रहे। इसके आगे वह कुछ सोच नहीं पाया। मगर मीरा आंसुओं से छाती भिगोने लगी। रोने के सिवा वह दुनिया में कुछ नहीं जानती थी। बहुत मानिनी थी।"

अमिय का गुस्सा सीमा पार कर रहा था। तीखी आवाज में कहा, "तेरा नायक निष्ठुर है, धोखेबाज है, झूठा है।"

शांत स्वर में अमिताभ ने कहा, "हो सकता है, मगर स्वार्थी नहीं। अपने स्वार्थ के

लिए झूठ का सहारा लेने से घृणा करता है। पर मीरा के भले के लिए वह दुनिया का कोई भी घृणित कार्य कर सकता है, क्योंकि वह उसे सचमुच चाहता है। मीरा को विदा करने के बाद देर रात तक रोता रहा। मीरा सुखी हो, यही उसके मन में है। मीरा से शादी करके ढेर सारे दुख के अभावों के बोझ तले दबाना नहीं चाहता। वह सोचता था--'मैं तो फुटपाथी जीव हूं। भविष्य मेरा पुलिस की दया पर निर्भर है।' किसी को प्रेम कर उसका जीवन नष्ट नहीं करना चाहता। वह यथार्थ को पहचानता है, अतः मीरा के कोमल हृदय पर यथार्थ का इतना बड़ा पहाड़ लादना नहीं चाहता था।''

कहानी अंत तक सुनने का साहस व उत्साह अमिय में न था। उसने अनमने होकर पूछा, ''कहानी खतम हो गयी?''

''हां, करीब करीब। नायक चाहता था, मीरा की सारी स्मृति पोंछकर मिटा दे। मीरा से भेंट करने का साहस न हुआ। अतः उस दिन सांझ को कलकत्ता छोड़ ओड़िसा आ गया। अंतर में विसर्जन की वंशी बज रही थी। आज सर्वस्व गंवा चुका। अपने हाथों सब कुछ दान कर दिया। सब कुछ खोने का वह असीम आनंद, आज उसकी सांत्वना था। इसमें कवि टूट तो गया था, मगर कर्मी यानी कार्यकर्ता एक तरह से गर्व का अनुभव कर रहा था।

''मीरा उसे विदा देने स्टेशन आयी थी। गाड़ी छूटने के दस मिनट पहले उसका नन्हा सा हाथ अपनी मुट्ठी में लेकर नायक ने कहा--'मुझे भूल जाने की कोशिश करो, मीरा। प्रेम सिर्फ सेंटीमेंट ही नहीं है। उससे कहीं अधिक बड़ा है। मेरी ओर नहीं है तुम्हारा मार्ग। तुम सह नहीं सकोगी। मेरे जैसे अभागे और नालायकों का दल उस राह के यात्री हैं जिससे तुम्हारा कोई परिचय नहीं। मेरे लिए तुम उस राह पर कदम रखतीं तो तुम टूट जातीं। चल नहीं पातीं।' सीटी बज रही थी। मीरा बोली--'खत देना।' रूमाल से आंसू पोंछते हुए नायक ने कहा--'चिट्ठी से क्या होगा?' पहली बार उसके हृदय की दुर्बलता उसकी जबान की राह बाहर आ रही थी। अंतर के कवि ने कहा--'मीरा, नमस्कार। सदा याद रहोगी। क्योंकि इस अभागे के यात्रा-पथ में एक मात्र तुम पुण्य-तरु थीं जिसकी छाया, जिसके सौरभ-संगीत ने तरुण यात्री के बोझिल क्षणों की सारी क्लांति मिटा दी। मेरी राह के किनारे कभी फूल खिला था। ... उसकी स्मृति भुलाना मेरे लिए असंभव होगा। मैं सदा उस फूल खिलने की जयजयकार करता रहूंगा।' कार्यकर्ता का मुंह क्रोध से लाल हो गया। कहा--'छिः छिः, कवि! तू इतना कमजोर है?'

''ट्रेन चल पड़ी। बाहर तूफान उठ आया। नायक ने उस तूफान की ओर देखा। दोनों हाथ उठाकर उस दुर्वार शक्ति को प्रणाम किया। मन-ही-मन सोचने लगा--यह उस तूफान का एक अंश है। दुनिया के अगणित टूटे अस्तित्व मिट्टी में मिलकर उस पर उद्दाम गति से बहने आये हैं। यही उस के अभिसार का पथ है।''

अमिय ने सिगरेट सुलगाकर कहा, ''टॉलस्टाय की 'अनाकरनिना' की तरह उपेक्षित

नायिका, उसकी प्रेमिका ने ट्रेन तले आत्महत्या क्यों नहीं की?"

अमिताभ ने भी सिगरेट सुलगाई। कहा, "आत्महत्या कोई बड़ी वीरता का काम नहीं। जो निहायत भीरु हैं, जीवन का सामना करने का साहस नहीं, उनके लिए यह ठीक है।"

अमिय ने कहा, "कहानी नीरस है। बीच बीच में कुछ और चमक होती तो अच्छा रहता। एक एलोपमेंट देते तो रोमांचक हो जाती।"

अमिताभ ने कहा--"जीवन से जुआ खेलने वालों के लिए चाहे जितना भी रोमांच हो, मेरे नायक के लिए यह एकदम असंभव है। वह सब से अधिक जीवन की भक्ति करता है। यथार्थ को गहराई से पहचानता है।"

अमिय सूखे स्वर में बोला, "कहानी तो खतम होने को आयी है। मगर नायक का अभी तक नामकरण नहीं किया। इतना बाकी क्यों रखा?"

अमिताभ ने लड़खड़ाते हुए कहा--"नायक का नाम? उस का नाम ...।" अचानक उसका चेहरा सफेद फक हो गया।

"अरे कुछ बोल तो!" अमिय कह रहा था।

कुछ क्षण सोचता रहा अमिताभ। फिर गंभीर होकर कहा, "नायक का नाम है अमिताभ।"

आश्चर्य से अमिय ने पूछा--"ऐं अमिताभ? तू?"

भावी स्वर में अमिताभ ने कहा--"यह कहानी नहीं। मेरी आत्म-कथा का एक फटा पन्ना है।"

मौन विस्मय में अमिय गंगा की ओर देखता रहा।

अंगुली

भोर का समय। कांटों की बेल पर, हरे पत्तों पर चांदनी फीकी दिख रही है। मुसलमान बस्ती में एक छान पर बैठे तोमिज मियां के गंजे मुर्गे ने पंख फड़फड़ाकर बांग दी-- चक् ...चक..ख अ...चक्...चक! भीगी माटी का सुराग पा कांस के फूलों की भीड़ मीं मीं, चीं चीं कर रही है उसके साथ...।

मागुणि खां कंधे पर हल रखकर चल पड़ा। कहीं कहीं बरखा होकर रुक गयी थी। खेत की सूखी माटी में जुताई करने का अच्छा मौका है। गमछा अच्छी तरह माथे पर लपेट, पिछवाड़े से कनेर की एक डाल खींच ली। बटुवे से सरौता निकाला, फिर उसकी डोर खींचकर पत्ते छांटे। डेढ़ हाथ लंबी छड़ी बना ली। और फिर अपनी रोज की आदत के मुताबिक अधभूला मंझोली आवाज में हिंदुवानी गीत गाया--''राम जे लखन हो गले मृगमारि।''

अमराई में गूंजकर गीत उसके गले में ही मर गया।... और वह चल पड़ा अपने खेत की ओर। गांव के बाहर से एक और पतली डाल तोड़ दातुन बना ली। चबाते चबाते आगे बढ़ गया।

गांव के छोर पर अंधेरे के बड़े से दूह की तरह घना बरगद खड़ा है। उसी के नीचे ग्रामदेवी बावंती का सिंहासन है। थोड़ा हटकर श्मशान है। कल रात के अधजले मुरदे को छाती पर रखे चिता धीमी धीमी जल रही है। हिंदू देवी-देवताओं पर भले ही विश्वास हो या न हो, उस पेड़ के नीचे पहुंचते ही मागुणि खां की छाती, पता नहीं क्यों जोर जोर से धक धक करने लगती है। रास्ते में किसी जीव-जंतु का कोई शोर या शब्द नहीं। चारों ओर सुनसान। अनजाने मागुणि खां की हथेली दाहिनी ओर बैल की पूछ पर चली गयी।

अचानक बरगद की जटाओं के नीचे उसने देखा--दो मानवी छाया हैं। मागुणि खां का शरीर पसीने से तर-बत्तर हो गया। जीभ तालू से सट गयी। उसे तभी याद आया--आज शनिचर है।

'इस बार सुख-शांति से लौट आया तो ठकुरानी माता को मुर्गी का जोड़ा बलि दूंगा।' उसने मन-ही-मन में मनौती कर ली।

हिंदू-मुसलमान दोनों धर्मों के सैकड़ों देवताओं के नाम मन-ही-मन याद कर गया।

सब को तरह तरह की भेंट देने की बात सोचता रहा, इस घोर संकट से निजात पाने के लिए उन्हें लोभ देता रहा।

क्रमशः दोनों छाया दूर होती चली गयीं। मागुणि खां के होश ही गुम हो जाते कुछ देर में। मगर तभी दोनों छाया कुछ बोल रही थीं, उसने सुन लिया। हिम्मत आ गयी मन में। तो ये कोई आदमी ही लगते हैं--कान लगाकर गौर से सुनने लगा।

पहली छाया कह रही है--"छिगुनी अंगुली का मोल कितना?"

"जी, अनाप-सनाप बोल रहा है। कहता है, डेढ़-सौ रुपये से छदाम कम नहीं होगा।" दूसरे का स्वर था।

"तो अंगूठी कितने में देगा?"

"पांच नोट सौ सौ के।"

"धत्!"

"जी, हुजूर मां-बाप हैं। मैं आपसे झूठ बोलूंगा?"

"दाम ऊंचे हैं। लेने की बात कहो..."

"जी नहीं, एक दाम कहे हैं। डेढ़ सौ लिये बिना छिगुनी अंगुली नहीं देगा। चाहे सिर काट लें, तो भी नहीं..."

निस्तब्धता--दोनों छाया चुपचाप। कुछ क्षण बाद पहले स्वर ने कहा--"ठीक है, देंगे। पेशगी ये बीस रुपये रखो। गिनकर बांध लो। हां... सारी बात याद रखना। समझे? खबरदार ... होशियार।"

मागुणि खां को रुपयों की खनक साफ सुनाई दे रही थी। इस के बाद देखा--दोनों छाया एक-दूसरे की विपरीत दिशा में चली गयीं और ओझल हो गयीं। कुछ क्षण अवश खड़ा रह गया मागुणि खां। सोचा--जरूर ये भूत-प्रेत ही हैं। वरना स्याह अंधेरे में अंगुली की खरीद-फरोख्त क्यों होती यहां?

लगता है, आदमी की अंगुली का कोरमा बनाकर शैतानों को आज सौगात दी जायेगी। मगर उसे लगा, पहले आदमी की आवाज कुछ जानी-पहचानी लगती है। कहीं देखा है। रुककर याद करने लगा। कुछ क्षण बाद याद आया--अरे, यह तो अपने गांव के जमींदार साहब हैं। एक बार लगान भरने गया था, दो दिन देर हो गयी सो कठोर शब्द में हुक्म दिया--एक कमरे में बंदकर मिर्च का धुंआ लगा दो। वह स्वर आज भी याद है। इतनी जल्दी वह क्या भुलाया जा सकता है? वह इस्पाती स्वर। मगर यह माजरा क्या है? कुछ नहीं समझ पाया। उसका दिमाग चकरा गया। हल मोड़कर घर चला आया। मन से डर पूरी तरह मिटा न था। आकर तुरंत किसी ओझा से अपने को सुरक्षित करा लेना चाहा। मंत्र फूंका गया, पांव से सिर तक। अच्छा सा तावीज लेकर बांध लिया। धागे की जगह उसमें घोड़े की पूंछ के बाल थे।

आज गांव में बड़ी सभा है। पहले से ही ढिंढोरा पीटा गया। भाषण देने के लिए कटक से कई नामी नेता भी पधारे हैं। सभा-स्थल पर भीड़ है। सांझ ढलने से पहले ही मागुणि खां सभा में हाजिर था। सबसे पीछे जाकर धीरे से बैठ गया, चुपचाप। चेहरे पर उत्सुकता भी थी।

गांव में बार बार जमीन का बंदोबस्त करके लगान बढ़ाया जा रहा है। रैयत और किसान इससे कितने क्षतिग्रस्त हो रहे हैं, भूखे-प्यासे लोगों की खून-पसीने की कमाई का फायदा उठाकर मुट्ठी भर जमींदार कैसे पूंजी जमा कर रहे हैं--इसका पूरा ब्यौरा लेकर सरकार के आगे मांग रखने के लिए प्रजा ने फैसला किया है। जमींदार के अमानवीय अत्याचार, शोषण की नीति के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए विराट जनसभा बुलायी गयी है।

तालियों की गड़गड़ाहट में सभा शुरू हुई। चारों ओर खूब गहमागहमी। जनता की आंखों में वर्ग-चेतना की पहली लहर दिख रही है। प्रकाश के नूतन संकेत हैं आज।

"सुनो भाइयो। भूखी शोषित जनता, किसान भाइयो, आज हमारा सर्वस्व लीलकर पूंजीवाद की निष्ठुर जीभ आगे बढ़ रही है। आज अपनी देह की हड्डियों और इस पर बची चमड़ी को छोड़कर अपना कहने लायक हमारे पास कुछ नहीं रहा है, सारी धरती पर। सब-कुछ जा चुका है हमारा। सिर्फ टूटी-फूटी यह जिंदगी बची है। या फिर रह गया है हमारा यह बीमार, मुमूर्ष, जीर्ण और दलित अस्तित्व। भाइयो, सर्वहारा मिलकर एक हो, इस अमानुषिक शोषण का प्रतिशोध लेना होगा..."

भाषण चले—जैसे तूफान गुजर रहा है। जन-समूह विचलित हो उठा है, स्पंदित।

जाग जाग मणिव भाई!

अपने समस्त हथियार एकत्र करो!

एक होओ! एकत्र होओ!

--"याद रखो, स्वयं को शोषित होते जाने देना सबसे बड़ा पाप है। इस अभिशाप से मानव-जाति पंगु हो जायेगी।"

जनता ने प्रत्युत्तर दिया--

"शोषणवाद का ध्वंस हो!

पूंजीवाद का नाश हो!"

फिर भाषण चले--"उठो, रैयत भाइयो, तुम्हारा खून-पसीना खाली धरती पर सोना उगा देता है, उसका अधिकार तुम से जमींदार छीन रहे हैं। अपना हक हम हर हालत में लेंगे, चाहे जान की बाजी लगानी पड़े। आगे बढ़ो। रैयत, जागो!"

जन-संसार से आवाज आयी--"जमींदारी प्रथा का लोप हो, रैयत वर्ग की जय हो।"

इसी समय सभा में एक कोई जीर्ण-शीर्ण आदमी खड़ा हुआ। चारों ओर नमस्कार करके कहने लगा—"भाइयो, हम सब मूर्ख हैं। जरा सी गरम बातों में बह जाना हमारे लिए सहज है। मगर भाइयो, दूसरों से स्वयं को ठगने देना उचित नहीं। हमारे पूर्वजों ने जो राह

दिखायी है, उससे हटना नहीं है। महाजनो येन गतः सः पंथाः। इन चिकनी-चुपड़ी बातों के बहकावे में नहीं बहना। राजा, जमींदार--यह सब भगवान की करनी है। उन्हें मिटा देना आदमी के हाथ में नहीं। इन्हें सम्मान देना ही मानवजाति का कर्तव्य है। ये अभी रैयत संघ बनाने की बात कह रहे थे, उसका भीतरी रहस्य क्या है, जानते हैं? वे दरअसल चंदा इकट्ठा कर खाना चाहते हैं।"

जनता की आंखों में संदेह दिख रहा था। उत्सुकता में भर एक-दूसरे की ओर इधर-उधर ताकने लगे। एक-दो ने वक्ताओं का समर्थन भी किया।

वक्ता और भी जोर जोर से कहने लगे, "भाइयो, जमींदार न होते तो हमारा मान, इज्जत, धन, संपदा--सब चोर, लुटेरों, डाकुओं के हाथ होता। ये हमारे सच्चे रक्षक हैं। इनके शासन के प्रतिदान में हम जो नाम मात्र का लगान देते हैं, वह तो हमारी कृतज्ञता का प्रतीक मात्र है।"

"ठीक...ठीक कहा," जनता ने अनुमोदन के स्वर में कहा।

वक्ता खुश होकर उत्साह में कहने लगे, "भाइयो, कोमल मीठी बातें करने वाले रैयत-संघियों का विश्वास कर लेंगे तो विपदा में पड़ेंगे। मैंने लंबे अर्से तक इनके साथ काम किया है। मगर अब इनके सद्उद्देश्य पर शंका हो गयी है। बाध्य होकर संबंध तोड़ना पड़ा। आप लोग इनकी बातें सुनेंगे तो भगवान के आगे द्रोही बनेंगे, क्योंकि राजा भगवान का अंश होते हैं। हमारी ग्रामदेवी बावती माई की भी हम पर गाज गिरेगी। गांव पर आफत आ जायेगी। तुम्हें याद होगा, इन्होंने देवी के पास बलि के समय तरह तरह के झंझट खड़े किये थे, पिछले वर्ष पिकेटिंग की थी। इनके सहकर्मी के रूप में मैंने जो पाप किया था, उसका प्रायश्चित आज और यहीं करूंगा--इंतजार करें।"

बच्चे-बूढ़े सब एक साथ कह उठे--"मां इन धर्मत्यागियों को खा जायेगी... खा जायेगी।"

वक्ता और तेज हो उठे, "ये देवी के शत्रु हैं। कल मुझे बावती माई ने सपने में कहा--'गांववालों को सावधान कर दो। इन लोगों को दूर करो, हटा दो। वरना इस बरस घर जलेंगे। हैजा फैलेगा, चेचक होगी। बीमारियां आयेंगी, फैल जायेंगी, मेरी मंझली बहन मोतीझरी आयेगी...'।"

सभा में सारी भीड़ सिहर उठी। सबने कहा, "हटाओ! इन्हें भगाओ!"

वक्ता ने जेब से लंबी छुरी निकाली। लालटेन की रोशनी में चमक उठी। कहा--"मुझ पर अविश्वास कर सकते हो। मगर अपने को सच प्रमाणित करने के लिए अभी आपके आगे अपनी अंगुली काट दूंगा। अपने खून की साक्षी दूंगा।"

उन्होंने छुरी की धार की जांच की। लालटेन की रोशनी में भी उसकी धार चमचमा रही थी। बाउती देवी का नाम ले उसे प्रणाम किया। अंगुली को एक झटके में काट डाला। अंगुली छिटककर देवी की वेदी के एक किनारे जा गिरी। खून के छींटे चारों ओर फैल

गये। सारी सभा अचंभे में रह गयी। सब-के-सब सिहर उठे। औरतों की आंखों में आंसू आ गये, बच्चे डर गये। सब ने सोचा--आदमी वास्तव में सच्चा है। इसकी आत्मबलि ही इसके अंतर की निर्मलता का प्रमाण है।

सबका गुस्सा जाकर पड़ा किसान कार्यकर्ताओं पर। ये ही हैं सारे अनिष्ट के मूल। क्रुद्ध जनता ने उन असहाय कार्यकर्ताओं पर आक्रमण किया--"धर्मद्रोही! देशद्रोही! राजद्रोही!..."

तभी जमींदार साहब की सौम्यमूर्ति के दूर से दर्शन हो रहे थे। चेहरे पर कृत्रिम हास्य था। सबको दबाते हुए कह उठे--"मेरे प्रिय प्रजा जन, क्षमा मनुष्य का प्रधान धर्म है। शत्रु को भी मन-वचन-कर्म से क्षमा करने के लिए भगवान बुद्ध, ईसा मसीह आदि सब ने मुक्त कंठ से उपदेश दिया है। भाइयो, इन्हें छोड़ दो। ये हमारे अतिथि हैं। इन सब पर चोट न करें?"

क्रुद्ध जनता को जमींदार की उदारता एवं महानुभावता का परिचय मिल गया था। वह विमूढ़ हो गयी। अचंभे में भर गयी।

जमींदार महाराज ने सबको संबोधित किया, हालांकि उनका स्वर शांत और नम्र था--"भाइयो, बावती देवी की दया है। धन्य हैं हम, वह हमें बुद्धि देती है। चलो, हम उनका अनुसरण करें।" सब चल पड़े।

उन्होंने घुटने टेककर विगलित-नयन देवी की प्रतिमा को प्रणाम किया। सब उसका शुक्रिया-अदा करते हुए उनका अनुकरण कर रहे थे।

इसके बाद सामंतजी सब को आश्वासन देकर कह उठे, "इन राजद्रोहियों पर किसी अत्याचार का हमें कोई अधिकार नहीं है। ऊपर भगवान हैं और नीचे सरकार बहादुर का न्यायाधिकरण है। अतः मैंने पुलिस की हिफाजत में शहर में, मजिस्ट्रेट साहब के इजलास में भिजवाने की व्यवस्था की है। व्यक्तिगत रूप से वे हमारे अतिथि हैं। इनके साथ उचित व्यवहार करना चाहिए। हां, एक बात और। मैं इस वर्ष लगान का एक चौथाई मां बावती देवी के आसन पर विराट मंदिर-निर्माण में खर्च करने को आपके आगे बचनबद्ध हो रहा हूं। यह गांव के मंगल के लिए बहुत जरूरी है। आशा है, आप की सहायता, सहानुभूति मिली तो यह अभिलाषा जरूर पूरी होगी।"

उन्होंने सबको नमस्कार किया और अपनी गाड़ी में बैठ चल पड़े। सभा में छोटे से बड़े तक सब उनकी उदारता, सरलता एवं दानवीरता जैसे दैवी गुणों को देख मुग्ध हो रहे थे, भूरि भूरि प्रशंसा कर रहे थे। चारों ओर से 'धन्य धन्य' की आवाज आ रही थी। मागुणि खां सबसे पीछे बैठा हुआ सब देखता रहा। सुबह की बात याद कर उसका समूचा अंतःकरण चीख उठा विद्रोह में। बड़ी मुश्किल से अपने को सम्हालकर वहां से उठकर निकल आया।

राजा, रानी और कुत्ता

राजा, रानी और कुत्ता--तीनों को देखा।

कलकत्ता में मध्यवित्त श्रेणी का मकान।

छत पर कुर्सी डाल राजा-रानी गप्पें मार रहे थे। रजवाड़े की तरफ से साथ का नौकर नरहरि तिपाई पर चाय-पावरोटी रख, हुक्के के लिए आग लाने को रसोई की ओर गया था। राजा के पांव-तले चारों पांव पसारे धूल सना कुत्ता लेटा लेटा अपनी जीभ से पेट और पीठ चाट रहा था। बीच बीच में राजा द्वारा फेंका गया पावरोटी का टुकड़ा लपककर फिर अपनी जगह आकर लेट जाता।

सांझ हो आयी। चारों ओर आबोहवा खूब ठंडी हो रही थी। मगर राजा के माथे और चौड़े गालों पर पसीना उभर आया। आंखों में भरी खीझ और बेमतलब अतृप्ति की छाया।

सड़क के खंभे पर बिजली का लट्टू दप से जल उठा। कुछ दूरी पर कोई बड़ा सा लोहे का सब्बल और हथौड़ी लिये सड़क की मरम्मत और ट्राम-लाइन की जांच करता हुआ जा रहा था। सब्बल को लाइन में घुसेड़कर हथौड़ी से पीटकर टन टन की आवाज करता। इसके बाद काला कुर्ता पहने वह धीरे धीरे कहीं गायब हो गया।

राजा अनमने होकर उधर देखते रहे।

बीच बीच में राजा का मूड बिगड़ जाता है। दुनिया भर पर, सब पर और खुद पर भी चिढ़ उठते हैं। फिर शांत हो जाते हैं--जाड़ों के अपराह्न में सीमेंट की उस छत की तरह ही। रानी बहुत गंभीर, आत्म-सचेतन दिखती। लगता नहीं कि कहीं कुछ हो गया है। मगर भीतर-ही-भीतर एक आग सुलग रही होगी और उस काले धुंए से भरी आग को अंदर दबाये रखने की मानो वह जी-जान से कोशिश कर रही होती। नौकर बराबर काम करता जाता। कभी कभी वह बुद्धू की तरह हंसता, कभी कभी खुद को अधिक चालाक जाहिर करता और ठोकर खा बैठता। मगर काम ठीक करता। और कुत्ता? वह पूंछ हिलाकर कूं कूं करता पांवों के बीच में सिमटकर बैठ जाता। फिर किसी नवागंतुक की गंध पाकर खूब जोर से भौंक उठता, मानो अभी अपनी वीरता या अपनी जरूरत प्रमाणित करने जा रहा है।

इस अटपटी दुनिया में राजा हैं राजा, रानी हैं रानी, और कुत्ता? कुत्ता तो सदा कुत्ता ही ठहरा।

उस दिन राजा-रानी टैक्सी में बैठे बाइस्कोप देखकर लौट रहे थे। तभी यह कुत्ता गाड़ी के नीचे आ गया। रानी ने उसे नौकर के हाथ उठवाया। अपने पास लेकर बिठाया। तब से कलकत्ता की अनजान गली का यह आवारा कुत्ता राजा-रानी की दुनिया का अंग बन गया है। एकदम उपेक्षित हो या अनावश्यक हो, किंतु वह भी इस दुनिया का प्राणी है, इस बात में संदेह नहीं रहा।

राजा कलकत्ता की आबोहवा की बात कह रहे थे--घोर अस्वास्थ्यकर है यहां की जलवायु। हवा में धुंए और कोयले के टुकड़े। सुबह उठते ही नाक से इंच भर काली मोटी पर्त निकलती है। कमरे में असहनीय गरमी--जाड़ों में भी पंखा चलाओ। कुछ आराम नहीं। महीने में एक-आध बार सरदी-गरमी तो लगी ही रहती है। इससे तो अच्छा होता, दार्जिलिंग चले जाते, मगर वहां खर्च भी तो बहुत अधिक है। सरकार से मिलने वाले भत्ते में इतना बड़ा कुटुंब या दुनिया चलाना मुश्किल है। वे कोशिश कर रहे हैं, सस्ते में लंबी मियाद पट्टे पर कोई घर लेने के लिए। मगर अभी तक कुछ भी तय नहीं हो पाया। उन्हें शक है, शायद गढ़ के दुश्मन वहां भी जाकर कोई साजिश कर रहे हैं। मकानमालिक के पास। राजा की कोई बात उनसे छुपी नहीं रहती। लगता है, कलकत्ता के डाकघर वालों से मिलकर राजा की हर चिट्ठी खोलकर पढ़ लेते हैं और पहले ही सारी बातें जान जाते हैं। राजा बुरी तरह झुंझला उठे। उनके गाल व माथे पर बूंद बूंद पसीना टपक रहा है।

इसी बीच नरहरि हुक्का लगाकर पहुंचा है। राजा के चिंतन को जरा मोड़ लेने को फुरसत मिल गयी। मन कुछ हलका हो गया। हुक्के की नली अपनी ओर करके गुड़गुड़ाने लगे। रास्ते का नजारा देखने लगे।

जगह जगह सड़क की मरम्मत हो रही है। गरम अलकतरे की गंध हवा में तैर जाती है। दूर ट्राम मजदूरों और लोगों का शोरगुल सुनायी पड़ रहा है। जुलूस जा रहा है उनका। घर के सामने वाली पान-शरबत की दुकान में बत्ती लग चुकी है। कारपोरेशन के कुछ कर्मचारी काम से लौटते हुए वहां पान-बीड़ी खरीद रहे हैं। राजा हुक्का गुड़गुड़ाते हुए उस भीड़ का दृश्य देख रहे हैं। अचानक ऊंची आवाज में नरहरि को पुकारा--"जा, जाकर देख कि उस बिजली के खंभे के नीचे खड़ा कोई इधर बार बार क्यों देख रहा है?"

नरहरि ने गौर से देखा। इसके बाद कहा, "इसे तो सुबह भी देखा था। महाराज, वहीं खड़ा था।"

राजा घबराकर स्याह पड़ गये। माथे पर सिलवटें पड़ गयीं। सुबह भी खड़ा था? तो अवश्य ही वह दिन भर खड़ा रहा है। शायद कोई प्रजामंडल का आदमी होगा। हमारी गतिविधियों का पता लगाने आया है। जरूर ही उसका कोई मतलब होगा।

"तू उस पर नजर रखना, नरहरि। मैं जा रहा हूं, उसे पुलिस में दे दूंगा। देखो, भागने

न पाये। वह बदमाश लगता है। हम पर, हमारे मकान पर वह हमला करेगा...।''

उनकी आवाज ऊंची हो गयी थी। कुर्सी छोड़कर खड़े हो गये। पांव तले से कुत्ता भी झाड़-झूड़कर खड़ा हो गया। उनके चारों ओर घूम-घूमकर सूंघने लगा।

रानी घबरा गयी। धीरज रखने के लिए राजा से कहा, ''रास्ते पर कितने ही लोग तो आया-जाया करते हैं। कोई होगा। हमें क्या? आप नीचे न जाना। नरहरि जाकर पता लगा आयेगा।''

राजा फिर कुर्सी पर बैठ गये। रूमाल से चेहरे का पसीना पोंछ लिया। नरहरि नीचे गया। आकर खबर दी--'वह इसी गली का आदमी है। इसके बाप की लकड़ी की टाल है। माखन नाम है।''

नरहरि ने बताया, ''मुझे अपनी ओर आते देख वह एक और आदमी के कंधे पर अचानक हाथ रख गली में मजदूर संघ के दफ्तर में घुस गया।''

राजा ने कहा, ''ना, ना। आजकल किसी का विश्वास नहीं। तू उस पानवाले से कोई चीज न खरीदना। खबरदार, यहां के बाजार से भी कोई सामान न लाना कल से। यहां जो चाहिए तू रोज जाकर न्यू मार्किट से ले आना। कौन जाने प्रजामंडल का कोई आदमी यहां की सारी दुकानों को अपने प्रभाव में कर ले। वे लोग बराबर हमारे पीछे पीछे लगे हैं, यहां तक कि संबलपुर के रेजीमेंट साहब के दफ्तर के कुछ किरानियों तक को भी अपनी मुट्ठी में कर लिया है। मैं जो पत्र लिखता हूं, उन्हें पता चल जाता है। पिछले महीने मैंने अपने राज्य लौटने की इजाजत मांगी थी। तू खुद जाकर बड़े डाकखाने में रजिस्ट्री कर आया था। वह रसीद भी मेरे पास सुरक्षित है। मगर वे सारी बातें प्रजामंडल में चारों ओर फैल गयीं। तुरंत राज्य भर में जुलूस, सभा-समिति, हड़ताल हो गयी। सरकार को तार भेजे गये। सब सत्यानाश कर दिया। इनका कोई भरोसा नहीं, कोई विश्वास नहीं।''

नरहरि ने सहानुभूति के स्वर में कहा, ''महाराज, आपका भगवान सहायक है। हजार आदमी महाराज के पीछे पड़ें, क्या कर सकते हैं? क्या बिगाड़ेंगे? श्रीहुजूर राज्य से बाहर भी रहें, तो भी कोई छाया नहीं छू पायेगी आपको।''

राजा अन्यमनस्क हो गये थे। बाहर एक मरियल से घोड़े को पीटते हुए कोचवान फिटन दौड़ाये लिये जा रहा है। राजा पहिये की वह कर्कश आवाज कान लगाकर सुनते रहे।

राजा को अन्यमनस्क देख नरहरि ने कहा, ''महाराज, आज मैं अपने गढ़ के परि साहू को छोड़ने हावड़ा गया थां अपने राज्य के कुछ लोगों से भेंट हो गयी। वहां पर वे सब लकड़ी-चोरी के केस में सजायाफ्ता हैं। कोई अपील करने संबलपुर जा रहे हैं। वे लोग कह रहे थे--राज्य के सभी लोग हुजूर को याद करते हैं। कहीं प्रजामंडल वाले बाहर न कर दें, इस डर से वे कुछ बोल नहीं पाते। उन सबने हुजूर को वापस लेने के लिए सरकार बहादुर के पास बेनामी दरख्वास्तें भेजी हैं।''

रानी ने गहरी सांस लेकर कहा, "छोड़ो वे सारी बातें। अतीत पर रोने का कोई फायदा नहीं। भगवान की जो इच्छा होगी, वही होना है। यह कुत्ता है तो हमारे कितने काम आता है"

उनकी आवाज कितनी बोझिल व करुण हो आयी थी। राजा यह सब समझ गये। वे बात को बदलने के लिए एक कहानी सुनाने लगे--

"सुन रही हो ना, रानी साहिबा। हमारे दादाजी का एक गबरू कुत्ता था। नाम था टीपू। जिस दिन दादाजी साहब का इंतकाल हुआ, टीपू पीछे पीछे श्मशान तक गया। चंदन की चिता पर जब उनकी देह रखी गयी, टीपू बिना कुछ हलचल किये उधर देखता रहा। शवदाह के बाद टीपू ने ऊपर की ओर देखकर तीन बार हूक लगायी। अपने पंजों से श्मशान की धरती कुरेदी। गिर पड़ा और फिर वह नहीं लौटा।"

इस के बाद वे नरहरि की ओर देखकर बोले, "तेरे बापू को सब पता है। तब वह महल में काम किया करता था।"

नरहरि ने कहा, "हां हुजूर, मेरे बापू ने यह बात कई लोगों को बतायी थी। मैंने भी लोगों के मुंह से सुना है। बापू की तो ठीक से याद नहीं मुझे। वे मरे, तब मैं चार बरस का था। बस इतना याद है, उस दिन टप टप बरसा झर रही थी। बापू को एक चटाई में बांधकर आंगन में लाकर अरथी पर लिटाया। उस गीली धरती पर अरथी के पास दो मेंढक फुदक रहे थे। मुझे एक लड़के ने कहा था--तेरा बापू!"

तभी सड़क पर शोर-शराबा हुआ। दो रिक्शे वालों के बीच सवारी को लेकर कोई झगड़ा था। नरहरि चला गया।

राजा ने कहा, "मुझे पता नहीं क्यों, रानीजी, इस आदमी पर बहुत ज्यादा शक हो रहा है। दूसरे के मन में जहां चोट लगी है, ठीक वहीं से यह आश्चर्यजनक झंकार निकल सकती है। आदमी के मन में भिन्न भिन्न स्वर लेकर खूब अजीब ढंग से खेल सकता है यह। कई बार देखा है कि जब मैं एकदम अनमना हो जाता हूं, यह एकटक मेरी ओर देखता रहता है। पता नहीं, मन-ही-मन क्या सोचता रहता है? मेरे मन की हर बात टटोलकर बाहर निकालने के लिए यह चेष्टा करता लगता है? यह सचमुच अगर बुद्धू होता तो फिर ऐसा व्यवहार करता ही क्यों?"

रानी ने कहा, "आप तो सब पर शक करते हैं। अब तो आप अपनी छाया पर भी शक करने लगे हैं। अब कलकत्ता जैसी जगह में सच्चा नौकर-चाकर कहां से मिलेगा? यहां पर तो ऐसे ऐसे चोर हैं कि....।"

चारों ओर सन्नाटा। ऊपर मेघ नाक-कान कटी सूर्पणखा जैसे पैंतरे मार रहे हैं। राजा-रानी देर तक उधर देखते रहे।

कुछ दिन बाद...

राजा को राज्य लौटने के लिए हुकुम मिला। गढ़ से पेशकार, कानूनगो, दारोगा, दफादार सब राजा का स्वागत करके लिवा लाने के लिए कलकत्ता आये हैं।

खुद रेजिडेंट साहब राजा का स्वागत करने के लिए गढ़ में प्रतीक्षा कर रहे हैं। छोटा सा किराये का मकान, भीड़ मुखरित हो उठी। गढ़ से दासी, निजी चाकर, नाई आये हैं, राजा की वापसी यात्रा में शामिल होने के लिए।

सामान बांधा जा चुका है।

लोग-बाग, दास-दासी सबको स्टेशन भेज दिया गया। इधर राजा-रानी बंधु-कुटुंबी, साहेब-सूबा, राजा-रजवाड़ों को शुभ खबर देकर उनसे भेंट-मुलाकात के बाद सीधे उधर-की-उधर ही चल पड़ेंगे स्टेशन। जाते जाते नरहरि को कह गये, बाकी सब सामान गाड़ी में लदवाकर स्टेशन ले आना।

राजा-रानी टैक्सी में बैठने लगे तो नरहरि हाथ जोड़कर खड़ा हो गया, बोला, ''हुजूर! मेरी छुट्टी मंजूर कर दें। मैं अब गढ़ नहीं लौटूंगा। यहीं कलकत्ता में जूट मिल में कहीं मजूरी कर लूंगा। इजाजत हो!''

राजा और रानी आश्चर्यचकित रह गये। ''क्या? इतने दिनों बाद भी घर लौटने को मन नहीं करता?''

नरहरि ने कहा, ''नहीं हुजूर! आप की सेवा में तो अनेक लोग जा रहे हैं। वहां गढ़ में तो हुजूर को नौकर-चाकरों की कमी न रहेगी। मैं स्टेशन पर सामान पहुंचाकर रुखसत होना चाह रहा हूं।... मैं उस जलती आग में और लौटना नहीं चाहता। जंगल की आग अभी अभी बुझी है। कब जल उठेगी?... पहाड़-दर-पहाड़ फैल जायेगी। उसका कोई ठिकाना है, हुजूर!''

नरहरि को डरा हुआ देख राजा-रानी दोनों हंस पड़े। उनके घर लौटने की खुशी में नरहरि की कापुरुषता ने जोरदार रसद जुगा दी।

राजा ने कहा, ''हम सब जा रहे हैं, तुममें अकेली जान के प्रति इतनी माया-ममता क्यों?''

नरहरि ने कहा, ''हुजूर, आप बड़े आदमी हैं। आप के आगे-पीछे सिपाही-सेना जायेगी। आप घोड़ागाड़ी में घूमेंगे। मैं गरीब बेचारा हाट-बाजार, खेत-खलिहान, वन-जंगल, पहाड़-पर्वत में मारा मारा फिरूंगा। प्रजामंडल वाले अब की बार मुझे नहीं छोड़ेंगे। हुजूर का खास आदमी जानकर जरूर जान ले लेंगे।''

राजा-रानी ने फिर एक बार ठहाका लगाया।

नरहरि ने सामान ले जाने के लिए गाड़ी किराये पर की। उसने किराया दिया, चाबी सुपुर्द की, फिर स्टेशन की ओर चल पड़ा। रह गया कुत्ता-- उस बेचारे की याद, इस वापसी की मौज-मस्ती, हो-हल्ले, बाजे-गाजे में किसी को नहीं रही।

कुछ दूर जाने के बाद बस्ती के मजदूर संघ का कार्यकर्ता माखन पीछे से दौड़ा दौड़ा हांफता हुआ आया। नरहरि के हाथ में एक लिफाफा बढ़ा दिया।

नरहरि के सारे गुप्त कागज-पत्र इसी माखन के नाम से आते हैं।

नरहरि ने लिफाफा खोलकर देखा। एक और लिफाफे में बंद है चिट्ठी। घबराकर उसने लिफाफा खोला। प्रजामंडल के मंत्री ने लिखा है--

''तुम्हारा पत्र पाकर सारे समाचार जाने। राजा लौट रहे हैं, यह जानकर प्रजा के मन में विद्रोह की आग सुलग उठी है। किस दिन, किस गाड़ी से वे आ रहे हैं, तार देना। स्टेशन पर काले झंडे दिखाने और विद्रोह में जुलूस निकालने की व्यवस्था करेंगे। जनमत राजा के लौटने का घोर विरोधी है।

तुमने पिछले चार बरस से नाना दुख, कष्ट सहकर, यातना के बीच रहकर अपना कर्त्तव्य किया, प्रजामंडल का कार्य करते रहे, यह हर साथी और देशभक्त के लिए गौरव की बात है। तुमने लिखा है--तुम प्रजामंडल के आदमी हो। यह बात दो-चार चोटी के नेता ही जानते हैं। बाकी सारी दुनिया जानती है कि तुम राजा के विश्वस्त नौकर हो। अतः घर लौटने के बाद तुम खतरे में पड़ सकते हो। मेरे मत में तुम्हारा गढ़ न लौटना ही उचित होगा। कलकत्ता में हमारे राज्य के काफी लोग हैं, वहां उनके मन में हिम्मत और साहस लाने का प्रयास करो। प्रजाशक्ति की जय निश्चित है।

तुम ने लिखा है कि चार वर्षों में उनके संपर्क में जाने के बाद राजा-रानी के जीवन का ज्वार-भाटा देखते देखते तुम्हारे मन में उनके प्रति व्यक्तिगत रूप में ममता बढ़ गयी है। व्यक्ति के रूप में आदमी आदमी को चाहे, यह तो एक स्वाभाविक बात है। तुम्हारे मन का भाव हर प्रजामंडल के आदमी का भाव होना चाहिए। व्यक्तिगत रूप में हम राजा-रानी के सुख-शांति की कामना करते हैं।

वे बाहर या राज्य में अन्य आदमियों की तरह सुख-शांति से रहें। इसमें किसी का कुछ नहीं बिगड़ता। परंतु शासन अंततः जनता के हाथ में आयेगा, यह ध्रुव सत्य है। हम प्रजा का शासन चाहते हैं। शायद फिर लड़ाई की जरूरत पड़ेगी। तैयार रहना।

तुम्हारे सहकर्मी.....''

नरहरि ने माखन के हाथ में पांच का नोट बढ़ा दिया, जेब से तार का फार्म निकालकर कुछ कहा और जल्दी से तारघर में देने की ताकीद कर दी। नरहरि के कहे मुताबिक माखन के अंग्रेजी में लिखे तार का मजमून था--

''पिता आज पैसेंजर से आ रहे हैं। स्टेशन पर आकर स्वागत का बंदोबस्त करो--सुधाकर।''

माखन ने पूछा--''तेरा नाम क्या सुधाकर है?''

नरहरि ने कहा, ''प्रजामंडल के कागज में मेरा नाम सुधाकर ही है। यह मेरा सरकारी नाम है।'' वह हंस पड़ा।

स्टेशन पर भारी भीड़ थी। राजा और रानी अपने फर्स्ट क्लास वाले रिजर्व डिब्बे में बैठ गये। बाकी लोग सब अपनी जगह ढूंढने में लग गये।

वह कुत्ता भी नरहरि के साथ कब स्टेशन आ गया है, इस ओर किसी की नजर ही नहीं गयी। वह हांफ रहा था, बीच बीच में पूंछ हिलाकर कूं...कूं कर रहा था जैसे कुछ कह रहा हो।

नरहरि ने वजन कराकर सामान चढ़ा दिया। आकर राजा-रानी को बता दिया। झुककर प्रणाम किया और उनसे विदा ली।

नरहरि सीधा हावड़ा पुल पारकर दाहिनी ओर बढ़ गया।

सिर्फ वह कुत्ता प्लेटफार्म पर खड़ा, चलती गाड़ी की ओर देखता इधर-उधर दौड़ रहा था।

बंदर

हाल ही में पेंशन पाये डिप्टी-कलक्टर पदुमचरण बाबू आज गांव की ओर जा रहे हैं। पैंतीस बरस के लंबे अर्से में गांव से उनका संपर्क न के बराबर था। हालांकि बीच बीच में वे गांव आते नहीं, सो बात नहीं थी। मगर आना, न आने के बराबर था। मेहमान की तरह जाकर एक-दो दिन रहते, भाई-बिरादरी, भतीजे-भतीजी की शादी-ब्याह में शामिल होते, लौट आते। कभी कभी स्त्री और परिवार को लेकर भी जाते। बस्ती में किसी से मिलने की या फिर किसी से मन खोलकर बात करने की फुरसत न होती। जल्दी में ही जाते और वैसी ही जल्दबाजी में लौट आते।

पांच-छह बरस पहले राजधानी में सब-डिप्टी थे, तब एक-दो बार गांव आये थे। बस कुछ घंटे रहकर चले आये। गांव में अपने रहने लायक घर नहीं बना पाये। मकान की जमीन कुछ बिस्वे हिस्से में आयी थी, वह वैसे ही खाली पड़ी रही। चंकवड़, भटकटैया वगैरह से भर गयी है जगह। कोई आसान काम है घर बनाना? खासकर उनके जैसे अकेले आदमी के लिए। घर बनाने की आशा वे एक तरह से छोड़ चुके थे। गांव कभी जाना पड़ता तो भाइयों के घर पर एक-दो दिन रहकर जल्दी ही अपनी नौकरी पर लौट आते।

कुछ दिन पहले, जब वे ग्राम विकास विभाग में थे, गांव की ओर लौटने के लिए पढ़े-लिखे युवकों को भाषण दिया करते, उपदेश दिया करते थे। 'गांव की ओर', 'गांव की धरती रही पुकार'--इस तरह के कई पोस्टर भी छपवाकर चारों ओर दीवारों पर चिपकवाये थे। विभागीय मंत्रीजी के साथ जीप में जाते समय ग्रामीण संस्कृति की महानता पर तथ्यपूर्ण चर्चा में भी भाग लिया है। मगर, दरअसल गांव के साथ उनका संबंध बस किताबी ही रहा।

पास के शहर में बस से उतरकर वे कोई चार मील रिक्शे में आयेंगे। तब जाकर गांव पहुंचेंगे। फिर बरसात के दिनों में तो मील-डेढ़ मील पैदल चलना पड़ेगा। सांझ उतर आयी। बस ने करीब आधा घंटा लेट कर दिया। शुलई गांव के पास एक पैसेंजर का कंडक्टर से झगड़ा हो गया, असबाब के किराये को लेकर। कुछ यात्री उतर रहे यात्री का समर्थन करने लगे। समस्या और भी जटिल हो गयी। पदुमचरण बाबू ने कस्बेनुमा शहर में उतरकर

रिक्शा ले लिया। खैरियत है--अब गांव पहुंच जायेंगे। उन्हें पूरा भरोसा हो गया। रिक्शेवाले से कहा--"जरा जल्दी चलो।"

शहर का चौराहा पार करते-न करते पदुमचरणजी ने देखा--उनके भाई का नौकर नटिया हाट से कुछ सामान लिये आ रहा है। उन्हें देखकर झुककर प्रणाम किया। बोला, "पदम. ...सामंतजी हैं? जुहार है, हुजूर!" पदुम बाबू ने पूछा, "हमारे घर सब ठीक तो हैं?" 'हमारे घर' शब्द कहते समय अपनी ही बात उनके कानों को कुछ अटपटी लगी, अजीब सी लगी। नटिया ने कहा--"जी हां, हुजूर! आप चलिए, सांमतजी ने एक चीज लाने की ताकीद की है, लेकर मैं पीछे पीछें आ रहा हूं।"

पदुम बाबू गांव की ओर चल पड़े। कुछ दूर आगे चलने पर देखा--ऊपरी बस्ती वाला रामा राउत बैलगाड़ी लिये जा रहा है। उसे अचानक पहचान नहीं पाये। जवानी के दिनों में देखा था जिसे, वह रामा अहीर अब बूढ़ा हो गया है। सारे दांत झड़ गये हैं। पदुम बाबू ने रिक्शे से झुककर पूछा, "क्यों, रामा भैया है?" मगर तब रामा बैलों की पूंछ मरोड़ उन्हें गाली देने में लगा था, पदुम बाबू की आवाज सुन नहीं पाया। और सुनता भी तो पहचान नहीं पाता। पदुम बाबू को याद आया--यही वो रामा अहीर है जो रामलीला में मंथरा का और सूर्पणखा का पार्ट किया करता था। मुखौटा लगाकर वह जब सूर्पणखा के वेश में नाचता तो दर्शकों में हंसी की लहर छूट जाती।

पदुम बाबू फिर अन्यमनस्क हो गये। बापू तब तक जीवित रहे होंगे। कालेज की छुट्टियों में जब वह घर आते तो खबर पाकर वे बैलगाड़ी भिजवा दिया करते थे। पदुम बाबू बस-स्टैंड पर बस से उतर सीधे बैलगाड़ी में बैठ जाते, घर पहुंच जाते। पर इधर तीस-पैंतीस बरस से गांव एक तरह से छोड़ ही दिया है। सब-कुछ बदल गया है। रास्ते वगैरह कितने सुधर गये हैं। बस, बीस मील में मील-आध मील कच्चा रास्ता रह गया है। उस नाले पर पुलिया बन ही नहीं पाती। एक बार मंत्रीजी को बुला लाते तो घूमने में ही यह काम हो जाता। मगर इतना भी गांव के लोग नहीं कर पाते। अपने बीच कलह करते करते तो दिन बीतता है, गांव की बात सोचे कौन?

पदुम बाबू ने कई बार सोचा भी--रिटायरमेंट के बाद गांव में छोटा-मोटा घर बनाकर सपरिवार रहेंगे। सरकार से लोन लेकर राजधानी में जो घर बनवाया है, उसे किराये पर उठा देंगे। मगर अगले क्षण वह विचार कहीं हवा में उड़ गया। गांव में सिर्फ रह जाने से ही तो नहीं होगा। यहां बच्चों को लेकर गुजारा कैसे करेंगे? पूर्वजों की जो दो-चार एकड़ जमीन है उससे जो धान आता है वह तो दो महीने भी नहीं चलता। उसका भी कोई भरोसा नहीं। कब बंटाईदार दबा बैठेगा, कोई ठिकाना नहीं। सुना है, गांव के चार-पांच छोकरे कम्युनिस्ट भी बन गये है। कौन जाने, कब क्या हो जाये? फिर कई बार तो गांव वाले धान-चावल गांव के बाहर जाने भी नहीं देते। बस रोक लेते हैं। उनके बच्चों के स्कूल-कालेज की पढ़ाई भी पूरी नहीं हुई। सिर्फ बड़े बेटे ने इस बार बी.एससी. कर राऊरकेला में इंजीनियरिंग

में दाखिला लिया है। बाकी चार बेटे, दो बेटियों ने अब तक स्कूल-कालेज की पढ़ाई पूरी नहीं की है। अतः राजधानी में रहने के अलावा कोई चारा नहीं।

पदुम बाबू ने खूब सोच-समझकर विचार किया है--गांव वाली एक एकड़ जमीन बेचकर उन पैसों से भुवनेश्वर वाले मकान में बाकी बची जगह पर रास्ते की तरफ दो-तीन दुकानें खड़ी कर दें। किराये के कम-से-कम डेढ़-दो सौ मिल जायेंगे। साथ में पेंशन है। गुजारा कर लेंगे। बाकी का सरकारी ऋण भी इसके साथ ही धीरे धीरे चुका देंगे।

अतः मंझले भाई पैरोचन को पहले खत लिखकर ताकीद कर दी थी कि खरीददार तय कर दो—गांव आ रहा हूं। जमीन का कोई हिसाब बैठाना है और अब गांव नजदीक आ गया है। गांव के सिरे पर बड़ा पोखर दिख रहा है। यहीं पर बच्चे कुंई तोड़ा करते हैं। दूसरी बस्ती के लड़के जागने के पहले वह और छोटा भाई त्रिलोचन (आजकल वह बालीमेला बांध पर कंट्रेक्टरी करता है, दस बरस हुए भेंट ही नहीं हुई) चले आते कंधे पर कुंई का बोझ लादे, भालकूणी पूजा के दिन मरुवा दीदी को देते। दूसरी बस्ती के छोकरे आकर देखते--पोखर खाली है? इसके लिए कितना तांक-झांक करनी पड़ती थी।

मां व पिताजी तो उन्हीं दिनों चले गये, जब वे कालेज में थे। फिर कर ली चाकरी। गांव के साथ संपर्क स्थापित करने वाली और बनी रही यही जमीन, खेत। आज उसे भी बेचने आये हैं। बाद में उनका गांव में रहेगा क्या? यहां पर परदेशी या मेहमान बन जायेंगे। उधर कीझर वाला जोहड़ सांप की केंचुल की तरह चमक रहा है, चारों ओर केवड़े के झुरमुट हैं। उधर के लंबे ताड़ पर उगेगा चांद कुछ देर में। इसी जोहड़ के किनारे के पास उनकी जमीन भी दिख रही है।

वे गांव में आ गये। बीच रास्ते पर है सपनी का घर। सपनी मां थी पिताजी की रखैल। पिताजी ने उस के लिए एक छोटा सा घर बनवा दिया था। इसी बात पर पिताजी व मां में कई बार झगड़ा-रूठना हुआ था, यह उन्हें याद है। कई बरस हुए, सपनी भी जा चुकी है उस पार। वह घर भी ढह गया है। सपनी मां रास्ते पर जाते समय बुला लेती अपने घर में। अमरूद, नारियल, गंड़ेरी वगैरह देती और नेह से माथा सहला देती। यह बात कभी घर आकर नहीं बताते। पता नहीं उन्होंने कैसे यह समझ लिया कि मां को पता लग गया तो नाराज होगी।

पदुम बाबू भैया के घर पहुंच चुके थे। पैरोचन बाबू इस गांव के अपर प्राइमरी स्कूल के मास्टर हैं। बाहर लाकर एक कुर्सी डाल दी। पदुम बाबू बैठ गये। पैरोचन बाबू ने कहा—"अमीन मुरारी मिस्सर को खबर कर दी है। कल दस बजे वे जमीन पर आयेंगे। खरीददार फकीर साहू भी होंगे। माप-जोख हो जायेगी। फिर दोनों जाकर रजिस्ट्री कर देंगे। लेन-देन की बात पहले ही तय हो चुकी है। कबला लिखने के लिए मुहर्रिर जटी कानूनगो को जमीन के नंबर वगैरह दे आये हैं। तुरंत स्टांप कागज मिल जायेगा। अतः और चिंता की कोई बात नहीं। अब हाथ-पांव धोकर विश्राम करें।"

इसके बाद फुसफुसाकर बोले, ''सावधान रहना। देखो, नकुली साहू ने पहले तो जिद पकड़ी थी कि बेचनेवाला रजिस्ट्री का आधा खर्च दे। मगर मैंने खूब समझा-बुझाकर चवन्नी पर राजी किया है। बंटाईदार दो आना मांगता है।''

पदुम बाबू ने कहा--''ठीक है। ऐसा ही कर देंगे।''

अगले दिन सुबह दस बजे पदुमचरण बाबू थोड़ा-बहुत जलपान कर नक्शा एवं फर्द वगैरह लेकर जमीन पर चले आये। साथ था बंटाईदार केलुआ। पैरोचन बाबू इन्हें जमीन पर भेज स्कूल चले गये। मगर अमीन मुरारी भैया का कोई अता-पता नहीं। देखते देखते ग्यारह बज गये। पदुम बाबू ने केलुआ को भेजा, अमीन को जल्दी से बुला लाने के लिए। आधा घंटा बाद आकर केलुआ ने बताया, ''जी, मिस्सरजी तो घर पर नहीं हैं। पड़ोस वाले गांव तराबोई गये हैं, दही-चीउड़ा खाकर। आज वहां नरीनंदजी का सिराध है। बेटों ने ब्राह्मण-भोज का आयोजन किया है। पुराने जजमान ठहरे, कैसे न जायें? घर पर कह गये हैं--दोपहर ढले सीधे खेत पर पहुंच जायेंगे।''

पदुम बाबू गुस्से में लाल हो गये। आखिर क्या करें? खेत के छोर पर आम के पेड़ के नीचे बैठ गये। जाड़ों की धूप। फागुन में ही जमीन बेचनी चाहिए, वरना फिर बंटाईदार धान की बुआई कर देंगे। फिर साल भर इंतजार करो, धान की कटाई तक। खरीददार फकीर साहू आ पहुंचे। वे भी उसी पेड़ तले पदुम बाबू के पास बैठ अमीन की प्रतीक्षा करने लगे। दोनों में गपशप होती रही। इसी में पदुम को जरा झपकी आ गयी। तौलिया बिछा वायीं करवट लेकर बांह पर सिर रखकर लेट गये। फकीर साहू और केलुआ को भी नींद आ गयी।

अचानक पदुम बाबू को लगा, उस पेड़ पर कोई बड़ा बंदर इस डाल से उस डाल पर कूद रहा है और पूरे पेड़ को हिला रहा है। उन्हें लगा, डाल टूटकर उन्हीं पर गिरेगी। आंखें मलते हुए हड़बड़ाकर उठे। केलुआ को आवाज दी। वह भी हड़बड़ाकर उठ बैठा। कहा, ''कोई बंदर बेचैन हो उछल-कूद कर रहा है। मुझे लगा, डाल टूटकर मुझ पर ही गिरेगी।''

केलुआ ने खड़े होकर चारों तरफ निगाह फिराकर कहा, ''कहां? कोई बंदर नहीं। पेड़ की ऊंची डाल पर बग-बगुली बैठे हैं। यदि बंदर कूदता तो वे वहां दोनों टिके होते?''

फकीर साहू भी तब तक उठ बैठे थे। उन्होंने भी केलुआ की बात का समर्थन किया--''बंदर तो कहीं दिखायी नहीं देता।''

''क्यों, कोई सपना देखा है, पदुम बाबू?''

पदुम बाबू ने कहा, ''नहीं नहीं, बंदर ही था। अपनी आंखों से देखा है मैंने। कहीं भाग गया होगा।''

अमीन मिस्सर कोई एक-डेढ़ बजे पहुंचे। चेन डाल जमीन मापी गयी। फकीर साहू ने कहा, ''चारों ओर चार खूंटे गाड़ो। बस फिर कोई गड़बड़ नहीं होगी। वरना पास की जमीन वाला बट बेहरा आदमी दखल के समय मीन-मेख करेगा कई तरह से।''

पदुम बाबू ने केलुआ को माटी खोदकर चार बड़े बड़े खूंटे गाड़ देने को कहा। केलुआ ने तीन तो आराम से गाड़ दिये। फिर चौथा गड्ढा खोद्रने लगा। पदुम बाबू ने घड़ी देखी। बोले, ''जरा जल्दी जल्दी हाथ चलाना, केलु! दो बज गये। तीन बजे सबरजिस्ट्रार के दफ्तर पहुंचना है। पैरोचन भी वहां पहुंचेगा। आज ही किसी तरह रजिस्ट्री कर दें। मैं सांझवाली बस से भुवनेश्वर लौट जाना चाहता हूं। उधर घर पर बच्चे हैरान होते होंगे। रजिस्ट्री के बाद मैं उसका सारा हिसाब चुका दूंगा। बाबू रे, जल्दी जल्दी हाथ चला।''

केलुआ ने डेढ़ हाथ गड्ढा खोदा। मिट्टी निकाल रहा था कि हाथ को कुछ अटका। पांव जमाकर उसने जोर लगाया और खींचा। हाथ से कसकर खींचा--देखा तो कोई बंदर है बड़ा-सा, कंकाल है। केलुआ ने खींचकर माटी पर पटक दिया।

पदुम बाबू 'रे....रे' कहते पीछे हट गये। जाकर पेड़ तले बैठ गये। माथे पर हाथ रखे बैठे रहे। कुछ देर तक बोल नहीं सके। केलुआ ने मजबूती से खूंटा गाड़ दिया। पोखर में हाथ-पांव धो आया। ''चलें, सामंतजी?''

मगर पदुम बाबू चुप। निस्पंद। कुछ देर बाद बोले, ''हमारे पुरोहित सनातन मिस्सर कहां गये? उन्हें बुला लाओ तो।''

फकीर साहू ने कहा, ''सनातन मिस्सर से क्या काम है? वे तो दो बरस हुए जा चुके हैं।''

''ऐं, मर गये? क्या हुआ था?''

''होगा और क्या, बुढ़ापा? बीमार हो गये थे। शरीर तो वैसे भी रोग का घर होता है।''

''बूढ़े हो गये थे?'' पदुम बाबू चौंक गये थे। वे तो मेरे ही साथ खेलते-कूदते थे। वे बूढ़े कैसे हुए? फिर उन्होंने अपनी ओर देखा, ''हां, मैं भी अट्ठावन पार कर चुका हूं। सनातन मिस्सर तो मुझ से दो बरस बड़े थे। तो फिर साठ पार कर गये थे वे। कलि में साठा सो पाठा।''

पदुम बाबू को याद आया--पैंतालीस बरस पहले एक दिन वे और सनातन मिस्सर दोनों, बंदरों को हुड़का रहे थे। तब उनके बाप पुरोहित थे। साथ में उनका कुत्ता, कालिया था।

दो बंदर पोखर के पास अमराई में पेड़ पर आपस में खेल रहे थे। सनातन ने एक पत्थर उठाकर दे मारा। एक के गाल पर निशाना जा लगा। उन्होंने खुद भी एक ढेला फेंका, वह दूसरे की पीठ पर जा लगा।

दोनों विकल हो नीचे उतरे और भागने लगे जान बचाकर। कालिया ने दौड़कर एक का टेंटुआ दबोच लिया। सनातन के साथ जाकर खींचते हुए ले गये पोखर के किनारे। मुंह पर पानी छींटा। पर वह बच नहीं सका। इसके बाद दोनों ने अपराधी की तरह उसे ले जाकर भरी दुपहर में खेत में एक ओर गड्ढा खोद गाड़ दिया। किसी से कुछ नहीं कहा,

चुपचाप अपने अपने घर लौट गये।

कुछ दूर जाकर देखा, मुड़कर--उसी डाल पर बैठा दूसरा बंदर उस गड्ढे की तरफ देख रहा है। बीच बीच में इस पेड़ से उस पेड़ पर कूद रहा है। सनातन का हाथ पकड़ वे चोर की तरह चुपचाप घर आ गये।

पदुम बाबू का चेहरा स्याह पड़ गया है। उन्हें लगा, बहुत दिन पुरानी स्मृति जैसे कंकाल की तरह मिट्टी के नीचे से निकल आयी है। और चारों ओर पांव फैलाकर सामने खड़ी हो उनकी ओर देख रही है, हल्के हल्के मुस्कुराकर कुछ कहना चाहती है। वे कुछ बोल नहीं पाये।

फकीर साहू ने कहा, "चला जाये? देर हो गयी।"

पदुम बाबू ने कनखियों से देखा। घड़ी देखकर बोले, "रहने दें। दो से ज्यादा बज गये। मैं आज लौट जाता हूं। फिर कभी आने पर देखा जायेगा।" अमीन और केलुआ के हाथ में उनका प्राप्य पांच-पांच के नोट बढ़ा दिये। और फिर सीधे घर की ओर चल पड़े।

गोह

बांके-टेढ़े रास्ते होते हुए चले जा रहे हैं। कोई उद्वेग नहीं, जल्दी नहीं। सूर्य देवता डूबने को आये। कुछ देर बाद पहाड़ी की चोटी के पीछे टप से डूब जायेंगे। माथे पर से ताड़-पत्र का छाता और हाथ से तूंबी-कमंडल तथा लाठी नीचे रख दिया। पास के पोखर में हाथ-पांव धोकर सूर्य देवता की पूजा-अर्चना की। फिर कंधे से लटकती झोली में से अल्मुनियम की कटोरी निकाली। कुछ चिवड़ा-चीनी मिलाकर भिगोये। दो मुट्ठी खाकर कमंडल से दो अंजुरी पानी पीया। चलने को उठ खड़े हुए। एक वल्कल पहने हुए थे और छाती पर लपेटे हुए थे एक गेरुआ कपड़ा और एक फटा कंबल। लोग उन्हें कहते थे धुलिया बाबा। उन की तांबई देह पर सफेद रोंएं, सफेद दाढ़ी-मूंछ के साथ सफेद जटा सूरज की लाली में चमचमा रही थी। लग रहा था जैसे अकेले सेमल पर हवा में उड़कर रूई के फाहे जम गये हैं।

कुछ दूर पर आ रहा था अनादि। तारपुर हाट के महाजन का सौदा-सुलफ करके लौट रहा था। अलेख गुसांई[1] को देख संकोच में खड़ा रह गया। उनका सौम्य-शांत चेहरा और उदार मुखमंडल सचमुच जैसे किसी अखंड ज्योति को छुपाये है। अनादि ने सोचा--ये ही वे गुरु ब्रह्म हैं, जिन्हें इतने दिन से सोते-जागते ढूंढता रहा है।

अनादि ने आगे बढ़कर बाबा को साष्टांग प्रणाम किया। अपना परिचय दिया। पूछा--"किस ओर पधार रहे हैं।" बाबा ने कहा--"अगले गांव के शिव मंदिर में रात भर टिक जायेंगे। सुबह उठकर कहीं आगे जाना होगा।" अनादि भी उसी गांव का है। उस ने हाथ जोड़ गुरु गुसांई से अपनी सेवा ग्रहण करने की विनती की। बाबा ने पकी दाढ़ी में से मुस्कुराकर 'हां' भर दी।

दोनों चले जा रहे हैं पहाड़ी राह पर। कभी बाबा अंधेरे में पेड़ की छांह में छिप जाते हैं, कभी फिर टिमटिमाते तारों के उजाले में अनादि के आगे झलक उठते हैं। छाया की तरह अनादि पीछे पीछे चल रहा है। अरखपुर पहुंचकर बाबा सीधे शिव मंदिर की ओर चल पड़े। अनादि ने महाजन का सौदा उसकी दुकान पर पहुंचा दिया। सीधा मंदिर जा पहुंचा। एक चटाई लाकर बाबा के बैठने व सोने की व्यवस्था कर दी। कुंए से पानी लाकर

---

1. निराकारवादी एक संप्रदाय और उसके संन्यासी।

बाबा के चरण धोये। वह जानता है, बाबा रात में कुछ भी नहीं खायेंगे। कुछ देर बातचीत के बाद वह घर लौटा।

अनादि को लगा, कई दिन का सपना आज पूर्वजन्म के पुण्य से सार्थक हुआ। सब उन गुरु की दया है। कई गांवों में वह बोलता आया है--अलेख पीठ पर, औरों के साथ भजन। भीम भाई रचित गुरु के प्रति प्राणस्पर्शी आतुर क्रंदन--

केहि देखिछ कि बेनि नेत्र रे!
अतिथि वेश रे - वृद्ध बयसरे, गुरु जाउ थिले एहि दांडरे
माता-पिता नाहिं जनम हेले, स्तन न चोबाई खीर खाइ ले
बापधन बोलि गेल करु थिलि, गुरु बोसिथिले मोर कोल रे!

(किसी ने अपनी आंखों देखा है--अतिथि-वेश, वृद्ध वेश में गुरु इसी द्वार से जा रहे थे। माता-पिता न थे, जन्म लिया। स्तन-पान किये बिना दूध पीया। बेटा बेटा कहकर स्नेह किया। गुरु मेरी गोद में बैठे थे।)

इसके बाद उन गुरु को समूचे ब्रह्मांड में खोजा। कहीं उन का अता-पता नहीं मिला। मगर गुरु आये हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। अनादि सोचा करता है--गुरु वृद्ध-ब्राह्मण के वेश में आते तो वह उन्हें जकड़ नहीं लेता। उन्हें गोद में बिठाकर बार बार चुंबन देता, उनकी सफेद काया में मिलकर लीन हो जाता। गुरु-प्रेम में मतवाला होकर गाता---

सर्व शुभे जेबे भेंट पाआंति कोले धरि मुंखे चुंब दिअंति।
भणे भीमसेन पामर अज्ञान, तांकु खोजुछि ब्रह्मांड जाकर।

(सर्वमंगल से भेंट हो पाती तो गोद में लेकर चुंबन देता। पामर अज्ञानी भीमसेन कहता है--उन्हें सारे ब्रह्मांड में ढूंढ रहा हूं।)

अनादि को लगा, जरूर ये ही वे गुरु हैं। इस भव-सागर से पार होने का यही बेड़ा है। क्या है इस संसार में? झूठी माया है। कोई किसी का नहीं। सब सूखा खंखड़ है। आकर चौथापन पहुंच गया। रोग पैदा होंगे; कफ, सन्निपात, पित्त, संधिवात आदि गले में खड़खड़ाते सुनाई देंगे। पिंड से छूट जायेंगे। भाई, बंधु, कुटुंबी सब बड़े बड़े लक्कड़ लाद देंगे। दसवें दिन दसवां, ग्यारहवें दिन षट्रस नाना व्यंजन, खीर, मिठाई खायेंगे। गुरु ही उसे शब्द से अशब्द, जपा से अजपा का भेद बता देंगे। वे ही चारों युग में नर-रूप में खेलते हैं।

चारि जुगे नर अंगे खेलुछंति भक्त संगे।
शून्य बोलि जेउं शब्द सूत्र करि घटे संपाद।
कहंता बहंता ए दुइ मध्यरे, बिराजि ब्रह्म सेठारे
अलेख नाम अलेख, अशेष लक्षणे लक्षित लेख अण लेख।

(चारों युगों में नर-देह में भक्त के साथ वे खेलते हैं। शून्य नामक शब्द के

सूत्र से इस घट को रखते हैं। ब्रह्म इसी में विराजमान हैं। अलेख उनका नाम है, अगणित लक्षणों से वे लक्षित होते हैं।)

इस शरीर में देखें।.... (बोले व भीम कंध गुरु पदार बिंद कर पत्र जोड़ि मागे।)

अनादि इन भजनों से ज्यादा कुछ अर्थ नहीं समझ पाता। यों कह सकते हैं कि जितना वह समझता है, उससे अधिक अबूझ रह जाता है। अनेक भजन, प्रार्थना, चौपदे उसे याद हैं। अलेख पीठ पर बिना किताब-कागज देखे वह अनायास बोल पाता है। वह जीवन अथवा दुनिया के साथ अपना तालमेल बिठा ही नहीं पाता कभी। सोचता है--आदमी का जीवन पानी का बुलबुला है। 'केते दिन कु मन बांधिछु आंट' (रे मन, कितने दिन के लिए यह रूठना है?)।

किसी दिन ऊपर काल-रूपी बाज एक झपट्टा मारेगा, सब कुछ समाप्त हो जायेगा। दीनकृष्ण गुसांई के भजन में से एक-आध पढ़ता है--

बाइ मन मनकु बुझ।
धन दारा सुत आबोरि रहिछु घेनि जिबे तोते खंट परजा।
रजक जे नेब पालटा बसन संग छाड़ि जिब घर भारिजा।
दस द्वारे दश कबाट लागिछि एक किलिणिकि पड़िछि खोजा।
किलिणि फिटिले कबाट बंधु कुटुंबकु तोर कह जा।

(रे मन, खुद को पहचान। धन, स्त्री, सुत जितने घेरे हैं, प्रजा-सहित सब तुझे ले जायेंगे। धोबी तेरे बदले हुए कपड़े ले जायेगा, भार्या तुझे छोड़ चली जायेगी। दस दरवाजों पर दस किवाड़ हैं, एक कुंडी की खोज चल रही है। कुंडी खुली तो किवाड़ खुलेंगे--सबको जाकर बता दे.... ।)

वह जोरंदा पीठ[1] गया था। महिमा गोसांई अवधूत बाबा ने शरीर-भेद संबंधी भजन सुनाया था। अच्युत गोसांई और यशोवंत गोसांई के भजन उसे कंठस्थ हैं--

मन हो बसि हंस कु खेला, हंस उड़िगले बुड़िब भेला।
शुखिला पोखारी मोर लहूड़ि, डिंब ओछि हुआ गलाणि उड़ि।
डिंब गोटिके तिनि तिनि छुआ, सुज्ञानी होइले कहिबु ऐहा।
पोखरि खोलिले चारि चौकस, डिंब पारी गोला अंडिरा हंस।
सर्पकु मंडुकी-करुछि गेल, जुई वृक्षे अछि मंदार फुल।
नअ द्वारकुर नअ कबाट, के उंठारे अछि कलप बट।
गीत छअपद अर्थ बहुत, भाबरे भणिले दीन अच्युत।

(अरे मन! हंस से खेला। हंस उड़ गया तो बेड़ा डूबा। सूखे पोखरे में लहरें

---

1. महिमा धर्मावलम्बियों का महान पीठस्थल है ढेंकानाल जिले के जोंरदा गांव में।

हिलोर ले रही हैं, अंडों से निकल बच्चे उड़ गये। पोखर खाली था, उसमें हंस अंडे दे गया। सर्प से मेंढकी लाड़ कर रही है। जूही के ऊपर मंदार के फूल लगे हैं। नौ द्वारों में नौ किवाड़ हैं। कहां है कल्प-बट? गीत में छह पद हैं, पर अर्थ बहुत हैं। भाव में अच्युत कह रहे हैं।)

इन पदों का क्या अर्थ है, अनादि समझ नहीं पाता। फिर भी लगता है, वह बहुत कुछ समझ गया है। क्या वह यशोवंत गुसांई का भजन नहीं जानता--

पड़िछि बंध त्रिवेणी घाटे, बंध फुटि पाणि बहुछि आंटे।
बंध आयतन बार योजन, जेबे बंधाइले न हेला टाण।
बंध पड़िछि मेरु कु लागि, बंध तले बक बसिछि जगि।
पांच पधान पचास मुलिया, जेते बंधाइले पड़े गलिया।
कहे यशोवंत बंध ओजाणि, मन सिन बंध पवन पाणि।

(त्रिवेणी घाट पर बांध है। बांध टूटकर पानी वह रहा है। बांध का आयतन बारह योजन है। जब उसे बांधा तब मजबूत था। बांध मेरू से सटा है। बांध के नीचे वगुला ताक में बैठा है। पांच प्रधान और पचास मजदूर हैं।)

महाजन का काम-धाम करके अनादि रोज पास के गांव में अलेख टुंगी में जाया करता है। वहां जमा होते हैं कितने ही भक्त। खंजड़ी की थाप पर भजन करते हैं देर तक। खजंड़ी की उसी ताल पर प्रश्न और फिर उत्तर देना चलता है।

भजन तो अनादि को सैकड़ों कंठस्थ हैं। महाजन से रोज गाली-गलौज सुननी पड़ती है अनादि को। सौदे को ठीक से तौलना वह नहीं जानता। बुरे को भला बताना नहीं आता। पैसे की वसूली में वह बेकार है। मिलावटी तेल को खांटी बताकर ग्राहकों के मन में विश्वास पैदा नहीं कर सकता। चोकर मिला आटा बाजार में बेचने में असमर्थ है। इतनी सारी कमियों के बावजूद महाजन उसे छोड़ नहीं पाता, क्योंकि आज के जमाने में उस जैसा सच्चा मजूर पाना मुश्किल है।

वह अगले दिन अनादि बाबा के पास हाजिर हुआ। नित्यकर्म के बाद बाबा जप पर बैठे थे। अनादि ने प्रणाम कर उन्हें तरह तरह की चीजें--पूरी, मालपुआ, नारियल की मिठाई, कोरा आदि भेंट में उनके सामने रखीं। बाबा ने तृप्त होकर ग्रहण किया। अनादि ने चरण पकड़ दो-तीन महीने गांव में रुकने का आग्रह किया।....

धीरे धीरे बाबा का नाम चारों ओर फैल गया। कई भक्त आने लगे। दूर दूर से फरियादी आने लगे। किसी को रोग है, आ पहुंचा। खुद महाजन भिखारीराम हाथ में सीधे से भरी पीतल की थाली लेकर हाजिर हुए।

बाबा सबको स्मित हास में आश्वासन देते, सांत्वना देते। प्रभु जगन्नाथ की कृपा की बात कहते। कहते--

महा नित्ये खेल देख जंबू द्वीप हे
शरीरार्थ प्रकाशित बाह्य रूपे हे।

X X

भणे भीमसेन भोई, समस्ते पाज्ञबे नाइं
सद्ज्ञान मुक्तपथ गुरु मुखे हे!

(जंबू द्वीप में महानित्य क्रीड़ा देखो। शरीर से बाह्य रूप प्रकट हो रहा है।...भीम भोइ कहते हैं--इसे सब नहीं जान पाते। गुरुमुख से सद्ज्ञान पाना जरूरी है।)

बाबा सबको धीरज बंधाते, कहते--वे ही हैं खंडपति, वे ही हैं जगपति जगन्नाथ, वे आकार हैं, निराकार-अणाकार हैं। वे सगुण भी हैं, निर्गुण भी। वे अजपा हैं और जपा भी। वे निर्झर हैं और वे ही झरझर हैं। ज्योति और अज्योति हैं--

संज्योति तेज तोर, नाहि देउछि धरा
अज्योति ब्रह्म तहीं खेलुछि हे।
रूप प्राय दिशुछि अरुपे बिहरुछि
अदृप्टि अस्थानेर बसिछि हे।
अव्यक्त होइछि वचन न कहुछि
कृपामय शरीर बहिछि हे।
निर्झररु झरुछि झरझर बहुछि
भणिले भीम कंध से जेउं पूर्णनंद
पदार बिंदु पद झरुछि हे।

बाबा भजन गाते हैं--

लागि आछि ब्रह्म अग्नि अलेख कुंडे
धाप हेउ अछि एकोइश ब्रह्मांडे... (कहे भीमसेन भोइ)
अनादि आउ आउ भक्तमाने पालि धरि गांति...
ठुल शून्यधरकु कर विवेक
निशबद भुवन, घु घु नाद गर्जन अगाध सागर
नाहिं तहिं नीर पूरि रहि अछि हृद पंक।
एकाक्षर निर्वेद, सरि आसुछि पद
भणे भीमसेन भोइ मुरुख।

(शून्य घर में विवेक को एकत्र करो। निःशब्द भुवन, धू धू नाद अगाध सागर है। वहां नीर नहीं है, हृदय पंक से भरपूर है। एकाक्षर निर्वेद है। पद समाप्त हो रहा है, भीमसेन भोइ मूरख गा रहा है।)

इसके बाद तत्व की व्याख्या चलती। ध्यान लगा है भ्रमर गुफा में, युग्म अर्गला के बीच भ्रमर सुख से लीला कर रहा है--

लेउट पवन पालटि बोहुछि सूचि मुने तार बाट।
तिल चोपा प्राय कबाट लागिछि तले मत्तागज थाट।
हंस घरे हंस हंसुली अछंति दुहें दुहिंकि अदृश्य।
कहइ मोहन गुरु सेवा कले अदृश्य होइब दृश्य।

(उलटा पवन बह रहा है, सूई के छेद से उसकी राह है। तिल के छिलके जैसे कपाट लगे हैं। मत्तगजों का झुंड चल रहा है। हंस के घर हंस-हंसिनि हैं। दोनों एक-दूसरे के लिए अदृश्य हैं। मोहन कहते हैं कि गुरु-सेवा से अदृश्य दृश्य हो जाता है।)

एक बूढ़े भक्त ने पूछा--"ये मोहन कौन हैं? बचपन में सुना था, जलौंका में रहते थे। अब कहते हैं, खंडगिरि गुफा में अनंत के साथ गोपन में रहते हैं।"

फिर चलता खंजड़ी भजन--

भज मन कला कन्हाइ
भजिले ए दुख रहिब नाहिं।
निशबद घरे शबद शुभुछि
अणाकार अछि आकार होई?

(रे मन, सांवरे कन्हाई का भजन कर। उनके भजन पर यह दुख नहीं रहेगा। निशब्द घर में शब्द सुनायी दे रहा है। अणाकार ही आकार होकर छाया हुआ है।)

तदनंतर चलता रहता है शरीर-भेद--

आरे भज मन, भजि पारिले पाइबु दरशन।
त्रिवेणी बहुछि तिनिधार, बहंता नईकि थयकर।
बंकुनाले पशि उठिब, उजाणि उड़िजिब तोर हंसा घर।

(रे मन, रुक; उन का भजन कर पाये तो दर्शन कर पायेगा। त्रिवेणी तीन धार हो बह रही है। बहती नदी में धीरज से बंकनाड़ में प्रवेश कर... फिर हंसा घर उड़ जायेगा।)

बाबा समझा देते--वह अणाकार (निराकारी) ब्रह्म ही है ईश्वर। वह शून्य पुरुष है। मगर उनके रूप, अरूप--दो रूप हैं। अदेखे को देखना सार है, अमापे को मापने से पार हो जाओगे। अनचीन्हा को चीन्हाकर भज ले अरूप को। भीम भोई हीन दास कहता है--'अवना मंडल में प्रवेश करो, उसमें मन का निवेश कर शून्य शिखर हो उठो।'

वे ही स्थिति हैं। वे ही अस्थिति हैं। भीम भोई ने ही तो कहा है--स्थिति बस्ती में न थी। कहां अंदर रह गयी? जो उनसे भेंट करा दे, जाकर उनके चरण पकड़ ले।

फिर बाबा आधे अर्धनिमीलित होकर गाते--

अनंत खजणी बाजे ब्रह्मांड उछुलि गो,
ग्रह ग्रह निरंतरे महा नित्यर मंडली गो।

(ब्रह्मांड को उच्छरित कर अनंत में खंजड़ी बजा रहा है। ग्रह-नक्षत्र निरंतर उस महानित्य की मंडली हैं।)

अंत में सिद्ध-पुरुष भीम कंथ ने गाया--

निअइ इठा पाद, निष्काम निर्वेद कल्पना कर धर पादपद्‌म
न बांधा दर्शन कराअ प्रसन्न, आशा भरसा न देइ हे।

(निअइठा (जो जूठा नहीं) चरण हैं। निष्कर्म, निर्वेद कल्पना न करो, कमल-चरण को थाम लो। बांधा दिखाकर प्रसन्न न करो। आशा-भरोसा भी न दो।)

उस दिन अच्युत गोसांई की जन्म-तिथि थी। धूनी जोरों पर थी। भजन चल रहे थे। दीप में तेल भरा जा रहा था। मंडली में चिलम फिर रही थी। मुट्‌ठी लेकर एक खींचता, दूसरे को फिर बढ़ा देता दम लेकर। सबकी आंखें लाल। संसार शून्य मंडल सा दिख रहा था। उसी में लाल आंखें निकाल बाबा समझा रहे थे, तीन नाड़ी का रहस्य--इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना में पवन की गति। कैसे उसे अर्थ बतायेंगे? वही है त्रिवेणी घाट, वहीं सोया है अहि। उसे तालु से उठाना होगा, ब्रह्मरंध्र में प्रवेश करना होगा--तब जाकर है मुक्ति।

तभी एक प्रश्न छेड़ता खंजड़ी पर। उत्तर भी खंजड़ी पर। खंजड़ी पूछती खंजड़ी से--कहां जनमी खंजड़ी? कहां था जिसने उसे गढ़ा? उस की दीर्घता, मोटाई कितनी? घनी कितनी? कौन सी चमड़ी से मंढ़ी है? गोह के चर्म से बनी बताते हैं। बोलो, क्या गोह के दो जीभ हैं? अंत में गोह पर ताल पूरी होती--

गोधि जाति है केउं ठांरू हेला उत्पत्ति हे।
किपांइ जे सर्व ठारे पूजा से पाइला
देवता अलये सेहु किपांइ बाजिला
केउं मंत्र हे! केमंत से होइला पवित्र हे।

(गोह, तेरी उत्पत्ति कैसे हुई? सर्वत्र पूजा क्यों होती है? देवालय में क्यों बजती है? तेरा कौन सा मंत्र है, तू कैसे पवित्र हुई?)

खंजड़ी का उत्तर--एक दिन ईश्वर घोर वन में गये। वैशाख शुक्ल पंचमी थी। ईश्वर ने भांडीर वन में केलि की। वहां आम-जामुन ने ईश्वर-लीला देखी। पेड़ पल्लवित हुए। ब्रह्मा आदि ने ईश्वर-लीला देखनी चाही, स्तुति की। हरि-स्मरण से ईश्वर को होश आया।

तृतीय नेत्र से देखा और हुताशन में वन-लता जल गये। एक वृक्ष देवताओं के पास रहने के कारण बच गया। उसे देवदारू नाम दिया। फिर यती ने त्रिशूल निकाल उसे मूल से छेद किया। चौबीस अंगुली मूल में रखा। बारह अंगुली बीच में से काटा। शिव ने डिंडिम बनायी एक खंड से। अन्य खंड से सबने मिलकर यंत्र बनाया। किस चर्म से मढ़ाई हों? यह ईश्वर से पूछा तो वे बोले--गोथि चर्म से छावनी बनाओ। गोथी का जन्म गंगा से हुआ—

ईश्वर कहिले क्या शुण मन देइ
गंगारु गोथि जनम हेला कमंताइ।
एक दिन से अजगर आसिण से स्थाने हे
गंगा रे पड़िण अजगर भासिजांति।
कुंभीर गोटिए आसि मिलला अग्रते जे
अजगर कु गिलिबा पांइं हे।
ऊर्ध्व मुख होई अजगर भासिगला
कुंभीर पृष्ठ उपरे चढ़िण बसिला।
कुंभीर जे अजगर पीरति होइला।
कुंभीर उदरू गोध जनम होइला, एणुकरि हे
दुइगोटि जिह्वा जे ताहारि हे।

(ईश्वर कहते हैं--ध्यान से सुनो कि गंगा से गोह का जन्म कैसे हुआ। एक दिन अजगर उस स्थान पर था। गंगा में अजगर तैरता जा रहा था। आगे मगरमच्छ मिला। अजगर को निगलने मगरमच्छ आगे तैर गया। अजगर मगरमच्छ की पीठ पर चढ़कर बैठ गया। मगरमच्छ और अजगर में प्रीति हो गयी। मगरमच्छ के उदर से फिर गोह का जन्म हुआ। इस प्रकार उसके दो जीभ हैं। गोह बहकर खारे जल में मिला, उसे खारा जल अच्छा नहीं लगा। अतः किनारे पर विल बनाकर रहा। हरि भोइ उसे ढूंढता आया और मार डाला।)

हरि भोइ खोजि गोधि गोटिए आणिला
काति नेइ गोथि चर्म छालि पकाइला
खोले नेइ हे, कृपिथ वृक्षर क्षीर देइ हे।
हरि नाम महामंत्र उच्चारण कला
पवित्र करिण हरि नाम उच्चारिला हे
गायन हे, करते बाजिला घन घन हे।

तभी दो कोस पर करमल गांव से एक भक्त पाणुआ भोइ हांफता हांफता आया। सबको चौंकाकर कहने लगा--"जी....जी...! हमारे गांव में दो बाबाजी को पीट-पीटकर लहू-लुहान कर डाला है। एक तो जीयेगा भी या नहीं, पता नहीं। पुलिस आकर जोरों से जांच कर

रही है। कुछ गांव वालों की धर-पकड़ हो रही है।"

"क्या, बात क्या है?" सबने एक साथ पूछा।

पाणुआ बोला--"जी, नराज के पास वो पुल बन रहा है। वहां बलि देने के लिए दो छोकरों को कोई फूल सूंघा दिया और पकड़कर ले गये थे। एक को जंगल में छिपाकर रखा था। आज एक की बलि देते। गांववालों को पता चला तो अपने बच्चों को छुड़ाकर लाये हैं। दोनों बाबाजी को पकड़े हैं।"

उस दिन हड़बड़ी में भजन समाप्त करके सब अपने अपने घर लौट गये।

दो-तीन दिन बाद तरह तरह की अफवाहें फैल गयीं। किसी ने कहा--"वो पुल का कंट्रैक्टर कोई पंजाबी है। इन बाबाजी को भेजकर दोनों बच्चों को पकड़ मंगवाया, बलि के लिए।" किसी ने कहा--"आसाम में चाय-बागान में कुली ठेकेदार आसाम चालान करने के लिए बाबाजी के जरिये बच्चों को मंगवाता है।" किसी ने कहा--"मां-बाप जान-बूझकर बच्चों को बेच देते हैं, मोटी रकम के लोभ में...।"

कुछ दिन बाद एक लड़का अलखपुर से गायब हो गया। सब की तेज निगाहें बाबाजी पर। वह 14-15 वर्ष का लड़का, चार-छह दिन पहले आलेख टूंगी आया था, अपने बापू के साथ भजन सुनने। बाबा उद्विग्न हो उठे। चेहरे पर से स्मितहास मिट रहा है। सफेद दाढ़ी में से वह मुस्कान नहीं दिखती।

भोर से हो-हल्ला हो गया--बाबा आश्रम में नहीं है। उनकी चीजें, झोला, ताड़ का छाता, कमंडलु--कुछ नहीं। अनादि ने आकर देखा, बाबा नहीं हैं। सिर पर हाथ रखकर बैठ गया। गांववाले बाबा के गुण सुमिर कर बिसूरने लगे। कोई कोई रो पड़ा। हंडी में बासी पखाल[1] वैसे-के-वैसे रखे हैं। बाबा भूखे पेट चले गये!

सांझ तक निधि जेना ने आकर खबर दी--"बाबा को सात कोस पर सरधापुर में देखा है। मुंह सुखाये अकेले जा रहे थे। कंधे पर झोली में कुछ कपड़े और वह सहारे की लाठी थी। दूर से देखा तो लगा जैसे कोई गोह बैठी है...।"

निधि की बात सुन सब हाय हाय कर उठे!

कुछ दिन बाद लोगों में चर्चा चली--बाबा लोचना को गोह बनाकर ले गये हैं, मंत्र के बल से। खंजड़ी बनायेंगे।

---

1. पानी वाला भात।

पंडितजी की मृत्यु

पोथल गांव के पंडित विश्वम्भर नंद की अपनी मृत्यु के बारे में एक स्पष्ट धारणा है। वे कब मरे, कहां मरे और उस समय आर्द्रा या मूल नक्षत्र कितनी घड़ी, कितने पल भोग हो चुका था--ये सारी बातें उनकी जुबान पर थीं। गांववालों को सुना-सुनाकर कहा करते--इतना बड़ा गांव है, कोई एक भी उन्हें नहीं बचा सका। उसी सातगछा झुरमुट के पास, बांके नाले के किनारे किसी ने दबोच लिया उन्हें। कितना पुकारा उन्होंने, किसी ने सुना ही नहीं। गावदी बेटा था, कुछ कर पाया? फिर कहने लगते हैं कि उस दिन क्या तिथि थी, क्या वार था, चंद्र शुद्ध था या नहीं, घात चंद्र कितनी घड़ी भोग हो चुका था और कितना बाकी था, शनि चतुर्थ में था या नहीं...इत्यादि बातें। कहते--वह दिन था मंगसिर सदी द्वादशी। चिलचिलाती दुपहर और पिछली रात कोई सियार हूंकते हूंकते गुजरा था उनके घर के आगे से।

मन लगाये बाहरी बरामदे में बैठे सामने दालान में दिख रही दीमक की बांबी की ओर घूरते रहते। बांबी पर दीमक की कतार लगी है। सुनारी पेड़ से पीले फूल झरकर चारों ओर बिखरे पड़े हैं। पास में नागफनी के वन में कोई तितली बैठी धूप सेंक रही है। खाली आंख टिमटिमाते यह दृश्य देखते रहते। मन-ही-मन गुनगुनाकर अंगुली की पोर पर तिथि-नक्षत्र का हिसाब करते। जमीन पर रेखा खींचते।

उनका ध्यान टूट जाता, जब दो कुत्ते आकर देह चाटकर मैथुन शुरू कर देते। बरामदे से झपटकर कूद पड़ते और पत्थर फेंकते हुए दोनों कुत्तों को खदेड़ ले जाते गांव की ओर। तब कुछ छोकरे आकर उन्हें घेर लेते, हो-हा करते, वे फिर झटके के साथ लौट आते। घर के अंदर से किवाड़ बंदकर सांकल लगा देते।

विश्वम्भर नंद उस इलाके के नामी ब्राह्मण थे। मंत्र-तंत्र, पूजा-पाठ, व्रत-त्यौहार और कुछ कुछ कविराजी विद्या में भी उनका नाम था। उनके हाथ में यश था। तड़के उठ नहा-धोकर सिल्क की धोती पहनकर जप करते। मंत्रध्वनि से घर भर जाता। कुंभक, रेचक, पूरक से लेकर प्राणायाम में षड्चक्र-भेद एवं कुंडलिनी साधने तक पहुंचे हुए आदमी माने जाते थे। फिर थोड़ा-बहुत जलपान कर मजूरों, हलवाहों को खेत पर भेज देते। दो-तीन

घंटे बाद जाकर खुद हाजिर। सिर्फ उसी गांव के नहीं, आस-पास के दस गांवों तक के लोग-बाग उनसे मिलने आते। किसी के बच्चे को मिरगी आती है, किसी की बहू को गर्भपात हो गया है, किसी के यहां ग्रहशांति के लिए पूजा होगी, किसी के घर पर होम करना है, किसी के यहां विवाह या जनेऊ है--इस तरह की कई बातों में सलाह-मशविरा होता। उनके बटुए में और काठ की छोटी पेटी में होती तरह तरह की जड़ी-बूटियां--गोरोचन, रस-सिंदूर, कस्तूरी, बाघदंत, कुंभीपत्र, वज्रकपोत का हाड़, हिरण का सींग आदि। इनके अलावा उनके हाथ की बनायी गोलियां, चूरण, अवलेह, लौह-प्रवाल, मुक्ता-भस्म, मोदक वगैरह भी होते।

पैंतालीस की उमर में पत्नी के मरने के बाद से उनका पूजा-पाठ और बढ़ गया। बड़ी बेटी रमा का ब्याह कर, इकलौते बेटे सनातन को आदमी बनाने में लग गये। यही तो उनके अंधेरे घर का चिराग, वंश का रखवाला है। गांव की पाठशाला से लेकर पास के हाईस्कूल में पढ़ाया। उसे कालेज भी भेजा। जनेऊ और आगे चलकर शादी-ब्याह में हजारों रुपये खर्च किये। सनातन की स्त्री को बड़ी होने पर गौना कराकर ले आये और घर का सारा दायित्व सौंप दिया। बापू ही तो सनातन की दुनिया थे, बचपन से लेकर आज तक।

दोपहर तक का समय तो कट जाता पुराण बांचने में। बेटी रमा और बेटा सनातन जब छोटे थे--पास बिठाकर उन्हें पुराण की बातें बताते। अच्छा आदमी बनने की बात कहते। राम, लखन, हनुमान, विभीषण, सीता, सावित्री वगैरह के महान चरित्र का बखान करते, समझाते। बेटा कालेज पढ़ने के दिनों में छुट्टियों में जब घर आता तो बरामदे में बैठे ऊंची आवाज में पुराण बांचते। गीता के श्लोक भी व्याख्या कर सुनाते... ताकि ये बातें घर में चारपाई पर लेटे हुए, कोई पत्रिका या उपन्यास पढ़ते सनातन के कानों में पड़ें। कहीं धर्म-पंथ से उनके पांव न फिसल जायें।

मगर अचानक उस दिन, पता नहीं क्या हुआ, विश्वम्भर नंद सुबह खेत पर गये थे, फिर घर नहीं लौटे। सांझ ढलने तक बहू भोजन लिये बैठी रही--पति और ससुर की प्रतीक्षा में। बाद में अंधेरा घिरने पर सनातन लौटा था। चेहरा गंभीर, सूखकर स्याह पड़ गया था।

रात एक पहर गये गाय चरानेवाला छोकरा भंवरा आया था खबर देने--"सावंत जी चले गये हैं... अपने संगी के घर। संगी ने खबर भेजी है, उनकी तबियत बहुत खराब है। मुझे गांव के सिरे पर देखकर कहा कि घर खबर कर देना। मैं संक्राति के बासी दिन लौटूंगा। बहू-बेटे से कहना--अपना ध्यान खुद रखें, मेरी बाट न जोहें।"

मगर विश्वम्भर पंडित नहीं लौटे। धनु संक्रांति गयी, मकर संक्रांति भी गयी। और फिर पना (विषुव) संक्रांति। मगर पंडितजी का कोई अता-पता नहीं। कहां हैं, किसी को ठीक से खबर नहीं। कुछ दिन मित्र के घर, फिर कुछ दिन घर-जंवाई रहकर बिताये। फिर पुरूषोत्तम क्षेत्र (पुरी) में कुछ दिन गुजारे। अंत में, लोगों का कहना था, वे इस गांव से उस गांव फिरने लगे, उनका दिमाग खराब हो गया बताते हैं। मैले-कुचैले कपड़े पहने रहते हैं। बिना खाये-पीये इधर-उधर घूमते रहते हैं। पहले जब पिता की बात उठती तो सनातन

टालमटोल कर देता। कहता--"उनकी बात वे जानें। मैं उन्हें क्या समझा सकता हूं ?" पर बाद में सबके कहने पर चारों ओर ढूंढ़ा, मामा वगैरह को साथ लेकर गया और अब समझा-बुझाकर घर लाया है।

अब पंडित विश्वम्भर पहले से बहुत बदले हुए हैं। उनके हाव-भाव, मति-गति कुछ और ही है। देखने पर खास अस्वाभाविक नहीं दिखता। मगर मृत्यु के बारे में कभी कभी सोचकर वे अस्थिर हो उठते। अपनी मृत्यु के बारे में सबके आगे बताते। पूजा-अर्चना तो करीब करीब छूट चुकी है। अब नहा-धोकर कुछ समय ठाकुर के आगे बैठते नहीं, सो बात नहीं। कुछ बहू कहती तो उसकी सुन लेते। सनातन के संग तो बोलचाल प्रायः बंद थी। और तो और, उसे देखते ही वे अपनी जगह से उठ अन्यत्र चल पड़ते। कई बार डपटने के बाद जाकर थोड़ा-बहुत कुछ खा लेते और फिर आकर बाहर बरामदे में बैठे रहते।

उस दिन गांव में झामुयात्रा थी। सब गांव के छोर पर जमा थे। बाजे-गाजे, शंख-महुवरि से सारा गांव मुखरित हो रहा था। सुनसान गांव के रास्तें को देखते हुए बैठे हैं पंडित विश्वम्भर नंद, अपने घर के बरामदे में।

सामने बाहर दालान में बांबी है, दीमक की कतार लगी है। सुनहरे पेड़ के पीले पीले फूल झरकर बिखरे पड़े हैं।

अचानक शोरगुल सुनायी पड़ा। नंदजी ने देखा, कुछ लोग किसी को उठाये चले आ रहे हैं। लाकर उन्होंने सनातन को चित लिटा दिया। बड़ी सड़क पर साईकिल से आ रहा था, सरकारी जीप से टकरा गया। सारी देह खून से सनी हुई है। सिर फूट गया है। हरि पंडा ने कहा, "भैया, सनिया चला गया!" विशु नंद बड़बड़ा उठे, "इतना बड़ा हट्टा-कट्टा गबरू जवान! अभी था, कहां चला गया?" कोई कुछ न कर सका। और फिर वही 'हें...हे' हंसी--जो अपनी मृत्यु का वर्णन करके हंसा करते। वही हंसी जितनी करुण, उतनी ही भयंकर होती। लगता, जैसे वह कोई हंसी नहीं। मृत्यु को चिढ़ाकर हंस रहे हैं। अदृष्ट की ओर आदमी की असहायता पर हंस रहे हैं। अपने आप पर अट्टहास कर रहे हैं।

सनातन की जलती चिता के पास खड़े हैं--चुपचाप, निस्पृह उदासीन, करुण, द्वंद्वभरी हैं वे निगाह। उन्हें देखकर लगता है, जैसे कोई घुन-खाया खूंटा है--धकिया दो तो टूटकर गिर जायेगा। किसी ने कहा--"रोना जरूरी है, वरना और भी पागल हो जायेंगे। रुला दो उन्हें।" नरी मिस्सरजी ने हिला दिया, फफकते हुए कहा, "बिस्सू भैया, सनिया चला गया, सनिया कहां अब?" पंडित जी नहीं रोये। मानों अब आंखों में दृष्टि नहीं है। पत्थर से बने खड़े हैं। कुछ क्षण बाद बोले, "चला गया, जाने दो। मैंने कितना बुलाया, सुना क्या? जहां उस का मन करता है जाये!"

वे स्थिर देख रहे हैं। सनातन जला जा रहा है। सब कुछ राख हो गया। अब वे बोले, "गया.... सब जल गया। अब क्या आयेगा?" किसी भयानक दुख के समान खड़े हैं। मानो उसी का हिसाव कर रहे हैं। उसे मन के रुद्ध दरवाजे के अंदर नहीं जाने देते। पर उन्हें

लगता है जैसे कोई काला भालू उनकी ओर दनदनाता आ रहा है--नाखूनों से सामने जमीन कुरेदता है। मानो वे अकेले घर लौट रहे हैं। बहू को बुलाकर कहा, "देख...बेटी, उसका जो कुछ है, सब तोड़-फोड़ दे। वह अब और नहीं आयेगा।"

इसके बाद कई दिन नंद जी को क्या हुआ, किसी का ध्यान न था उस ओर। अंत्येष्टि क्रिया, चिता-शीतल, दशाह आदि क्रिया-कर्म के बाद सब ब्राह्मण-भोज में व्यस्त हो गये।

इन दिनों नंदजी अपनी मृत्यु की बात अब और नहीं करते। धीरे धीरे भूल गये। खूब जीवंत हैं--यही दिखाना चाहते हैं। कहा करते हैं सदा--"इतना बड़ा गावदी चला गया। मैंने इतना बुलाया, एक न सुनी। मैं ही मर जाता, वह जीता रहता।" फिर असहनीय फफक के साथ रुलाई, घर भर जाता--ठीक वैसे ही जैसे जब स्वस्थ स्वाभाविक थे, तब मंत्र-ध्वनि से घर भर जाता था।

तनिक स्वस्थ स्वाभाविक होने के बाद, वे फिर उस काले भालू के चक्कर में पड़ गये हैं। बस दरवाजा तोड़कर वह अंदर नहीं आया, अपनी कंटीली जीभ से समूची देह चाटता जा रहा है... उसके पंजों से बचना मुश्किल है। वे बिस्तर पर पड़े हैं। सदा बस एक ही बात--"सनातन, सनातन, सनिया! चला गया रे बेटे।"

उस दिन अचानक उठ पड़े वे। बाहर की ओर कदम बढ़ाये। सामने दालान में बांबी में दीमक की कतार लगी है। सुनहरे पेड़ से पीले पीले फूल सूनी धरती पर बिछे पड़े हैं। पास नागफनी के झुरमुटे में कोई गिरगिट कुछ दूर तितली की ओर घात लगाये बैठा है पकड़नें के लिए।

वे नहीं संभल पाये। धड़ाम से गिर पड़े। बाद में वैद्यजी ने नाड़ी देखी। नहीं मिली। गंभीर हालत देखकर उन्हें आंगन में तुलसी-चौरे के पास ले आये। बहू ने आकर तुरंत गंगा-जल दिया। निर्माल्य दिया। फफक उठी। सब कुछ सुनसान। इतने लोग घेरे बैठे हैं उन्हें। किसी के भी मुंह में शब्द नहीं है। सब चुपचाप।

उसी चिलचिलाती धूप में दुपहर में घबरायी सी आकर पहुंची एक औरत--जानी... जानकी--नंदजी की पुरानी नौकरानी। "सामंत जी चले गये!... सामंत जी चले गये!" बिलखती बिलखती आ गयी। उनके दोनों पांव पकड़ रोने लगी। लेकिन.... "अरे.... रे छूना मत, छूना मत।" रोकते हुए मालभाई कह उठे। वह तनिक दूर जा बैठी। भूल गयी कि नंदजी के पांव छूने का अधिकार उसे नहीं है। अपनी जाति के कारण।

कुछ देर बैठने के बाद वह धीरे धीरे हटकर वहां से निकल आयी। उसके साथ आयी थी उसकी बचपन की सहेली सेवती। दोनों वहां से चल पड़ीं श्मशान की ओर, जहां सामंतजी का अंतिम संस्कार होगा। वहां उनके दर्शन कर सकेंगी।

चिलचिलाती धूप। सूने श्मशान में जानकी प्रतीक्षा कर रही है, कब विश्वम्भर पंडितजी की अरथी आयेगी।

थोड़ी देर बाद सुनायी पड़ा--"राम नाम सत्य है।... राम नाम सत्य है।" जानी ने कहा,

"वो आ रहे हैं।" शव-यात्रा क्रमशः पास आती जा रही है।

सेवती से उसने कहा, "चल, अब चलते हैं।"

सेवती बोली, "फिर आयी क्यों? कह रही थी कि अंतिम बार देखेगी।"

"नहीं, चल।" जानी ने कहा।

कुछ दूर चलने पर जानी ने कहा, "यहां इस पेड़ तले जरा सुस्ता लें। बहुत थक गयी हूं।" तब तक उधर श्मशान में कड़ मड़, चड़ चड़ के साथ धुंआ ऊपर आकाश में उठने लगा था। शायद मुखाग्नि दी जा चुकी थी, आग सुलग उठी।

जानी ने कहा, "तुझे बताऊं, बताऊं... कई बार मन में आया। मगर, आज, सहेली, कह दूं तुझसे एक बात। इतने दिन हुए, आग सी सुलग रही है मेरे अंदर।....छाती में। सामंतजी उसे खेत पर छोटी क्यारी से सटकर वो जो सातगछी अमराई है–ठीक वहीं...!"

सेवती ने कहा, बात बीच में काटकर, "हां हां, सामंतजी वही तो, मुए सिर खराब होने की बात कहा करते थे। वहीं किसी ने दबोच लिया था उन्हें।"

मगर जानी ने अपनी बात जारी रखी--"उस दिन...मंगसिर का महीना, धान की मड़ाई होने से पहले... सुनसान दुपहर। ठंडी ठंडी हवा बह रही थी। खेत में थी अकेली मैं...सामंत आ पहुंचे। बोले, 'री! यहां क्या करती हो? चल अमराई की ओर क्यों नहीं चलती मेरे साथ?' दोनों पुलिया के पास पहुंचे। अचानक सामंतजी ने मेरे हाथ पकड़ खींच लिया... वो झुरमुट... उसी की ओर, मेरी देह को पहली बार मरद ने छुआ था... सिहर गयी एकबारगी--सारी देह...।

"कितनी देर हो गयी, जान ही न पायी। दोनों खो गये थे एक-दूसरे में। सामंतजी की गरम सांस मेरी देह में सरसराती गहरे तक चली जाती। और फिर खसखसाहट सुनायी पड़ी। वह आवाज धीरे धीरे पास आ गयी। किसी ने फिर ऊंची आवाज में पुकारा--'बापू!' हम दोनों खड़े हो गये । देखा, तो उधर छोटे बाबू खड़े थे। गाय खोजने आये थे। सामंत ने धोती ठीक की। मैं तो मर ही गयी वहां, एकदम लाज से।

"और फिर छोटे बाबू मुड़कर चले आये। सामंत पीछे पीछे। 'सनातन सनातन' कहते जा रहे थे। छोटे बाबू ने एक बार भी मुड़कर नहीं देखा। गांव के छोर तक चले आये, बाप-बेटे दोनों। दोनों उस छोर तक आये। फिर सामंतजी ने मुंह मोड़ लिया और चले गये। कहां गये, बहुत दिनों तक किसी को कोई खोज खबर नहीं मिली...।"

जानी की बात पूरी हुई तब तक विश्वम्भरजी राख बन चुके थे। उनकी मृत देह--लिंग, देह--सब-कुछ पंचभूत में मिल चुका था।

सूरज का सातवां घोड़ा

पशु-डाक्टर पंचानन दास। अस्पताल से लौटकर आराम-कुरसी पर बैठकर हरारत मिटा रहे हैं। दिन भर कठिन परिश्रम के बाद दोपहर में जरा लेटे थे। उसके बाद अब इस अकेले क्वार्टर में लौटे हैं। वहीं बैठे सुबह के अखबार पर नजर डाल रहे हैं। लिखा है, कल जी. टी. रोड पर कोई मोटर-एक्सीडेंट हुआ था। उसके कुछ फोटो भी छपे हैं। उन्हीं पर एक नजर डाल रहे हैं। ट्रक के नीचे दबे बैल का चित्र गौर से देख रहे हैं। मृत गाड़ीवान एक तरफ पड़ा है। एक जगह टैक्सी-दुर्घटना की खबर और चित्र भी है। इन्हें देखा तब तक महाराज ने खाना लगा दिया था। मगर तभी कोई लंबा, तांबई रंग का आदमी आ पहुंचा। हाथ में कोई किताब--शायद गीता का बंगला संस्करण होगा। उस छोटी सी किताब में दबा था दो रुपये का नोट। साथ में दो-तीन एक एक के नोट भी थे जो किताब में से दिख रहे थे। उनके पास कुछ मुड़े हुए कागज थे। वह लंबे, छरहरे थे। हड़ीले गालों पर धंसी धंसी आंखें। अधमैला शर्ट पहने हैं और कंधे पर गमछा। उनके हाथ में एक कागज थमा दिया। पूछा--"बाबू, पंचानन डाक्टर जी का घर यही है?"

डाक्टर बाबू ने कागज खोला। उस में आड़ी-टेढ़ी कुछ रेखाएं खिंची हैं। उसने देखा--"साब, आप हैं डाक्टर जी?" इशारे से समझ गया। कुछ मुस्कुराकर कहा--"जी ये मैप देख-देखकर आ रहा हूं। हाईस्कूल के भूगोल-मास्टर जी ने इस नक्शे के जरिये बता दिया था आपका घर। देखिये वो स्टेशन रोड भूला साही का चौराहा। बस-स्टैंड इधर है। उससे आगे आपका निवास। आपके दर्शन करने चला आया!"

डाक्टर जी ने पूछा, "क्या बात है, गाय-गोरू को कुछ हो गया है?"

उसने रोका--"जी नहीं। वैसा कुछ नहीं। मैं आपको कुछ ब्रह्म-विद्या सिखाना चाहता हूं। काफी मिन्नत खुशामद के बाद इसे हासिल किया है। कलकत्ता के मेघनाथ साहा स्ट्रीट के जमींदार भोलानाथ गांगुली, इंडन साल्ट कंपनी के मैनेजिंग डायरेक्टर मधुमित विश्वास, सब-जज तारापद सेन--सब देखकर अचंभे में पड़ गये। यह विद्या ब्रह्मांड में किसी को नहीं मिली। शुक, सनक, जाबालि, वशिष्ठ ने घोर तप किया, पर इसे नहीं पा सके। पुरी के विजयचंद्रजी का शिष्य हूं। वे तो कब के स्वर्ग जा चुके हैं।" अखबार की कतरन किताब से निकालकर दिखायी। उसे माथे से छुआया। कहा--"मैं आज तक चुप था। कलकत्ता

से आकर गांव में था। आली रिंग रोड के पास हमारा गांव है। स्वप्नादेश हुआ--इस विद्या को और न छुपाओ। यह विद्या सारे भारत में, विश्व में अप्राप्य है। तुम इसे प्रकट करो। हुकुम हुआ तब दिखा रहा हूं"

पंचानन ने कौतूहल से पूछा--"क्या है वह विद्या?"

उसने जेब से कागज निकाले। दो सर्टिफिकेट थे। एक टाइप किया हुआ और दूसरा हाथ का लिखा। पहला है पास ही के कालेज के फिजिक्स के लेक्चरर सुनाकर मिश्र का दिया हुआ। अंग्रेजी में लिखा है--'आली-कुरान ग्रामवासी अच्युतानंद पंडा एक सिद्ध साधक हैं। सूर्य की ओर देर तक अपलक नेत्रों से देख सकते हैं। उनका विश्वास है कि सारे विश्व को अपना साधना तत्व सुनाने का आदेश हुआ है।' दूसरे प्रमाणपत्र के लेखक हैं कोई रिटायर्ड मुंसिफ।

उसने कहा, "ऐसे कई सर्टिफिकेट बड़े बड़े लोगों ने दिये हैं। कासिम बाजार के महाराज वर्धमान के दीवान-बहादुर, वगैरह सब जानते हैं मुझे। उनके पत्र सूटकेस में हैं। सूटकेस मैं चौराहे वाले हलवाई की दुकान पर रख आया हूं।"

हाथ जोड़कर कहा--"जी, आप खुद भी जरा साधना देख लें। समूचे सूर्य-मंडल को मैं प्रत्यक्ष दिखा सकता हूं। गीता में भगवान ने जिन द्वादश आदित्य, सौर-मंडल की बात कही है--सब उस मंडल में हैं। प्रणव, ओंकार, आदिमाता, सावित्री, हिरण्यगर्भ, गायत्री सब उसमें हैं।"

पंचानन बाबू बेचैन हो रहे हैं। दिन भर मन खट्टा रहा। कंपाउंडर चतुर्भुज ठहरा ठग। जो कहेगा उसका उलटा करेगा। सुबह ही कॉल पाकर निकल जायेगा। लौटेगा अस्पताल खुलने के आधा घंटे बाद। चारों ओर कहता फिरेगा कि वह डाक्टर है। गाय, बकरी, भेड़, मुर्गा, आदि की बड़ी बड़ी बीमारियों में भी बिना पूछे इंजेक्शन ठोंक आता है। कहता है--'डाक्टरजी क्या करेंगे? मुझसे पार पा सकेंगे?' इतना ही नहीं, वो तो कहता है--'डाक्टर तो कागज लिख देता है, इलाज तो मैं ही करता हूं। उसे क्या कुछ आता है?' यदि कुछ बिगड़ गया तो सारा दोष लाद लेगा उन पर। कोई पशु मर गया तो गलती डाक्टर की होगी।

आज सुबह रिक्शा कुचल गया एक कुत्ते को। मालिक कुत्ते को लेकर आया। इंजेक्शन देने के लिए कंपाउंडर को कहा, मगर वो उस कसेरा की बकरी के पीछे लगा रहा। बुढ़िया की बकरी को बचाना होगा। क्योंकि महीने भर बाद अष्टमी को उसकी बलि होगी। बुढ़िया को बकरी के लिए ऐसा दुख है मानो सचमुच उसकी बिटिया का ही पेट फूल गया है। घंटे भर बाद आकर कुत्ते को इंजेक्शन दिया। कुत्ता नहीं बच सका। बदनामी डाक्टर की होगी।

फिर वो गरमायी गाय रंभा रही थी। डाक्टर बाबू अपने हाथों में इंजेक्शन लेकर जर्सी सांड के शुक्राणु दे रहे थे। तिरेपन वर्ष की कुंवारी देह में इन सबकी क्या कोई प्रतिक्रिया

नहीं होती? पर सारा काम सलीके से कर दिया। उस के बाद वह कुत्ता आया। ...चौबीसों घंटे धंधे में व्यस्त रहता है। दो दिन से कुछ नहीं खाया। ऐसे कई केस...।

इस सारे जंजाल, झंझट में सूर्यमंडल देखने की जरा भी इच्छा न थी डाक्टर में। मगर वह आदमी भी पक्का ठहरा। इसी बीच कमीज खोल, गमछा पहनकर तैयार हो चुका था। जनेऊ पर हाथ फेर रहा था। पानी मांगा। अंदर से नौकर ने दो गिलास पानी दिये। अब पानी पीकर पालथी मार बैठ गया। गुन गुन मंत्र बोलने लगा। पांच मिनट सूर्य की ओर अपलक देखता रहा। और फिर कहने लगा--"हां ये रहे... आदित्य, सावित्री, गायत्री, हिरण्यगर्भ, तत् सवितुर... वरेणू..."

डाक्टरजी बरामदे में उतरे। सूर्य की ओर देखा। कुछ क्षण देख कर कहा, "कहां? मुझे तो कुछ नहीं दिखता।"

उसने कहा, "कैसे दिखे? मैं कहूंगा तब देख सकोगे।" वह उठ आया। कोई मंत्र गुनगुनाया। डाक्टर के माथे पर हाथ से दबाव देने लगा। सेलून में हेयर-कटिंग के बाद जैसे नाई करता है, कुछ उसी तरह। उसके बाद कहा, "देखिये...!"

डाक्टर ने ऊपर सिर किया। कहा, "कुछ तो नहीं।" खीझ में भरकर कहा--"कुछ भी नहीं। सब ठगी है, ठगी।"

उसने कहा--"हुजूर! एक दिन में सूर्य-मंडल देख लेना क्या संभव है। बरावर कुछ दिन अभ्यास करेंगे तब होगा।" फिर कमीज, धोती पहन, जाने को तैयार। डाक्टर ने एक रुपया उसे दिया। नहीं लिया। "छिः छिः! रुपये का क्या होगा?"

दो दिन बाद फिर वैसे ही बरामदे में बैठे थे। दो कोस दूर निजीपुर गांव जाना होगा। कॉल आया है। सुबह रामशेर मियां की भूरी घोड़ी आयी थी। केवल चिल्ला रही है। "इंतजार करो," कहकर डाक्टर बाबू अंदर काम करने चले गये।

घोड़ी अहाते में चर रही थी। शमशेर गया था चौराहे पर बीड़ी लाने। कुछ देर बाद डाक्टर बाहर आये। देखा तो कहीं से एक कद्दावर घोड़ा आ गया है। घोड़ी को कुछ दूर धकेल ले जाकर मैथुन कर रहा है। डाक्टर ने घोड़ी को हटाकर ले आने को कहा। पर यह कोई आसान काम है? सब जड़ बने वह दृश्य देख रहे हैं। कुछ देर बाद वह घोड़ा हिनहिनाता चला गया। तब घोड़ी को लाकर इंजेक्शन दिया गया।

डाक्टर अंदर जाकर लेट गये। आंखें मींच लीं। तभी वह आदमी आ गया। कहने लगा, "सर, आज सूर्य-मंडल देख सकेंगे। कम-से-कम सूरज के सात घोड़े तो देख सकेंगे।" मगर डाक्टर ने उसे टाल दिया। किंवाड़ बंद करके बिस्तर पर लेट गये। बाहर गरमी बहुत है। लू चल रही है। डाक्टर को नींद आ गयी। कुछ समय बाद उन्हें लगा, घोड़े की हिनहिनाहट सुनायी पड़ रही है। अहाते में घोड़े दौड़ रहे हैं। वे उठ गये। बाहर आकर देखा--सचमुच एक आदमी किराये की घोड़ागाड़ी लिये प्रतीक्षा कर रहा है। उस में जुता हुआ है सुबह वाला वही दुर्दांत घोड़ा। डाक्टरजी को देखकर उस आदमी ने कहा--"सर, निजीपुर का कॉल है, चलें?"

निःसंग प्रतिमा

विमल बाबू काफी थकावट महसूस कर रहे हैं। ''ना, और नहीं हो सकेगा। अकेला क्या कर सकता हूं? मैं भला अकेला इस स्रोत का मुंह बंद कर सकता हूं? शायद इस बाढ़ में किसी निःसंग प्रतिमा की तरह कहीं बह जाऊं... कोई अता-पता भी न रहेगा।''

गंदले पानी का स्रोत प्रचंड वेग से बहता आ रहा है। खेत-खलिहान, पेड़-पौधे, जंगल-पहाड़, ऊंची-नीची सारी जगह डुबोता आ रहा है यह स्रोत। सारा देश ही उसमें डूब गया। उद्धार का कोई रास्ता नहीं, बचने का कोई उपाय नहीं।

चारों ओर गंदगी, मैला--सड़ांध-ही-सड़ांध। कोई किसी का मुंह नहीं देखता। सब चले जा रहे हैं अपनी अपनी दिशा में बेदम हुए। पीछे की ओर मुड़कर देखने की फुरसत ही नहीं।

अस्थिरता, जंगली हालत--पहले तो ऐसी न थी। उन्हें याद आती है चालीस बरस पहले की बात। कितना शांत, सरल और सहज था जीवन उस समय।

युनिवर्सिटी से डिग्री लेने के बाद सरकारी नौकरी में चले गये। बचपन से सरल, सच्चे और आत्म-सचेतन थे। मगर नौकरी में मन नहीं लगा। नौकरी से इस्तीफा देकर बन गये स्कूल-मास्टर। वहां से भी इस्तीफा देकर कूद पड़े देश के स्वतंत्रता आंदोलन में। शुरू से ही, बिना किसी खास चेष्टा के, वे अपने इलाके के भूखे लोगों के चहेते नेता बन गये। मानो नेतागिरी उनकी प्रतीक्षा में बैठी थी। बार बार जेल जाना पड़ा। मार खायी। सर्वस्व गवां बैठे। जमीन-जायदाद सब जब्त हो गयी। मगर इसी में था आनंद, परिपूर्णता। सब खोकर भी मानो ऐसा कुछ पा गये कि हजारों लोगों को अपना बना लिया। बेशुमार लोगों की भीड़ में अलग से एकदम साफ दिख जाते हैं। अनेक सतर्क निगाहें मानो उन पर लगी रहती हैं-- इस चेतना से वे छूट नहीं पाते। मानो वे अनेक हैं। इतनी बड़ी भीड़ में भी सदा अकेले हैं--अपनी इस निःस्व-निःसंग और करूण प्रतिमा को चाहने लगे हैं।

अपना नाम बार बार लेने में उन्हें अच्छा लगा--''तुम लोग चाहे कुछ भी कहो, कुछ करो सोसायटी में, विमल कृष्ण इसमें नहीं हिलेंगे।'' या ''तुम लोगों ने सोचा है, विमल कृष्ण भड़क उठेंगे।''

कहते हैं, एक बार कोई अमेरिकी पत्रकार उनसे भेंट करने आया। कुर्सी से खड़े हो गये। स्वागत करने के लिए दाहिना हाथ बढ़ा दिया। परिचय देते हुए बोले, ''मैं विमल कृष्ण पट्टनायक।'' आगंतुक इतने बड़े नाम का मतलब समझ न सके। जरा जिज्ञासु की तरह देखते रहे तो अंग्रेजी में अपने नाम का अर्थ बताते हुए बोले, ''विमल याने प्योर, कृष्ण यानी कृष्टि-संपन्न--कल्चर्ड। पट्ट मीन्स सुप्रीम, नायक का अर्थ है--लीडर।''

अर्थात--'आइ आम द प्योर कल्चर्ड सुप्रीम लीडर[1]।'

विदेशी सज्जन इस नाम-माहात्म्य को सुन अवाक रह गये। ''वे मान गये--उनके देश में इतने सुंदर अर्थवाला नाम नहीं मिल सकता।'' विमल बाबू बता रहे थे।

जब कोई विदेशी अपने देश की वैज्ञानिक उपलब्धि की चर्चा करता, जैसे चांद पर पहुंचने की बात कहता, तो विमल बाबू अपने देश के पिछड़ेपन पर उदास हो जाते। उनका चेहरा स्याह पड़ जाता। हृदय में से एक हूक उठती। भारत सदा उन्नति की ओर बढ़ता जाये। वे मन-वचन-कर्म से चाहते थे–हमारे देश का गौरव सदा दुनिया में सब से ऊपर हो। मगर वह उन्नति उन्हीं के द्वारा हो, या उन्हीं के जरिये हो--ऐसी एक धारणा उनमें घर कर गयी है। कहते हैं, एक बार कोई अमेरिकी अपोलो के द्वारा चंद्रमा पर से मिट्टी-संग्रह की बात कर रहा था। विमल कृष्ण बाबू कुछ क्षण सोचते बैठे रहे, फिर बोले, ''अपोलो की क्या बात कहते हैं। यू नो, वी हेड अवर नारद[2]--जो चंद्र ही नहीं, ग्रह-ग्रहांतरों यानी सूर्य, बुद्ध, शुक्र, शनि, मंगल, तक मनमर्जी से आ-जा सकते थे। ही वाज गोइंग अपस्टेयर्स[3]।'' अंतिम शब्द बोलने तक कुर्सी से उठ खड़े हुए और एक हाथ ऊपर उठा दिया। यु नो, वी हेड अवर विशल्यकरिणी[4]....?''

विदेशी सज्जन नारद, विशल्यकरिणी आदि की बातें अवाक सुनते रहे।

विमल बाबू सोचते--कहां गया वह युग? त्याग और संघर्ष का सरल, निर्मल अकपट जीवन? आजकल तो सभी पैसे के पीछे पागल हैं।

स्वाधीनता आयी। उसके साथ आया मंत्रित्व। मगर विमल कृष्ण बाबू पहले जैसे थे, वैसे ही रहने में सुखी थे। ज्यादा बदलने को तैयार न थे। मगर हुआ क्या? कुल बीस वर्ष में सारा देश बदल गया। लोग बदल गये। झोंपड़ी की जगह बड़ी बड़ी नामी-बेनामी अट्टालिकाएं खड़ी होती गयीं। रद्दी साइकिल की जगह नये-से-नये माडल की गाड़ियां आकर खड़ी हो गयीं।

उस दिन स्वराज्य-फंड में या कृषक-फंड में चावलों की किणकी की मुट्ठी मांगने वाले कार्यकर्ता आज बड़े बड़े मठों के महंतों की तरह दिख रहे हैं। किसी ने राजधानी में दो

---

1. मैं शुद्ध, सुसंस्कृत सर्वोच्च नेता हूं।
2. आप जानते हैं कि हमारे नारद मुनि थे।
3. वे ऊपर की ओर जा रहे थे।
4. आपको ज्ञात है हमारे विशल्यकरिणी भी हुए हैं।

बिल्डिंगें बनवा लीं, किसी ने अपने गांव में दस एकड़ का बगीचा ले लिया। उनकी देखा-देखी जो लोग आश्रमों में 'रघुपति राघव राजा राम' गाते थे, आज वे परमिट, लाइसेंस बनवाकर मालामाल हैं।... पर वे खुद बीस वर्ष पहले जहां थे, आज भी वहीं हैं--जरा भी आगे नहीं सरक पाये।

उल्टे गांव का मकान दिन-ब-दिन टूटता जा रहा है।

मंत्री के रूप में जो मिलता है सो तो मतलब-बेमतलब से आनेवाले कार्यकर्ताओं के खाने-पीने में ही खर्च हो जाता है। फिर उस पर तरह तरह के चंदे-चिट्ठे अलग हैं।

इसके लिए अपने संगी-साथियों के उपहास का शिकार होना पड़ता है। उनके संगी मंत्रीगण उन्हें मरहटिया, बाबा आदम के जमाने का कहकर खिल्ली उड़ाते हैं। यहां तक कि विभागीय उप-मंत्री तक उन्हें पासंग में नहीं रखते। सेक्रेटरी, बाबू लोग, चपरासी भी--हालांकि दिखावे में लंबे लंबे नमस्कार करते हैं। 'यस सर, यस सर।' कहने में कसर नहीं रखते।

विमलकृष्ण बाबू सब समझते हैं, अनुभव भी करते हैं। मगर उनकी अटल प्रतिज्ञा है--"अपने ध्येय और आदर्श से नहीं हटूंगा।"

खीझ उठते हैं--"विद्रोह करूंगा, क्रांति करूंगा--बीस वर्ष पहले की तरह।" मगर यह अकेली आवाज और विद्रोह का हल्का सा निष्फल स्वर सिर्फ उनके बंगले के अहाते में और सेक्रेटेरियट की चारदीवारी में गूंजकर रह जाता।

विराट जनसभा में वे सदाचार और आदर्शवाद का प्रचार ही मुख्य कर्तव्य समझते और सरकारी नीति का बयान करना गौण हो जाता। क्रमशः उनकी सभाओं में लोगों की संख्या कम होने लगी--"अच्छा, विमल बाबू मंत्री! वे क्या कहेंगे, हमें पता है--बस, सत्य, अहिंसा, संयम की बात, कैसे वे साग खाते हैं, रोटी खाते हैं। सूत कातते हैं। ये सब बातें हम जानते हैं।... खैर, बहुत अच्छे आदमी हैं प्योर सोने का टुकड़ा है। उन जैसे दो-चार हो जाते तो देश का कल्याण हो जाता। इस पुआल के ढेर में बस एक ही आदमी है।"

विमल बाबू का ख्याल है--'लोग अभी मुझे ठीक से समझते नहीं। अतः परवाह नहीं करते।' उनका मन कभी कभी दर्द से छटपटा जाता। पर वह गुस्सा क्षणिक होता, फिर वैसे के वैसे। वे दुनिया पर खीझ उठते। सोचते--इस भ्रष्ट समाज को उचित शिक्षा देना जरूरी है। तब जाकर इसमें मोड़ आयेगा। विद्रोह कर इतनी बड़ी गोरी सरकार को हटा दिया। बड़े बड़े राजे-रजवाड़े, निजाम-गायकवाड़ों को पानी के बुलबुलों की तरह मिटा दिया है। क्या हथियार थे तब? गोला-बारूद या लाव-लश्कर कुछ भी तो न था--सिर्फ था आत्मबल, अपने को बलि देने की भावना।

और यह मूर्ख दुर्नीतिग्रस्त समाज--इसको दुरुस्त नहीं किया जा सकता? अलबत्ता होगा। उनके अंदर का विद्रोह रण-हुंकार दे उठता। मगर अगले ही क्षण अपनी मान-मर्यादा, दलगत जिम्मेदारी की बात सोचकर शांत हो जाते। फिर निरीह मेमने की तरह अपने आफिस

के या बंगले के लोगों की बातों में हां-ना करते, कहीं हल्की भर्त्सना कर देते, या फिर कोई छोटा-मोटा उपदेश देकर रोजमर्रा की अष्ट-प्रहरी जिंदगी में कहीं खो जाते।

कभी कभी उन्हें लगता--बहुत थक गया हूं--मानो लंबी बीमारी भोगकर अभी उठा हूं। और अब लड़ाई... संघर्ष से कोई लाभ नहीं। वरन इन सबसे एक ओर हट जाना ही बेहतर होगा।

नियमित गीता का पाठ करना पुराना अभ्यास है उनका। साथ में विनोबा के उपदेश और गांधीजी की वाणी वाले ग्रंथ। आखिर में विनोबा बोली और अरविंद के दिव्य जीवन-स्वप्न। इन सबमें वे एक ही चीज निकालना चाहते थे--समाधान, जरा सा, बूंद-भर समन्वय, इंच भर की राह।

उस दिन वे ज्यादा चिंतित और क्लांत लग रहे थे--किसी निर्जन काली स्याह रात के क्षितिज पर श्वेत वस्त्र धारण किये किसी अकेले आदमी के सिलहाऊट[1] की तरह। जाड़ों में भी उनके माथे पर पसीने की बूंदें झलक रही थीं।

अभी एक सभा समाप्त कर गांव के स्कूल में आकर बैठे थे। साथ में हैं मछली-पालन विभाग के मंत्री--विप्रचरण बाबू। विमल बाबू ने भाषण में कहा था--'देश में किस तरह दुर्नीति भर रही है। मंत्री से लेकर नीचे तक, सब भोग-विलास में डूब गये हैं। गांधीजी के सपनों के स्वराज्य की कैसी विडंबना हो रही है'--खूब अच्छी तरह व्याख्या की। पुराणों-इतिहासों से उदाहरण दिये। आखिर अपनी कृच्छ साधना और संसार-विमुखता के बारे में भी परोक्ष में, प्रकट में, बताकर भाषण को प्रभावशाली बनाने की चेष्टा की। मगर सभा में उत्साह नहीं, कोई दम नहीं...। लोग उखड़ने लगे। मछली विभाग के मंत्री ने देखा--यहां तो खतरा है। जब तक मैं बोलने उठूंगा--खाली कुर्सियां या फिर टेबल या लाइट लाने वाले दो-चार के सिवाय कोई नहीं होगा। उन्होंने विमल बाबू को बैठने का संकेत किया। एक-दो बार उनकी कमीज का निचला भाग पकड़कर खींचा। मगर वे भी पक्के थे--आखिर वज्र की तरह ठोक-ठाक शब्दों में कह दिया--"सभा में एक आदमी के रहने तक भी बोलूंगा।" मछली विभाग के मंत्री छटपटा रहे थे। तिलमिला उठे। आखिर दिमाग में एक तरीका सूझ गया। माइक छीनकर अचानक बोल उठे, "भाइयो और बहनो, भाषण के बाद सरकार के प्रचार विभाग की ओर से सिनेमा दिखाया जायेगा। अच्छी पिक्चर है। कटक से चुनींदा रिकार्ड आये हैं, वे भी बजाये जायेंगे बाद में। आप लोग अपनी अपनी जगह पर धीरज से बैठे रहिये। वरन् यह सुनहरा मौका हाथ से निकल जायेगा।" बस, सभा फिर जम गयी। लोग वापस आकर बैठने लगे। कुछ को तो अपनी जगह छोड़कर जाने का अफसोस हो रहा था। कुछ वापस जगह पाने के लिए धींगा-मुश्ती करने लगे।

आखिर अब खड़े हुए मछली विभाग के मंत्री। भाषण लंबा चला। लोगों ने धीरज से सुना। सुई तक गिरे तो आवाज सुनायी देगी। किसी ने भी जरा चूं तक न की। सामने

---

1. छाया-चित्र।

की कतार में जमे निम्न प्राइमरी के बच्चे तक स्थिर चुपचाप बैठे रहे।

अंत में स्कूल के हाल में मंत्री तथा निमंत्रित अतिथियों के लिए रात्रि-भोज की व्यवस्था थी। विमल बाबू मुंह फुलाये एक छोटी टेबल पर एक ओर थोड़ा हटकर बैठे रहे थे। बाकी गांव के मुखिया और सरपंच सब मछली-विभाग के मंत्री के साथ गहरी बातचीत में जमे थे। पर विमल बाबू को उसमें कोई रुचि न थी, बहुत सूना सूना लग रहा था उन्हें। इस दुनिया में मानो वे अकेले हैं, एकदम अकेले--संगी-साथीविहीन, किसी द्वीप के निवासी की तरह अकेलापन उन्हें घेरे हुए था। भोजन परोसा गया। चर्वण, चूषण, लेहन, पेय आदि तरह तरह की सामग्री लायी गयी। भात-दाल और साग भी परोसा गया। कुछ और लेने से मना कर दिया विमल बाबू ने। बोले, "मैं भात-डालमा[1] ही खाऊंगा।" गांव के जुगाड़ी लोगों का, जिन्होंने यह आयोजन किया था, मुंह स्याह पड़ गया। सचमुच उनकी दशा दयनीय हो गयी। मगर विमल बाबू ने बेलाग शब्दों में कह दिया--"मैं भात-डालमा खाता हूं। वही खाऊंगा। जब लाखों लोग भूखे-प्यासे हैं, बाढ़ और अकाल में मर रहे हैं, उन्हें घास-पात तक नहीं नसीब होता, तब हमें भोज, मौज-मजलिस वाले आयोजन शोभा नहीं देते।"

उस इलाके के सरपंच, बी.डी.ओ. सब हाथ जोड़े खड़े थे। मिन्नत के स्वर में कहने लगे, "हुजूर, खाना बन गया है। सब नष्ट हो जायेगा। पहले से अगर पता होता तो ये सब नहीं बनाते।"

विमल बाबू ने और तेज होकर कहा, "नष्ट होगा? क्यों? गरीब क्या नहीं हैं? उन्हें खिला दिया जाये।"

सरपंच सिर खुजलाने लगे। तभी मछली विभाग के मंत्री ने बचा लिया उन्हें। जोर से बोले--"अब ले आओ, सरपंच जी! जो बनाया है, दो। मिल-बांटकर थोड़ा-बहुत लेंगे। वे ठहरे बाबा जी, उनकी बातें छोड़ो। उनकी बात का विचार न करना।"

सरपंचजी, बी.डी.ओ. साहब की जान में जान आ गयी।

खाने बैठे तो देखा--सबकी नजर मछली विभाग के मंत्री जी की ओर है। अच्छे खाने-पीने वालों की ओर है। लोगों की भीड़ उधर ज्यादा है। कोई मछली झोल, कोई तरकारी लिये पहुंचता है तो कोई मांस की बाल्टी लेकर हाजिर।

"जी थोड़ा सा मसाला।"

"जी, बस जरा सा कोरमा।"

मछली विभाग वाले मंत्रीजी और ऊंचे अफसर साहब "हां...हां... ना... ना... बस. .. बस जरा थोड़ा सा" कहते हुए परोसने वालों को प्रसन्न कर रहे थे। "खूब। अच्छा है, बढ़िया है," कहकर सर्टीफिकेट देते जा रहे थे। अब आये दही, सालेपुरी रसगुल्ला और केंद्रपाड़ावाली रसवाली।

---

1. दाल में ही सब्जियां डालकर उबाल देने की पद्धति को 'डालमा' कहते हैं।

कोई हिम्मत नहीं कर पाता विमल कृष्ण बाबू के पास फटकने की। आध घंटे के भोजन के दौरान कोई एक बार भी पूछने नहीं जा सका। सरपंच एक बार गये थे, "एक चम्मच भात। जरा सी दाल लें।" विमलकृष्ण बाबू का उत्तर था--"ना।" वे घबराकर लौट आये। दुबारा जाने का साहस न हुआ।

विदाई का वक्त आ गया। विमलकृष्ण बाबू का चेहरा वैसा ही भारी और गंभीर दिख रहा था। फिर भी हल्की सी मुस्कान बिखेरकर सबको नमस्ते की। किसी के कंधे पर हाथ रखा, किसी युवा संघ के कार्यकर्त्ता से हंसते हुए पूछा, "बेटे, अच्छे हो?" (हालांकि वह बचपन से अनाथ है, अचकचाकर सिर खुजलाने लगा)। लग रहा था जैसे सब उनसे कतरा रहे हैं। किसी की हिम्मत नहीं पड़ती पहले की तरह खुलकर मिलने की।

कई दिन बाद निश्चिंतपुर गांव में एक और सभा का आयोजन था। विमलकृष्ण बाबू चुनाव के दिनों वाली अपनी पुरानी जीप में सभास्थल पर दो घंटा देर से पहुंचे।

सभा में एक आदमी रहने तक--सत्य और अत्याचार, सदाचार पर भाषण दिया। और फिर आयी भोजन की बारी। खाते समय फिर वहीं संकट दिखायी दिया। विमल बाबू ने जिद कर ली--"मैं तो सिर्फ भात-डालमा ही खाऊंगा।" उपस्थित लोगों ने काफी जिद की, तब जाकर जरा सा साग, पंचायत आफिस के अहाते में लगे बैंगन का भाजा परोसने की अनुमति दी। मगर मांस या मछली तो छुई तक नहीं। अंत में सरपंचजी ने, जिनकी प्रखर बुद्धि का लोहा उस इलाके के सब मानते थे, हाथ जोड़कर कहा, "स्कूल के पोखर में आज मैंने खुद बंसी डालकर एक छोटी सी मागुर मछली फंसायी थी। बस उसे ही अलग से मंत्रीजी के लिए भाजा बनवाकर रखा है।" आनुगत्य, सरलता देख मंत्रीजी मुग्ध हो गये। "खैर, बस, उतना ही देना।"

कुछ दिन बाद एक और जिले में, कुदलपुर गांव में, एक और सभा का आयोजन था। तब तक चारों ओर लोगों में फैल चुका था--मंत्री विमलकृष्ण बाबू भात-डालमा के सिवा कुछ नहीं खाते। कानोंकान खबर सारे राज्य में फैल गयी थी। अतः सभा में आयोजकों ने मितव्ययिता और वसूले गये चंदे की छोटी रकम को देखते हुए भात-डालमा ही बनवाया। सभा में स्वागत, मानपत्र और भाषण के बाद मंत्रीजी महाराज जीमने पधारे--आसन पर विराजमान होते ही धुरंधर बी.डी.ओ. साहब ने नम्र स्वर में निवेदन किया--"जी, बनाया तो सब कुछ ही गया है--अंडा, मांस, खीर आदि। विदुर के घर साग-भात और डालमा भी है। हम जानते हैं, सर, आप और कुछ नहीं छुएंगे।"

मंत्री जी खुश। इतने दिनों बाद लगा, जैसे लोग उनकी बात, उनकी नीति का मर्म समझ रहे हैं। धीरे धीरे ही तो समझेंगे। जायेंगे कहां? प्रशंसा में कहने लगे, "लोगों को खाने को नहीं मिलता, हम इधर खूब आडंबर से भोज में पैसे बरबाद करते हैं। घोर पाप, अन्याय, जो पकाया है, खुद खाओ और गरीबों में बांट दो।" उस दिन मंत्रीजी के लिए अलग कोठरी में आसन लगाया गया था।

महीने भर बाद की बात है, गंजाम जिले के शूले गांव में गोशाला समिति का वार्षिकोत्सव था। सभा-कार्य के बाद मंत्रीजी भोजन करने पधारे। गोशाला के सेक्रेटरी थे स्थानीय उच्च प्राइमरी स्कूल के हेडमास्टर और बी.डी.ओ. साहब सभा के आयोजक थे। सब थे धार्मिक, सरल लोग। वे मंत्रीजी के आंतरिक अनुयायी, भक्त और अनुगामी कहे जा सकते हैं। बी.डी.ओ. अपर्ती बाबू खांटी वैष्णव। गले में तुलसी की कंठी, माथे पर तिलक लगाते हैं। छह महीने और रह गये हैं, रिटायर होने वाले हैं। मंत्रीजी के आसन के पास बैठ खाना खाने की चर्चा कर रहे थे। भात-डालमा के साथ अरबी का संतुला[1] परोसा गया।

मंत्रीजी खुश हो गये। पूछा, ''और क्या बनाया गया है? बाकी जो बनाया है, आप लोग खा लें।'' बी.डी.ओ. ने कहा, ''जी, और कुछ नहीं। जब लोग बिना खाये मर रहे हैं, गायों की हालत दाने बिना खराब हो गयी है। तब आप लोगों को भात-दाल के सिवा और क्या रुचेगा? आप हैं हमारे आदर्श। हमारे युग के राजर्षि जनक।...हें...हें!''

विमलकृष्ण बाबू का चेहरा लाल पड़ गया। उन्हें लगा, जैसे सब उनकी बेखातिरी कर रहे हैं। उन्हें सीधा, सरल समझकर उनका असम्मान कर रहे हैं, नापसंद कर रहे हैं। वरना उनके जैसे गणमान्य उच्चपदस्थ आदमी का यों साग-भात परोसकर स्वागत होता? मन-ही-मन सब पर, समूचे समाज पर क्रोध में भर गये। मगर चेहरे पर हल्की मुस्कान लाकर बोले--''हां, हां ठीक है। ठीक है, जल्दी से आओ, देर हो रही है। बारह बजे तक राजधानी भुवनेश्वर पहुंचना होगा।''

दो बार ग्रास मुंह में डाल पानी का गिलास पी लिया। तमतमाये चेहरे से जाकर गाड़ी में बैठ गये। हफ्ते भर बाद तार से खबर आयी--'बी.डी.ओ. अपर्ती बाबू का कंधमाल भूमि वाले इलाके में तुरंत तबादला हो गया है।' हालांकि इसके ठीक चार-पांच दिन बाद, एकदम अयाचित रूप में, उस तबादले के आदेश का स्थगन आदेश भी एक्सप्रेस तार से आ पहुंचा था।

---

1. बिना छौंक के उबली रसेदार तरकारी।

रंगलता

ब्रह्मपुर बस-स्टैंड।

दोनों समधी तेजी से जा रहे हैं, बस पकड़ने। भुवनेश्वर जायेंगे। बड़े समधी पहले से कह रहे हैं--"जल्दी जल्दी चलो। बस छूट जायेगी।" पीछे से छोटे समधी जवाब दे रहे हैं--"चल तो रहा हूं... करूं क्या? पंडेई[1] जो छोड़ आया.... ।"

बस-स्टैंड तरह तरह की आवाजों से भरा है। केले, ककड़ी, मूंगफली रासी लड्डू[2], नयी पंजिका[3], भाग्यफल बेचनेवालों की बार बार पुकार के साथ बस कंडक्टर की कान-फाड़ आवाज--

चिकिटी। चिकिटी!

मंडासा। मंडासा!

कटक। कटक!

दोनों समधी रिक्शे से उतरे और राजधानी की बस की ओर चल पड़े। एक तेलुगु कुली और एक उड़िया कुली छोकरे--दोनों ओर से आकर उनका सूटकेस, अटैची खींचने लगे। एक कहने लगा--"पहले मैं आया।" छोटा कुली अटैची छोड़ता ही नहीं। बड़ा उसके मुंह पर घूंसा तान बोला, "ऐसा एक मुक्का जमाऊंगा कि थोबड़ा टूट जायेगा। छाती धुक् धुक् करने लगेगी।"

दोनों समधी बस में जाकर बैठ गये। बस चल पड़ी। छत्रपुर कचहरी का चौराहा पार करने ही वाले थे। छोटे समधी चने-मूंगफली खरीदकर खुद भी चबा रहे थे और बीच बीच में बड़े समधी की ओर ठोंगा कर देते...। छोटे समधी ने कहा, "दस-साढ़े दस बजे पहुंच जाने की बात है। दफ्तर खुलते ही अंडर-सेक्रेटरी से मिल लेंगे। मगर पहले जाकर इंतजार करना होगा जी।" बड़े समधी ने पूछा, "अंडर-सेक्रेटरी क्या है?" जवाब मिला--"अरे समधीजी, इतना भी नहीं जानते? सेक्रेटरी के ठीक नीचे वाला, जी।"

---

1. चप्पल।
2. तिल के लड्डू।
3. पंचांग।

रास्ते में छोटे समधी समझा रहे थे, ''अंडर-सेक्रेटरी और फिर कितनी कितनी जगह जाना है। ट्रांसपोर्ट सेक्रेटरी, उपमंत्री और अंत में जाकर मंत्री जी। ठीक ठीक पंद्रह हजार तो निकल ही जायेंगे, जी, आखिर में ट्रेजरी में जाकर रुपये जमा करना होगा, जी। तब जाकर परमिट की कोई बात...।''

बात असल में यह है कि बड़े समधी ब्रह्मपुर लाइन पर एक बस चलाना चाहते हैं। छोटे समधी ने बस-परमिट से लेकर रूट-परमिट और बस चलाने तक का सारा दायित्व अपने सिर पर लिया है। सुबह नौ बजे से ही कैसी उमस है। बस में बैठना भी मुश्किल हो रहा है। पैसेंजर पसीने पसीने हो रहे हैं। फिर बस पर लदे हैं मछली के टोकरे--ताजा समुद्री मछलियों से भरे। टोकरों से पानी चू रहा है। हवा से छींटे आकर यात्रियों पर गिर रहे हैं। आमिषी गंध से नाक फटी जा रही है। एक ओर के पैसेंजर खड़े खड़े हो-हल्ला करने लगते हैं तो क्लीनर बस रुकवाकर टोकरों को दूसरी तरफ रखवा देता है। फिर दूसरी ओर के पैसेंजर हल्ला मचाने लगते हैं तो टोकरों को इधर सरका देता है।

पैसेंजरों को शांत रखने के लिए ड्राइवर ने रेडियो खोल रखा है। रेडियो प्रोग्राम खत्म होने पर टेप चालू हो जाती है। गीत आ रहा है--

से तो पुरूणा मडैल गाड़ी।
ब्रेक नांई तार, हर्ण नांई तार
जाउ थाए गड़ि गड़ि।
हाय मो पुरूणा मडैल गाड़ी।

(वो तो पुराने मॉडल की गाड़ी है, जिसमें न ब्रेक है और न ही हार्न, बस लुढ़कती-पुढ़कती जा रही है। मेरे पुराने मॉडल की गाड़ी)

फिर पति-पत्नी के द्वैत स्वर में उपसंहार--

पुरूणा घरणि किए ताहा सरि।
नुआठु से बढ़ि... बढ़ि.....''

(पुरानी गृहिणी कौन है उस जैसी? वह तो नयी से भी बढ़कर है। नयी से भी बढ़कर है...।)

एक-दो पैसेंजरों ने टिप्पणी कर ही दी--''इन गीतों का स्टैंडर्ड कितना गिरता जा रहा है!'' दो वकील, ड्राइवर के बगल वाली आगे की सीट पर बैठे थे। उनमें से एक बोला, ''अब क्या उपेंद्रभंज या कवि सूर्य बलदेव रथ, गोपालकृष्ण पट्टनायक, अथवा बनमाली दास हैं? अब तो लारे-लप्पा का जमाना है। कभी ये राष्ट्रीय गीत बन जायेंगे, इस की संभावना से भला इनकार कर सकते हैं?'' दूसरे ने जोड़ दिया, ''हालांकि कई आधुनिक भाषाओं के गीतों का स्टैंडर्ड काफी ऊंचा है। पिछले साल कलकत्ता गया था। उफ् कितने बढ़िया गीत सुनकर आया था वहां से--क्या कहना!''

ड्राइवर बातें सुन रहा था। चेंज करके एक बंगाली गीतों की टेप लगा दी। उड़िया, हिंदी, बंगला, तेलुगु--हर तरह के टेप हैं। कोई कमी नहीं। गीत आने लगा--

आमार खोकार मासी
आमाय देखे मुरकि हासी
(से जे) अम्रितता बाला दासी
आमाय देखे मुरकि हासी
हासिते थाके सर्वनाशी--
आमि तार जन्मे जाबो जेले
परबो गलाय फांसी।

(हमारे छोकरे की मौसी, हमें देख हल्के से हंस पड़ती है। अमृत बाला की दासी हमें देख हंस पड़ती है। हंसी तो जानलेवा है उसकी, हमें उसके लिए चाहे जेल जाना पड़े, चाहे गले में फांसी लगानी पड़े... ।)

गीत का मर्म सबके हृदय को छू गया था। श्रोता कुछ क्षण चकित और स्तब्ध रह गये। किसी ने पूछा, "बाबू रे, जेल क्यों? फांसी क्यों? क्या किया, किसी का खून किया है?"

हुम्मा शहर से चढ़े एक यात्री ने कहा, "अरे रे... खून करने को क्या और लोग नहीं मिलते? क्यों अपनी स्त्री, सास, ससुर, साला कोई बाधा देगा?"

बस राजधानी में आधा घंटे लेट पहुंची। बढ़िया बढ़िया मकान, चौड़े-चौड़े रास्ते। सुबह दस बजे तक भी सुनहली रोशनी वाली बत्तियां बुझी नहीं थीं कई जगह। बिजली विभाग की करामात है। चाहे रात में हजार हजार बत्तियां न ज़लें गली-कूचों में।

तो परमिट मिल गया। एस.एफ.सी. (स्टेट फाइनांशियल कार्पोरेशन) से ऋण भी मंजूर हो गया आखिर। और बस भी आ गयी। अब बड़े समधीजी (नारायण पलाई, जेमादेइ पैठ वाले) और छोटे समधी (के.वी. रघुनाथ महापात्र चेलापल्ली वाले) दोनों को चिंता यह हुई कि बस को क्या नाम दिया जाये? सौदामिनी, सुहागिनी, तारकेश्वरी, वनदुर्गा, या फिर और कुछ? आखिर तय हुआ--'रंगलता।' यही नाम तो समधीजी की स्त्री का है। उन्हें मरे छह वर्ष हो चुके हैं। समधी ने अब दूसरा काम संभाल लिया है। छोटे समधी हो गये बस के पूरे मालिक। सारा हानि-लाभ उन्हीं के जिम्मे रहा।

बस चालू हुए पूरे दो बरस हो गये हैं। टिकट कटती हैं, माल ढोया जाता है, लेकिन पैसा अधिक नहीं आता। कभी तो ड्राइवर और क्लीनर की तनख्वाह के पैसे भी पूरे नहीं पड़ते। ऋण का ब्याज बढ़ता ही जा रहा है। आखिर बड़े समधी ने ध्यान दिया। किसी दूसरी बस में जाकर गंजाम, हुम्मा या रास्ते में जाकर टोह ली। अचानक 'रंगलता' में चढ़कर

टिकट, यात्री, माल वगैरह की जांच की। काफी धांधली मिली। कई बार बस में छोटे समधी से आमना-सामना भी हुआ। छोटे समधी क्या यों छोड़ने वाले थे? उन्होंने मुंह पर ही जवाब दे दिया, ''मैं इतना धंधा नहीं कर पाऊंगा। ये चला।''

एक दिन खल्लीकोट वाले रास्ते पर दोनो समधियों के बीच तू-तू, मैं-मैं हो गयी। बड़े समधी ने देखा, कई यात्री सामान लेकर उतर गये हैं। लेकिन टिकट कटी हैं केवल दो-चार। गुस्से में तमतमाकर पूछा, ''रुपये कहां गये?''छोटे समधी ने कहा, ''आप को यदि इतना अविश्वास है तो आपका-हमारा साझा आज से खत्म। और जिंदगी में कभी मुंह नहीं देखूंगा।''

उस दिन के बाद से दोनों के बीच भेंट-मुलाकात लगभग बंद है। कुछ दिन बाद छोटे समधी ने अपनी बस चालू कर दी। उनको तो सारे रास्ते पता थे। कोई कठिनाई नहीं हुई। बस में इम्पोर्टेड रेडियो लगाया गया। सिनेमा के बढ़िया बढ़िया हीरो के फोटो जड़वाकर टांगे गये। कीमती रेक्सीन की गद्दियां। बस का नाम रखा गया--'सुपर रंगलता।'

ब्रह्मपुर से कटक और कटक से ब्रह्मपुर। रास्ते में दोनों समधियों की दो रंगलता चलने लगीं। दोनों ठाठ से जातीं। देखने वालों की आंखें ठगी सी रह जातीं। लोग हाट-बाजार छोड़ रास्ते के किनारे खड़े होकर दोनों की घुड़दौड़ का खेल देखते।

कौन किसे पार करती है? पिछली बस का क्लीनर हाथ बढ़ाकर चिल्लाकर कहेगा, 'बुद्धू!'--मानो कोई पतंग कोई दूसरी को काट दे और बच्चे चिल्ला रहे हों। देखने वालों के मन में खूब कौतूहल भर देता।

बड़े समधी के साथ मामूली जो संपर्क था, वह भी छोटे समधी की बस चलने लगी तब से टूट गया। अब ब्रह्मपुर या छत्रसाल में एक-दूसरे से सामना होने पर अंगोछा डाल रास्ता पार कर लेते हैं।

दोनों बसें दस-पंद्रह मिनट के अंतर से छूटती हैं। रास्ते में भेंट होने पर आगे निकलने को आतुर हो उठती हैं। दोनों के बीच होड़ चल पड़ती है। एक रास्ते में यात्री उतरने या माल उतारने में देर कर देती है, या जहां हाल्ट न हो वहां भी यात्री चढ़ाने लगती है, तो दूसरी बगल से रास्ता काट सर्राटे से आगे बढ़ जाती है। इसके बाद पीछे रह जाने वाली बस को उसका पता भी नहीं मिलता रास्ते भर।

रोज की तरह उस दिन भी दोनों 'रंगलता' सुबह कटक बस-स्टैंड से चलीं। 'सुपर रंगलता' में पुरी के यात्री चढ़े हैं। भुवनेश्वर उतरकर बस बदल लेंगे वे लोग। कुछ अध्यापक, कालेज के लड़के, डेली पैसेंजर, हाई स्कूल की टीचर्स, जो कुछ दूर जाकर अपनी-अपनी जगह उतरेंगी, और एक आपेरा पार्टी के कुछ लंबे बालों वाले लोग।

पुरी के दो यात्री आपस में गप्पें शुरू कर चुके थे। एक ने कहा, ''समधी जी, श्रीक्षेत्र में मौनावतार विराजमान हैं। उनकी महिमा आदमी क्या जाने? ब्रह्मा, इंद्र, वरुण, नारद, सनक[1] भी युगों की तपस्या के बावजूद नहीं जान पाये।''

---

1. एक तपस्वी

दूसरे ने कहा, "मौनावतार क्या है? शास्त्र-पुराण में तो यह नाम कहीं भी मिलता नहीं। मत्स्य, वराह... ।"

पहले ने बात रोककर कहा, "नहीं, नहीं... हैं। मौनावतार हैं। जब कलियुग आया, तब भगवान ने कलि को पुकारकर कहा--जा, तू जा।' कलि ने हाथ जोड़कर कहा--'महाप्रभु, जाऊंगा नहीं। आप को जो करना है, कर लें।'

"भगवान घोर समस्या में पड़ गये। द्वापर के बाद कलि अगर न आये तो सृष्टि का नाश हो जायेगा। कलि को भगवान ने फिर समझाया। पीठ थपथपायी, 'क्यों नहीं जायेगा, फिर दुनिया चलेगी कैसे?'

"कलि ने कहा, 'मैं जाऊं तो जो कुछ होगा वह आप जानते हैं। चारों ओर घोर भ्रष्टाचार घिर जायेगा। बेटा बाप को नहीं मानेगा। शिष्य गुरु को पीटेगा, बहू पीटेगी सास को। घी में गाय की चर्बी और तेल में जला हुआ मोबिल धड़ल्ले से बिकेगा। दुकानदार इन मिलावटी चीजों को खांटी शुद्ध बताकर बेचेगा। धरती पर झूठ और घूस का बोलबाला होगा। मंत्री, एम.एल.ए. सब घूसखोर बन जायेंगे। काले धन से देश भर जायेगा। खुशामदियों की बन.आयेगी। दिन-दहाड़े खून, डकैती, लूट, नारी-हरण होंगे--और आप ये सब सह नहीं पायेंगे। जरा सी बात में दौड़े आयेंगे और मुझे डांटेंगे, हिदायत देंगे, मैं इतना झंझट में पड़ना नहीं चाहता... ।'

"भगवान विष्णु ने टोककर कहा, 'बस बस। मैं सब जानता हूं। यह सब तो होगा। मगर इसी में हमारी महिमा प्रकट होगी। तुम्हें हर हाल में जाना होगा। मैं तुम्हारे आगे वादा करता हूं, तुम्हारे किसी काम में बाधा नहीं दूंगा। मौनावतार होकर बैठा रहूंगा।' और तब से भगवान मौनावतार बनकर शंख-क्षेत्र[1] में विराज रहे हैं... ।"

इधर दोनों विज्ञान के अध्यापक आपस में तर्क में उलझ चुके थे। उनकी बहस करीब करीब चरम तक पहुंच चुकी थी। चर्चा का विषय था--गति तत्व। प्रकाश की गति समय को लांघ जायेगी। कोई वस्तु प्रकाश की गति पा ले, तो फिर समय काम नहीं करेगा।

ठीक तभी 'रंगलता' पीछे से हार्न बजाते हुए तेजी से आगे आ रही है। रास्ता देने के लिए हार्न दे रही है। संयोग ऐसा कि उस दिन छोटे समधी ड्राइवर की सीट के पास बैठे थे। ड्राइवर को हुक्म दिया--"दौड़ा दो। साइड न देना।" पिछली बस में बड़े समधी थे। उन्होंने भी हुक्म दिया--"हर हाल में अगली गाड़ी को क्रास करना है, पार कर दो।" और दोनों बसें जान की बाजी लगाकर भागी जा रही थीं।

कभी 'रंगलता' अगली बस की बगल में जाकर आगे निकलने की चेष्टा करती तो 'सुपर रंगलता' फर्राटे से राह रोक आगे निकल जाती और उसे रास्ता नहीं देती।

अध्यापकों के तर्क-वितर्क में सरगरमी आ चुकी थी। एक कहने लगे, "चालीस बरस पहले हमारी गति थी--बैलगाड़ी से प्रतिघंटा चार मील या घोड़े की पीठ पर बीस मील प्रति

---

1. पुरी का एक नाम।

घंटा। अब हम करीब करीब शब्द की गति हासिल कर चुके हैं--रॉकेट की सहायता से। आदमी का लक्ष्य है प्रकाश की गति हासिल करना। तब वह समय को जीत सकेगा। चंद्रमा के प्रकाश को हम तक आने में एक सेकेंड से कुछ अधिक लगता है। आदमी यदि महाआकाश में तीन प्रकाश-वर्ष बिता आये, तो यहां हमारी पृथ्वी पर तीन सौ बरस बीत चुके होंगे। कितनी विचित्र है यह गति।''

'रंगलता' दौड़ती आ रही है। बस, 'सुपर रंगलता' को पार कर ही जायेगी। 'सुपर रंगलता' और तेज हो गयी। दाहिनी ओर मेटल और मोरम का ढेर। रास्ता काटकर आगे जाने का कोई डर नहीं। छोटे समधी घुटनों के बल झुककर कह रहे हैं, ''चला और तेज कर, दौड़ा दे... निकल जा। देखें, कैसे जाता है?''

बड़े समधी पीछे 'रंगलता' के ड्राइवर को कह रहे हैं--''चला यार, और जोर से। जो होगा, मैं हूं। देख लूंगा।''

दोनों ड्राइवर स्टीयरिंग पर झुके पसीने में तर-बतर चला रहे हैं। पैसेंजर भी अपनी अपनी सीट पर से उठकर--'चला चला' की आवाज लगा रहे हैं। कोई कहता है कि पिछली बस उसे पार कर जाये। पिछली बस के यात्री भी वैसे ही हो-हल्ला कर रहे हैं, ''चला, चला... और जोर से। अगली बस को हर हालत में पार करना है। जीत ले बाजी।''

एक अजीब नशा सब पर चढ़ा है। सब मानो मतवाले हो रहे हैं इस कंपीटीशन के नशे में। दोनों बसों के यात्री, बस कहे जा रहे हैं--''चला, और जोर से चला।'' कोई हार मानना नहीं चाहता। यह विजय मानो सब की विजय है।

दोनों अध्यापक अब तक अपनी सीट पर बैठे उत्तेजना से देखते रहे। अब दोनों उठ पड़े। खुद भी रूमाल हिलाकर सब के साथ स्वर मिलाकर ड्राइवर को उत्साहित कर रहे हैं।

रास्ते के किनारे वाहनों की गति नियंत्रण करने के लिए गड़े सावधानी की सूचना के खंभे एक के बाद एक तीर की तरह पीछे छूटते जा रहे हैं--

'द मिनट यू सेव बाइ स्पीडिंग मे बी योर लास्ट।'[1]

'स्पीड इज थ्रिलिंग, बट किलिंग।'[2]

मगर उधर किसी का ध्यान ही नहीं। सामने नमक की बैलगाड़ी आ रही है। जरा गीयर बदलकर फिर पहले वाले गीयर में लौट जाने की व्याकुलता। ऐक्सीलरेटर पर से पांव हटाये कौन?

आगे है ऋषिकुल्या नदी का पुल। यहां अगर बगल से आगे नहीं निकले तो फिर और आगे नहीं जा सकेंगे। 'रंगलता' हार्न देकर किनारे आ गयी। 'सुपर रंगलता' रास्ता रोकने के प्रयास में खूब जोर से उससे भिड़ गयी। एक जोरदार धमाका। आस-पास के

---

1. रफ्तार तेज करने से जो मिनट आप बचाते हैं, वही आपके लिए अंतिम मिनट हो सकता है।
2. तेज रफ्तार में मजा तो आता है लेकिन मौत भी आती है।

लोग-बाग चौंक पड़े।

आगे एक पेड़...।

....

और फिर सब समाप्त!

अगले दिन अखबार में छपा--'ऋषिकुल्या नदी वाले पुल पर दो बसों में टक्कर होने के कारण दोनों बसें उलटकर चकनाचूर हो गयीं। घटना-स्थल पर ही दोनों बसों के मालिक, ड्राइवर और क्लीनरों की मृत्यु हो गयी। दस यात्रियों की भी दोनों बसों में जानें गयी हैं। अनेक यात्री गंभीर रूप से घायल हो गये। आहतों को इलाज के लिए ब्रह्मपुर मेडिकल कालेज में भरती करा दिया गया है। पता चला है कि आहतों में दो अध्यापक भी हैं। उनकी हालत गंभीर बतायी जाती है।'

जंगल

इस जंगल का कोई खास नाम नहीं है। पूरा इलाका ही 'करमल' कहलाता है। फिर भी स्थानीय लोग पास वाले हिस्से को 'बेरणा-लता' कहते हैं। नटवर फरेस्ट-गार्ड बनकर इधर आया है। दो बरस में ही यहां अच्छी तरह आसन जमाकर बैठ गया है। जंगल के ठेकेदारों के साथ उसकी सांठ-गांठ है। उन्होंने कुचला का ठेका लिया है, लेकिन बड़े बड़े साल, पी साल काटकर ट्रक में भर ले जाते हैं। सुना तो यहां तक जाता है कि नटिया मोटी रकम लेकर चुपके से उन्हें छोड़ देता है या फिर जाली चालान दे देता है। ये बातें रेंजर बाबू से कई बार कही जा चुकी हैं। कितनी ही रिपोर्टें ऊपर भेजी जा चुकी हैं, लेकिन कुछ नहीं होता। लोगों का कहना है कि ऊपर वाले नटिया की जेब में हैं, हालांकि इसी बीच जंगल साफ होता जा रहा है। कोई उसका बाल भी बांका नहीं कर सकता। नटिया रूपास गांव में चाय की दुकान के आगे बैंच पर बैठा चाय पीते पीते मूंछों पर ताव देता है, "देखें, कौन साला मेरा क्या बिगाड़ लेगा? इस लट्ठ से खोपड़ा खोल दूंगा।"

उस गांव के डाकिये भ्रमर पर नटिया सबसे अधिक नाराज है। कभी कभी सोचता है--पीट-पीटकर मार डालूं और लाश लेकर जंगल में फेंक आऊं, किसी को पता भी नहीं चलेगा। थानेदार बाबू के साथ उठना-बैठना है उसका। एक-दो बार बुलाकर थाने के बाबू ने लकड़ी की चोरी के बारे में पूछताछ की है। नटिया की कैफियत से वे संतुष्ट हैं--ऐसा नटिया का ख्याल है।

भ्रमर ने नटिया के दूर के रिश्ते की मौसी की बेटी से ब्याह किया। तब नटिया जयपुर रोड पर डिपो में था। तब सुलोचना को घर लाने की वहुत इच्छा थी। इसके लिए उसने कुछ भी उठा नहीं रखा। शरधा जीजी, कुलू बाबू आदि को बीच में रख दामा पुहाण बाबा की बहुत खुशामद की।

लेकिन उसकी वह लफंगाई आदत, उसके बेढंगे स्वभाव को देखकर मां-बाप या सुलोचना कोई भी राजी न हुआ। फिर वह उन दिनों ठेके का काम या बदले में काम करता था। कोई फारेस्ट-गार्ड छुट्टी पर जाता तो महीने-दो महीने उसकी जगह काम कर लेता। फिर वही बेकार का बेकार।

नटिया ने उस रोज पोखर के पास धमकाया था, "देखता हूं, तुझसे कौन ब्याह करता है? मैं ठिकाने लगा दूंगा।" आज तक सुलोचना भूली नहीं वह बात। नटिया की भंगिमा और आवाज कभी कभी याद आ जाती है तो वह घबरा जाती है।

नटिया बनाम नट, बनाम नटवर की मोटी मोटी बाघ की मूंछें, उन पर चपटी नाक और हड़ीले गाल देखकर कोई भी डर जायेगा। बचपन से ही सुलोचना को उससे कोफ्त रही है। फिर उस की टेढ़ी-मेढ़ी आदत, कड़ा मिजाज और उस पर आगे बढ़कर मामलातकार बनने की आदत--शुरू से ही उसके प्रति मन में घृणा भर चुकी है। अब तो लंबे लंबे बालों, मूंछों व कली के कारण एकदम अजीब लगता है।

उस दिन गांव में यात्रा(मेला) हो रही थी। जखरा ऑपेरा पार्टी 'कंसासुरवध' स्वांग का प्रदर्शन कर रही थी। भ्रमर और सुलोचना गांव में स्वप्नेश्वर महादेव मंदिर के आगे यह स्वांग देख रहे थे। नट भी एक पिक्का सुलगाये हुए यात्रा देख रहा था। बीच बीच में जब सखी-बच्चे का कोई नाच, गीत आता तो वह अश्लील टिप्पणियां करने से नहीं चूकता। यात्रा खत्म होने के बाद धक्कम-धक्का करते लोग लौट रहे थे। सुलोचना को लगा, बायीं ओर पीछे से किसी ने हाथ बढ़ाया है। कसकर उसकी छाती को भींचकर भीड़ में कहीं गायब हो गया। चीखते हुए उसने भ्रमर को आवाज दी। भीड़ में भ्रमर कुछ कदम पीछे छूट गया था। उसने दौड़कर आगे आकर पूछा, "क्या बात है?"

आगे नटिया जा रहा था। उसे दिखाकर इशारा किया। भ्रमर ने पीछे से जाकर नटिया को पकड़ा। नटिया बहाना बनाते हुए बोला, "क्या... क्या बात है? किसके बदले किसे पकड़ रहे हो?"

दोनों में तू-तू, मैं-मैं हो रही थी। कुछ बस्ती के लोग इकट्ठे हो गये। आखिर बीच-बचाव हुआ। नटिया और भ्रमर ने एक-दूसरे को कहा--"ठीक है, देख लेंगे!"

तब से सारे गांव में यह बात फैल गयी कि नटिया और भ्रमर में ठन गयी है। जल्दी ही कुछ-न-कुछ होगा।

दो दिन बाद। हाट वाले दिन मदन साहू की दुकान के आगे नटिया ने सबको सुनाकर कहा, "मैं उसका खून पी जाऊंगा।" उधर भ्रमर ने भी कुछ दूर कांसा-पीतल की दुकान के आगे सना बेहरा को सुनाकर कहा, "मैंने उसे खत्म न कर दिया तो मेरा नाम भ्रमर साहू नहीं।"

क्रमशः दिन बीतते गये। लोग-बाग धीरे धीरे नट-भ्रमर के झगड़े-झंझट की बात भूल गये। छह-सात महीने निकल गये इसी तरह। एक दिन तड़के ही सुलोचना जंगल की ओर दौड़ी दौड़ी हांफती सी आकर घर में घुसते ही अचेत होकर गिर पड़ी। भ्रमर और कुछ युवक उधर पास खड़े बतिया रहे थे। दौड़ आये, किसी तरह सुलोचना को होश में लाया गया। पूछा, "बात क्या हुई?" सुलोचना ने होश में आने के बाद धीरे धीरे बताया--"सांझ तक जब बछिया नहीं आयी तो मैं ढूढ़ने जंगल की ओर गयी थी। कोई झुरमुट से निकल अचानक

आ झपटा। खींचा-तानी चली। आम के पेड़ तले खींचता ले गया। जान बचाकर किसी तरह भागी, गिरती-पड़ती आ पहुंची। बावरानियां सिर पर कांटों का बोझ लिये जंगल से लौट रही थीं। उन्होंने भी हल्ला मचाया। मगर वह तो अंधेरे में भाग गया।''

''कौन था वह?'' सबने एक स्वर में पूछा।

''नट भाई।'' सुलोचना ने धीरे से कहा।

बस भ्रमर फरसा लेकर नटिया के घर की ओर तेजी से दौड़ पड़ा। साथ थे चार-पांच छोकरे। हाथों में लाठियों से लैस। नटिया पिछवाड़े बाड़ी में से होते हुए जंगल भाग गया। आठ-दस दिन तक गांव में वह दिखायी नहीं पड़ा। इसके बाद गांव लौटा तो भ्रमर उसकी ताक में रहने लगा।

गांव में काना-फूसी हुई--'बस, दोनों में से एक कोई जायेगा।' गांव के नाले के पुल पर बैठा पैर हिलाते नट कह रहा था, सब को सुना-सुनाकर--''अबकी देख लूंगा उसे।'' भ्रमर भी महादेव मंदिर के आगे सबको सुनाकर कह आया, ''जब तक उसे जिंदा न जला दूंगा, चैन से नहीं बैठूंगा।''

गांव में कुछ युवकों में चर्चा चली--''देखना है, अब पहले कौन किसे खत्म करता है? भगवान ही जाने।''

बरसात शुरू हो गयी। बिजली और बादलों की गड़गड़ाहट से सारा जंगल कांप रहा है। मलाशुणी नदी और गांव के बीच से गुजरते नाले का पानी उफनकर गांव में चारों ओर फैलने लगा। सुबह तक सारे गांव में घुटनों तक पानी भर गया। उधर जटिया पहाड़ की चोटी से धार आकर चारों ओर भर रही है। बांस का बेड़ा बनाकर लोगा आवाजाही कर रहे हैं। गांव के बीच में ऊंचे टीले पर दाल, चावल, सब्जी, दुकान से लाकर रसोई बना रहे हैं। लोगों के घरों में पानी भर गया है। हर वर्ष कुछ दिन गांव वालों को यही सब भोगना पड़ता है। सबके घर एक एक डोंगी बाहर वाली छान से बंधी होती है। गांव में बाढ़ का पानी घुसने पर लगातार छह-सात दिन इधर-उधर डोंगी से ही आ-जा पाते हैं--यहां तक कि निकट के अड़ोस-पड़ोस में भी। बाढ़ के साथ आती है महामारी, खांसी, सर्दी, हैजा। टीले पर छोटा सा स्वास्थ्य-केंद्र है। कोई कोई डोंगी में जाकर वहां से दवादारू ले आता है। कोई मर जाये तो 'जय गंगा मैया, तेरी शरण...!' कह बहा देते हैं। बरसात के बाद परवल, गोभी, टमाटर, बैंगन, आदि खूब होते हैं। परवल तो पच्चीस पैसे किलो हो जाता है। गांववाले सब्जी लाकर कटक में डेढ़ रुपये किलो में बेचते हैं। फागुन-चैत में फूलों की महक, आम और बकुल की सुगंध से समूचा जंगल बौरा जाता है।

सारा जंगल ऐसी बरसात--हवा में भीग रहा है। रात होते ही अंधेरे में पेड़-पौधे कुछ नहीं दिखते। सब मिलकर अंधेरे का अंश बन जाते हैं। जीवन का जैसे उनमें निशान भी नहीं रह जाता। कहीं कोई संकेत नहीं रह जाता।

जंगल में भी बाढ़ का पानी भर गया है। सांप, गीदड़, सियार, हिरण वगैरह पानी की

धार में बहकर गांव के किनारे आ लगते या उस अथाह जल में बह जाते हैं।

बरसात कुछ थम गयी थी। नट एक डोंगी में बैठा जंगल की ओर चल पड़ा। साथ लिये है छाता और लालटेन। आज उसकी चैक-गेट पर ड्यूटी है। गेट के पास की गुमटी में वह खिड़की-दरवाजा सब बंद करके बैठ गया है। आंधी-वर्षा का मौका देख कंट्रैक्टर का ट्रक भी जंगल में घुस आया है। बड़े बड़े साल के पेड़ काटेंगे। लादकर भरा ट्रक लेकर लौटेंगे। नट पेड़ की कटाई की आवाज सुन रहा है। लेकिन वह कर क्या सकता है इस समय? कुछ समय बाद ट्रक आकर चैक-गेट के पास रुका, ऊपर से बांस की रुकावट हटाने के लिए हार्न बजाया। नट ने अनसुना कर दिया। अचानक ट्रक से दो-तीन कुली उतर आये। नट को घसीट लाये। चाबी मांगी। मगर नट ने चाबी नहीं दी। कहा, "रात में गेट खोलने की इजाजत नहीं है। रेंजर बाबू ने मना कर रखा है, सवेरे आकर चौकी का ताला देखेंगे--मेरी नौकरी गोल हो जायेगी। बिना पास के मैं गेट नहीं खोल सकता।"

नट की कसकर पिटाई कर दी गयी। बेहोश करके गेट तोड़कर ट्रक लेकर भाग निकले। तब रात के दो बज रहे थे। आसपास कोई लोग-बाग नहीं। जंगल सांय सांय कर रहा था।

सुबह होते ही छोटी डोंगी में बैठ भ्रमर निकला, गांव में डाक बांटने के लिए। फारेस्ट-रेंजर की डाक अधिक होती है। जाकर चैक-गेट की गुमटी में झांककर देखा खिड़की से। देखा, नट बेहोश पड़ा है। बस, गों गों कर रहा है। दोनों जबड़े खून में सने हैं। मुंह लाल हो गया है। मक्खियां भिनभिना रही हैं।

किवाड़ पर धक्के मारे। नट न हिला, न डुला। कुछ उठाया, कुछ घसीटा, फिर डोंगी पर लिटाया। ले चला गांव के स्वास्थ्य-केंद्र की ओर--गांव के बीच वाले टीले के पास और फिर डाक्टर बाबू के जिम्मे सौंपकर चल पड़ा चिट्ठी बांटने के लिए।

कई घंटों बाद नट को होश आया। डाक्टर बाबू से सारी बातें सुनकर उसे कानों पर विश्वास नहीं आया। भ्रमर का ऋण कैसे उतारूं? पिछली बातें, झगड़ा-फसाद सब भूल गया।

कुछ दिन बाद की बात है। दुकानदार मोहिनी साहू ने भ्रमर से कहा, "नटिया आया था। वह तो बस तेरे ही गुण गा रहा था, बोला, 'भ्रमर भाई ने मेरी जान बचा ली, जीवन में उसका ऋण कभी नहीं चुका सकूंगा।'... पछता रहा था।"

भ्रमर का मन भी खूब नरम हो गया। फिर भी कहीं भेंट हो जाने पर नटिया से बात करने में उसे संकोच लगता। नट भी दिल खोलकर उससे बातचीत नहीं कर पाता। दोनों एक-दूसरे को देखकर अपने अपने रास्ते चले जाते।

महीने-दो महीने बाद नटिया ने सुना--साईकिल-दुकानदार समसेर कह रहा है, "भ्रमर ने तेरे लिए क्या कुछ नहीं किया, भगवान ने इतनी बड़ी विपदा से बचा लिया। जाको राखे सांइयां, बाल न बांका होय।"

नट सब सुनता रहा। मगर भ्रमर को बुलाकर कुछ कह नहीं पाता। भ्रमर भी सब

सुनता रहता, मगर नट को कुछ कह नहीं पाता। बस, आमने-सामने पड़ते तो दोनों के चेहरों पर जरा मुस्कान खिल उठती, फिर कहीं लीन हो जाती।

ऐसे ही कई महीने बीत गये। उस दिन नटिया ने बस्ती में सुना--सुलोचना पेट से है। दो महीने बाद वह मां बन जायेगी।

रेंजर बाबू ने उस दिन हिरण मारा था। नटिया को बुला उसे दो किलो मांस दिया। पता नहीं उसके सिर में क्या सनक चढ़ी। जाकर भ्रमर के दरवाजे हाजिर। सुलोचना और भ्रमर बरामदे में बैठे बतिया रहे थे। नटिया अनायास कह उठा--"भंवरा भैया, ओ सुलू बहन! ये मिरग मांस तुम रखो। तरकारी बना लेना। मुझे रेंजर बाबू ने दिया है।"

भंवरा और सुलोचना--दोनों के ओठों पर हल्की सी मुस्कान बिखर गयी--"सारा हमें ही क्यों दे रहे हो? आधा तुम भी रखो।"

नटिया ने ठहाका लगाया, "मेरे किस काम का? मैं तो मुरारी बाबा के होटल का ग्राहक हूं। मेरे लिए भला कौन पकायेगा?"

भ्रमर ने कहा, "नटिया रे, तुम ऐसा करो... आज रात हमारे घर खाना खा लेना। न्यौता रहा!"

सुलोचना तो लाज में गड़ गयी। उसने एक बार नटिया के चेहरे की ओर देखकर मुंह नीचा कर लिया।

नटिया ने कहा, "ठीक है। बहन के घर से न्यौता आया है, कोई कैसे मना करेगा? मगर कहां, बहन तो कुछ बोलती ही नहीं मेरी...।"

सुलोचना तो लाज में गड़ गयी। फिर हंसकर कहा--"हां हां,... तू आज हमारे घर खाना खायेगा, नट भैया!"

जागीर

गुणुपुर करद[1] राज्य था। लेकिन देशी रियासतों के विलय के बाद वह मुगलबंदी[2] में आ गया। प्रजामंडल के लोगों की खुशी का पारावार न था। यह राज्य पास के जिले में शामिल हो गया। मानचित्र ही बदल गया। बदल गयी सारी प्रजा के मन और भावना की रूपरेखा। उनका सपना सच हो गया। अब राजा रहें तो भी उनके हाथ में कोई क्षमता नहीं रहेगी। अब बेगार, भेंट, मुफ्ती या हांके में सैकड़ों लोगों के प्राणों का बलिदान नहीं होगा। सब स्वतंत्र भारत के निवासी होंगे। अन्याय, अत्याचार और मन-मर्जी का शासन नहीं चलेगा। कितने लोग स्वतंत्रता आंदोलन में जेल गये, मरे, गोलियां खायीं, फांसी के फंदे पर लटके। अंग्रेज सरकार ने बार बार फौज भेजी... लोगों पर अकथनीय अत्याचार किये। घरबार लूट लिये। सेना ने बाल-बच्चों पर अत्याचार किया, औरतों की इज्जत लूटी, मान-मर्यादा गयी।

फिर भी आंदोलन दबा नहीं, वरन् दिनोंदिन अधिक सुलगता गया। इन सूखे हाड़ों में इतनी हिम्मत, इतनी हिम्मत कहां छिपी हुई थी आज तक?

आखिर अंग्रेज सरकार को जाना पड़ा। कुछ ही दिनों में राजे-रजवाड़े भी चले गये।

पहले रजवाड़े के दिनों में कई लोग--जो राजा के करीब होते--तरह तरह से कर-मुक्त जागीर पा जाते थे। ये लोग पूजापंडा के काम से लेकर 'भीतर परिछा' और 'बाहर परिछा'[3] तक का काम करते थे और कुछ होते थे कीर्तनिया, जिनका काम होता था--जब किसी को महल में पकड़ खास कोठरी में बंद करके उसकी पिटाई की जाती तो उसकी आर्त चीख-पुकार को रोकने के लिए कमरे के बाहर जोर से मृदंग-करताल बजाकर हरिनाम का कीर्तन करना। कई कई एकड़ कर-मुक्त जागीर मिली हुई थी इसके लिए।

रजवाड़े समाप्त होने के बाद राज्य सरकार की ओर से नयी व्यवस्था हुई है--फिर से बंदोबस्त होगा, नया खतियान होगा। किसकी कितनी जागीर है, कर देता है या कर-मुक्त

---

1. किसी देशी रियासत को कर देने वाला उप-राज्य।
2. ब्रिटिश भारत के अंतर्गत अर्थात वह इलाका जहां सीधे भारत सरकार का शासन था।
3. रनिवास और महल में पहरेदारी का कार्य, ताकि रानियों व बांदियों में से कोई बाहर न जा सके और न ही कोई बाहर का व्यक्ति उनसे मिल सके।

जागीर है--इसकी तहकीकात होगी। तब सरकार की नीति थी कि पुरानी प्रथा में ज्यादा अदल-बदल न की जाये। वरना लोगों में असंतोष फैलेगा।

इसके लिए खास नियुक्त तहसीलदार एवं स्थानीय तहसीलदार के इजलास में कागजात, दलील, दस्तावेज, पावती आदि की जांच चल रही थी। सैकड़ों जागीर भोग करने वाले लोग कागजात लेकर कचहरी में जमा होते और अपना अपना दावा पेश करते। उसे साबित करने की कोशिश करते। कचहरी का सारा अहाता लोगों से भर जाता।

उस दिन ग्यारह बजे एक मंझोले कद का कंध बारह कोस से पैदल चलकर आया था। अफसर के आगे हाजिर हो गया। उसकी देह एक दम काली। लंबा-चौड़ा आदमी। माथे पर लगाये है रुपये के आकर जितना देवी के सिंदूर का टीका। गले में डाल रखी है खुली माला। सिर पर बड़े बाल, पीछे गांठ लगा रखी है उनमें। घनी मूंछें, हाथ में उसके बड़ी सी कटार है। वह भी मां के सिंदूर में चमचमा रही है। उसे देखकर हट्टा-कट्टा जवान भी डर जाये। कचहरी के दरवाजे पर खड़ा चौकीदार सिपाही उसे रोकने जा रहा था। उन लोगों को धकेलकर वह सीधा हाकिम के कमरे में घुसा। उसे देखकर हाकिम, पेशकार, अमीन, अमला--सब घबरा गये।

उसने हाकिम को सलाम किया। सिंदूर-पुती कटार उनके चरणों में रख दी। हाकिम उसे देख हक्का-बक्का रह गये। उस आदमी ने कहा, "हुजूर, मेरा नाम पाणु कंध है। करमोल परगने के दिशारी मौजा में मेरा घर है।...उधर जहां पहाड़ के नीचे बिंबलेई देवी का मंदिर है, उसी के पास।"

हाकिम ने पूछा, "किसलिए आये हो? यहां क्या काम है?"

पाणु कंध ने कटार दिखा दी, "हुजूर, आपसे एक बात कहने आया हूं। मैं दस एकड़ कर-मुक्त जमीन-जागीर का भोग करता था।"

हाकिम ने कहा, "कैसी जागीर?"

पाणु कंध ने गला साफ करके हाथ जोड़कर कहा--"जी हुजूर, गलकटिया जागीर।"

हाकिम मुगलबंदी की तरफ के आदमी ठहरे। कुछ नहीं समझ सके। अतः पाणु ने कहा, "हुजूर, मेरा काम था, हर साल दशहरे के दिन बिंबलेई देवी के आगे एक आदमी की बलि देना।"

हाकिम आश्चर्य में भर कर जिस-तिस की ओर देख रहे हैं। पाणु ने कहा, "हम दस पीढ़ी से यही काम करते आये हैं, हुजूर! इन राजा के बाप, बूढ़े राजा, उनके भी बाप ठाकुर राजा--सब हमें पुरस्कार देते रहे हैं। इन देवी की स्थापना चार सौ बरस पहले किसी राजा ने की थी।"

हाकिम ने पूछा--"कैसे पुरस्कार? किसके लिए?"

पाणु ने हाथ जोड़कर कहा, "हुजूर! आदमी की बलि देकर, उसकी जीभ को गले से काटकर, राजा मणिमा को दिखाने पर वे धोती-जोड़ा, गमछा, कुछ रुपये बख्शीश में देते।"

उसके बाद पाणुआ चुप हो गया। पता नहीं, क्या सोचने लगा। हाकिम ने सवाल दुहराया।

पाणुआ ने हाथ जोड़कर कहा--"मैं आपसे सच कहूंगा साहब, आप धर्मावतार हो। मैं आपसे कुछ भी छुपाऊंगा नहीं। मैंने तीन की बलि दी है। पहले मेरे बापू यह काम करते थे। वे तीन साल पहले बाघ के पेट में चले गये। तबसे यह काम मैंने लिया। मैं मजबूत, हट्टे-कट्टे छोकरों को यह लालच देकर कि हरिण कुरंगया या कोई चिड़िया मार दूंगा, उन्हें फुसलाकर मां के पास ले आता। उनका सिर काट देता। मरने के बाद जीभ को गले के पास से काटता और बाकी लाश घने जंगल में फेंक आता।"

हाकिम और समूची कचहरी अवाक्! किसी के मुंह से कोई बोल नहीं निकला। कुछ देर बाद हाकिम ने अन्य अफसरों के साथ कुछ सलाह की। पाणुआ से पूछा--"अब क्या चाहते हो?"

पाणु ने कहा, "मैं इस कर-मुक्त जागीर का हकदार अब और नहीं हूं। मैंने मां का काम छोड़ दिया है। मां की जमीन लेने का हक कहां? अब मैं आगे से इस जमीन का लगान दूंगा। कर-मुक्त जागीर निकाल लें। पर लगान देकर खेती करूंगा।"

हाकिम-हुक्काम सब चुप, बुत बने बैठे रहे। किसी के मुंह में कोई शब्द न था वहां।

समाधि

1817 ईस्वी की बात है। डेढ़ शताब्दी से अधिक हो गया। खोर्धा में तब पाइक विद्रोह शुरू हो चुका था। विद्रोह कर घुमुसुर के कोई चार सौ कंध धनुष-तीर, तलवार, खांडा लिये खोर्धा पहुंच चुके थे। खोर्धा की पाइक सेना उनके साथ थी। चारों ओर विद्रोह की आग जल रही थी। पाइक सेनापति आह्वान कर रहे थे--''हे पाइक, हे पाइक, फिरंगी को भगाओ।'' विद्रोही खोर्धा से कुछ दूर गंगपाड़ा में डेरा डाले हुए थे। कुछ विद्रोहियों ने बाणपुर पर आक्रमण कर सरकारी इमारतों में तोड़-फोड़ कर डाली। कुछ कर्मचारियों को भी मारा, पीटा। विद्रोह का दमन हुआ। दो अंग्रेज जज खोर्धा में बैठकर अपराधियों के विरुद्ध मुकदमा सुन रहे थे। सैकड़ों लोगों को फांसी का हुक्म सुनाते जा रहे थे। विद्रोहियों को आस-पास के बड़े बड़े दरख्तों पर लटका देते। फांसी का यही कारगर तरीका था। दूसरी ओर से अंग्रेज पलटन खोर्धा आ रही थी।

इधर बरुणाई घाटी खून में लाल। फिरंगी और पाइक सेना, कंध-कोल-शवर--सबके खून की धारा मिलकर रक्त-गंगा हो रही थी। खोर्धा के राजा को ओड़िसा का गजपति महाराज कहा जाता है। उन्होंने भी विद्रोह में भाग लिया था। खोर्धा गढ़ को ताप का निशाना बनाया। गोलों से गढ़ की दीवार जगह जगह से कमजोर पड़ गयी।

उस दिन अंग्रेज व पाइक सेना के बीच तुमुल युद्ध चल रहा था। अंग्रेज-वाहिनी के कमांडर थे मेजर रिचर्डसन। विद्रोही सेना का संचालन कर रहे थे छुआल सिंह। दोनों ओर काफी लोग मृताहत हो चुके हैं। अब रिचर्डसन और छुआल सिंह आमने-सामने थे।

छुआल सिंह की तेज तलवार रिचर्डसन का कंधा उड़ा गयी। घोड़े से धराशायी होने से पहले उन्होंने छुआल सिंह को भी प्राणांतक चोट पहुंचायी। दोनों धरती पर एक-दूसरे की ओर एकटक देख रहे हैं।

पहले रिचर्डसन ने कहा, क्षीण स्वर में--''मरने से पहले मैं ओड़िया पाइक की वीरता देख सका। परम सौभाग्य है मेरा। मैं तुम्हें सैल्यूट करता हूं, पाइक सेनापति।''

छुआल सिंह का जीवन-दीप बुझने जा रहा है। उन्होंने भी क्षीण स्वर में कहा--''मैं भी आपको नमस्कार कर रहा हूं, वीर अंग्रेज! आप अपने देश के लिए लड़ रहे हैं। अपने

राजा के आदेश का पालन किया है। आपका कोई कुसूर नहीं।"

रिचर्डसन कह रहे थे--"आपने प्राण दिये हैं अपने देश की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए। इससे बढ़कर महान मृत्यु एक सैनिक के लिए और क्या होगी?"

दोनों ने हाथ मिलाने के लिए हाथ बढ़ाये। मगर दोनों का खून काफी बह चुका था। कमजोरी के कारण हाथ बीच में ही रह गये। किसी का हाथ किसी को स्पर्श नहीं कर सका।

युद्धभूमि में ही दोनों की समाधि बनी। रिचर्डसन को पूरे समारोह के साथ यूनियन जैक में लपेटकर समाधि दी गयी। कुछ दिन बाद वहां एक विशाल स्मृति-स्तंभ खड़ा हो गया। दूर से ही दिखता है।

छुआल सिंह की समाधि कुछ दूर उनकी चिताभस्म पर बनी। उनकी समाधि छोटी थी--रिचर्डसन की समाधि से आधी होगी।

शुभ्र चंद्रलोक में दोनों श्वेत स्तंभ मानो एक-दूसरे को देख मुस्कुरा रहे हैं। हाथ मिलाने के लिए बढ़ रहे हैं। मगर किसी का हाथ दूसरे को नहीं छू पा रहा। एक रह जाता है काफी नीचे... दूसरा बहुत ऊपर।

और डेढ़ शताब्दी बीत गयी।

समय।

समाधि देते समय रिचर्डसन सैनिक पोशाक में थे। तोपों की सलामी के बीच उनका ताबूत मिट्टी के नीचे दफना दिया गया। जेब-घड़ी वैसे ही उनकी जेब में रखी थी। सबने देखा, उसमें बारह बजकर पंद्रह मिनट हुए हैं।

पाइक-विद्रोह के दमन के बाद सब छिन्न-भिन्न हो गये। रोडंग के बख्शी जगबंधु विद्याधर--इस विद्रोह के एक नायक थे। अंग्रेजों का आधिपत्य स्वीकार कर पेंशन पाकर बैठ गये। उनकी जमींदारी को ईस्ट इंडिया कंपनी के किसी बंगाल कर्मचारी ने कलकत्ता में नीलामी में ले लिया। लोगों का कहना है कि इसी कारण वे विद्रोह में शामिल हुए थे। जयी राजगुरु इस विद्रोह के प्राण थे। उन्हें मेदिनीपुर में फांसी पर लटका दिया। पिंडिक बाहुबलींद्र को उनके साथियों ने भांग खिला दी और अंग्रेजों के हाथों पकड़वा दिया--उन्हें भी एक विशाल बरगद से झुलाकर फांसी दे दी गयी।

डेढ़ सौ वर्ष हो गये।

समय।

आज भारत स्वाधीन है। गणतांत्रिक राष्ट्र है। हर वर्ष पंद्रह अगस्त को लोग स्वतंत्रता दिवस मनाते हैं। जयी राजगुरु, छुआल सिंह की बात याद करते हैं।

स्वतंत्रता के पचास वर्ष बाद सरकार ने घोषणा की है कि खोर्धा में घड़ी का एक कारखाना लगेगा। केंद्रीय सरकार की सहायता से यहां आधुनिक घड़ियां बनेंगी।

स्थान तय करने के लिए विशेषज्ञ चारों ओर घूम-घूमकर देख गये हैं। अंत में रिपोर्ट दी--कारखाना होगा बरुणाई पहाड़ की तलहटी में जहां रिचर्डसन और छुआल सिंह की समाधियां हैं। क्योंकि वहां पहाड़ी झरने से पानी मिलने में सुविधा होगी। मेन ट्रंक रोड से संपर्क भी आसानी से हो सकेगा। रेलवे से लाना-ले जाना भी संभव होगा। विशेषज्ञों के तर्क अकाट्य होते हैं। सरकार ने मान लिये।

छुआल सिंह के उत्तराधिकारियों ने आपत्ति की--यहां तो हमारे पूर्वजों की समाधि है, पवित्र स्थल है। फिर वे ओड़ीसा के प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम के वीर शहीद थे। उनकी समाधि को हटाया नहीं जा सकता। इस बारे में एक-दो विरोध सभाएं करके प्रस्ताव भी पास किये गये। अधिकारियों को नकल भेजी गयी।

मगर फल कुछ नहीं निकला। छुआल सिंह के वंशजों को समाधि स्थल की क्षतिपूर्ति के रूप में सौ रुपये दिये जाने की घोषणा हुई। इसके बाद आंदोलन बंद। वंशजों ने इकरारनामे पर दस्तखत कर दिये।

समाधियों को नष्ट कर देने के बजाय कारखाने के अहाते से बाहर आधा मील हटाने का तय हुआ। रिचर्डसन का ताबूत और छुआल सिंह की भस्मी का ताम्रपात्र वहां से हटा लिया गया। उन्हें अन्यत्र गाड़कर स्मृति स्तंभ के निर्माण की बात तय हो गयी। यह भी तय हुआ कि दोनों स्तंभों की ऊंचाई समान होगी।

घड़ी कारखाने का शिलान्यास स्वयं मुख्यमंत्री करेंगे।

मुख्यमंत्री पधारे। शिलान्यास किया गया। वेदमंत्रों से घड़ी के कारखाने की नींव पड़ी। एम.एल.ए. और अन्य स्थानीय लोगों ने सभा में भाषण दिये। आशा व्यक्त की गयी कि इससे स्थानीय लोगों में बेकारी की समस्या का समाधान हो सकेगा। मुख्यमंत्री ने खोर्धा के गौरवशाली इतिहास को याद किया। पाइक विद्रोह का महत्व बताते हुए ओजस्वी भाषण दिया।

दो वर्ष के करीब बीत गये।

कारखाना चालू हो गया। घड़ी बनना शुरू हो गया। इसका उद्‌घाटन भी खूब धूमधाम से हुआ। इस बार समारोह के पुरोधा थे केंद्रीय वाणिज्य-मंत्री। मुख्यमंत्री और राज्य के शिल्प-मंत्री भी वरेण्य अतिथि बनकर आये थे। बालिका विद्यालय की छात्राओं ने गाया था--"बंदे उत्कल जननी।" मुख्यमंत्री के अनुरोध पर केंद्रीय मंत्री पहली घड़ी का उद्‌घाटन करने खड़े हुए। जोरदार तालियां बज उठी थीं। मुख्यमंत्री उपहारस्वरूप वह घड़ी उनके हाथों में बांधेंगे। मगर इससे पहले कारखाने के जनरल मैनेजर नयी घड़ी का समय ठीक कर देना चाहते थे। अपनी हाथ की घड़ी के साथ नयी घड़ी का समय मिला दिया।

बारह बजकर पंद्रह मिनट।

एक सौ पचपन वर्ष पहले यहीं इसी दिन रिचर्डसन ने अंतिम सांस ली थी। उन की जेब-घड़ी में समय था, बारह बजकर पंद्रह मिनट। छुआल सिंह भी नश्वर देह त्याग कर करीब उसी समय अमर लोक सिधारे थे।

भिन्न-देशीय

सांझ की बत्तियां जल चुकी थीं। चारों ओर प्रकाश के फव्वारे छूट रहे थे। प्राग शहर के विशाल होटल के प्रांगण में अकेला बैठे रहना अच्छा नहीं लग रहा था। प्रो. कल्याणकुमार चौधरी ने सिगरेट सुलगायी। आज शाम यहीं मेरिया के साथ भेंट होने की बात है। वे लाउंज में बैठे प्रतीक्षा कर रहे हैं। पास ही डैन्यूब की स्वच्छ जलधारा बह रही है। डैन्यूब का दृश्य दूर से कितना सुंदर दिखता है। इस डैन्यूब की कहानियां कितनी किताबों में, उपन्यास और कहानियों में पढ़ी हैं। नाजी आक्रमण के समय यह पुल टूट-फूट गया था। उसे फिर से मजबूत बनाया गया है। पुल पर कतार में रोशनियां लगायी गयी हैं। सुनहले ट्यूब बीच बीच में, कहीं नीले ट्यूब किसी सुंदर त्रिभुज का भान कराते हैं।

कल्याणकुमार एक महीने के लिए प्राग यूनिवर्सिटी के निमंत्रण पर चेकोस्लोवाकिया आये हैं। अधेड़ उमर के हैं, चमकदार चेहरा। दस दिन हो गये। गाइड है मेरिया। सुंदर छरहरी लड़की। कई दर्शनीय स्थान--आर्ट गैलरी, थियेटर, संसद, प्रासाद, पुराना राजमहल, उद्यान, म्यूजियम घुमा चुकी है। इसके अलावा चेक नृत्य का एक समारोह दिखाया है। अच्छी तरह उसके बारे में समझाया है। तरह तरह की पोशाकों से, चेक के गांवों से भी परिचय कराया है। अलग अलग इलाकों के पहनावे में अंतर है। उनकी अपनी विशेषता है। किसान महिला, ग्रामबाला के विवाह के समय की साज-सज्जा दिखायी गयी है। ओह, कितना अद्भुत! विवाह का दृश्य समाप्त होने के बाद वर पक्ष और औरतें साथ लायी कलात्मक टोकरियों में भरी मिठाइयां मंच पर से दर्शकों पर फेंकती हैं। दर्शक भी शोर-शराबे में अपनी जगह से उठकर उन्हें पकड़ते हैं। आनंद से खाते हैं। साथ के बच्चों को देते हैं, यदि वे केक वगैरह न उठा पाये तो।

समूचे चेकोस्लोवाकिया में कितनी ही तरह के केक और पेस्ट्री बनते हैं। आज भी प्राचीन पोशाकों का चलन है। वह सब कोई लोक नृत्य देखकर समझ सकता है। विभिन्न इलाकों का अलग अलग सांस्कृतिक वैभव और उसकी विशेषता मेरिया उन्हें अंग्रेजी में समझा देती। अंतरंग भाषा में मानो वह अपने देश का वैशिष्ट्य बताना चाहती है। कितना गर्व है उसे अपने देश पर। कितना सुंदर और प्रतीकात्मक चेहरा लेकर उपस्थित होता है चेकोस्लोवाकिया उसके आगे। अपने देश की हर ऐतिह्यपूर्ण कलाकृति का वर्णन करते समय

वह विभोर हो उठती है। पुराने राजमहल के बारे में उसका गौरवपूर्ण मनोभाव खिल उठता है जब उसका हर भित्ति-चित्र, स्थापत्य, लकड़ी पर सूक्ष्म कलात्मक खुदाई, मारबल की मूर्तियों, सुरापात्र, कार्पेट, गलीचों, परदों व शयन कक्ष के तकियों-चादरों को दिखाती चलती है।

मेरिया आ पहुंची। हंसमुख भंगिमा में अभिवादन किया, अपने अतिथि का। सिगरेट ऐश ट्रे में फेंक दी।

कल्याणकुमार ने कहा—''फाइन, प्रतीक्षा ही कर रहा था तुम्हारी।''

मेरिया ने कहा, ''जानती हूं, मुझे अफसोस है, कुछ देर हो गयी। आज मां और बहन—दोनों फिल्म देखने गयी हैं। उनके लिए रात का खाना बनाना पड़ा। कुछ ही तो देर हुई है।''

प्रो. चौधरी ने कहा, ''कोई बात नहीं, बैठो। क्या मंगवाऊं तुम्हारे लिए? व्हिस्की?''

''नो। थैंक्यू, शैरी!...।''

प्रो. चौधरी ने अपने लिए वोदका और मेरिया के लिए शैरी का आर्डर दे दिया। बाद में डिनर के लिए कहा। मेरिया को चावल पसंद है। कल एक फिश रेस्तरां में दोपहर में एक साथ भोजन लिया था।

प्रो. चौधरी ने पूछा—''गीत गाना आता है?'' पूछने का कारण था। उस का गला बेहद मधुर था। बातचीत से ही मानो संगीत झरता है। उसकी पतली छरहरी देह भी वैसी ही छंदमय लगती है।

मेरिया ने सिगरेट हटाकर कहा, ''हां... हां क्यों?''

प्रो. चौधरी ने कहा, ''यों ही पूछ लिया। तुम्हारे गले की आवाज बहुत मीठी है।''

मेरिया ने हंसकर कहा—''धन्यवाद!''

कुछ क्षण चुप्पी छायी रही। दूर डैन्यूब तिरछी रोशनी की माला में झिलमिलाती दिख रही है।

मेरिया ने बताया, ''मैं एक ऑपेरा पार्टी में थी। गीत व नृत्य मेरी उस उमर का नशा थे। बाद में बन गये पेशा।''

प्रो. चौधरी ने कहा, ''मैंने भी कुछ अंदाज लगाया।''

मेरिया बोली—''मैं उस ऑपेरा दल के साथ अमेरिका गयी थी। दो वर्ष पहले।''

प्रो. चौधरी ने पूछा, ''कैसा लगा अमेरिका?''

मेरिया ने बताया—''बुरा नहीं, वहां के लोग भले हैं। मिलनसार हैं और बंधुभाव से युक्त हैं।''

कुछ क्षण चुप रहने के बाद प्रो. चौधरी ने पूछा—''अच्छा, बुरा न मानो तो एक बात पूछूं? तुमने किसी को प्रेम किया है? अब तक अविवाहित हो?''

मेरिया की आंखें छलछला आयीं। तनिक चुप रहकर कहा, ''मैं न्यूयार्क के एक युवक से प्रेम करती थी। रोज हमारा परफोर्मेंस देखने आता। मुझे मंच पर फूलों का गुच्छा भेंट

कर जाता। जब शो नहीं होता, हम सारा समय बाहर बिता देते। सारे शहर में हम पैदल घूमते। थक जाने पर ईस्ट नदी के किनारे या किसी पार्क में बैठ सैंडविच और बीयर लेते। कई बार यू.एन. कैम्पस में लॉन पर बैठ अपने रंगीन भविष्य पर विचार करते।"

प्रो. चौधरी ने पूछ लिया, "फिर विवाह क्यों नहीं किया?"

मेरिया कहने लगी, "हमारे देश में विदेशी से विवाह आसान नहीं। हम न्यूयार्क से बोस्टन गये। वहां एक महीने प्रोग्राम चला। फिर स्वदेश लौट आयी। रोनाल्ड वियतनाम गया। वहां से भी पत्र आते। हर पत्र में वह अपनी दिल की भावनाओं को व्यक्त करता। मैं भी नियमित रूप से उत्तर देती। मगर उसके पत्रों से लगा, जैसे मेरे खत उसे नहीं मिलते। फिर पता नहीं क्या हुआ, अचानक बंद। न कोई चिट्ठी, न कोई पत्री। उसका क्या हुआ, कोई खबर नहीं।"

डिनर के बाद बैरा काफी दे गया था। चेकोस्लोवाकिया वैसे अधिक कांटिनेंटल है। ज्यादातर लोग अंग्रेजी समझते हैं। बोल भी पाते हैं। रूस की तरह नहीं। वहां तो गाइड न होने पर किसी से दो बात करना भी संभव नहीं। यहां होटल में रिसेप्शनिस्ट से लेकर बैरा तक सब अंग्रेजी समझते हैं, बोलते हैं। कोई दिक्कत नहीं। बैरे ने काफी रखकर पूछा--"ऐनीथिंग मोर[1], सर!"

दोनों ने सिर हिलाकर इनकार कर दिया। मेरिया ने दोनों कपों में दूध और कॉफी उड़ेली। कल्याणकुमार ने चीनी देनी चाही। पूछा--"एक चम्मच?"

मेरिया ने हंसकर कहा, "नहीं रहने दें। आइ एम स्वीट एनफ[2]।" दोनों हंस पड़े।

कॉफी के बाद प्रो. चौधरी और मेरिया दोनों हाथ में हाथ डाले लॉन पर टहलते रहे। डैन्यूब की रोशनी वैसे ही तिरछी आ रही थी। कुछ समय बाद मेरिया ने विदा मांगी। कल सुबह नौ बजे नेशनल आर्ट गैलरी घूमने का कार्यक्रम याद करा दिया। प्रो. चौधरी कुछ भावुक हो उठे। मानो मेरिया को इतनी जल्दी विदा देना नहीं चाहते थे। कुछ समय उसका हाथ अपनी मुट्ठी में दबाये रहे।

मेरिया ने कहा--"बाइ!" फिर उस विशाल राजपथ पर कहीं विलीन हो गयी। चारों ओर खाली खाली लग रहा था।

अगले दिन आर्ट गैलरी में घूम रहे थे। युगों के चित्र-वैभव को देख रहे थे। दोनों के मन में आनंद और विस्मय था, प्रागूराफल युग से लेकर पिकासो तक के अगणित चित्रकारों की कलाकृतियां थीं। कितने सुंदर हस्ताक्षर, बाइजेंटियन और रेनेसां से सररियलिस्ट और एबस्ट्रैक्ट तक कितने ही सृजनशील कलाकारों की अमर कृतियां देखीं।

बाइजेंटियन से लेकर रेनेसां, फिर प्रकृतिवाद, रोमांटिक इंप्रेशनिज्म, दादावाद, वाटीसिज्म.... कितने विराट कैनवास। दोनों ही को लग रहा था मानो समय यहां बंदी हो

1. कुछ और चाहिए?
2. मैं स्वयं ही काफी मीठी हूं।

गया। सदी-दर-सदी ये अद्‌भुत चित्र स्वतः ही एक-दूसरे में गुंथ गये हैं।

राफल के चित्र कितने जीवंत हैं। फिर रोमांटिक और इंप्रेशनिस्ट--सेंजे गोंगो, मैनेट, मोदग्लियानी, चाग्याल, पिकासो, डाली आदि कितनी कालोत्तीर्ण प्रतिभाओं का समाहार है। किसे देखें, किसे छोड़ें? सूली पर चढ़े ईसा का वह वेदना-कातर, क्षमाशील, मुखमंडल मेरिया को जड़ बना देता है। आंखें उससे हट ही नहीं पातीं। पिकासो का वह विश्व-प्रसिद्ध चित्र--ग्वेरेनिका, फासिज्म के विरुद्ध आर्तमानव की भयातुर चीत्कार। दोलायमान कुर्सी पर बैठी महिला, चागाल का अस्तगामी सूर्य के रंग में घोड़ा दोनों को आकर्षित कर रहा है। अंग्रेजी चित्रकार कांस्टेबल के अंकन--'धान का खेत' (कार्न फील्ड) के पास दोनों रुक गये। डेगासो नामक फ्रेंच कलाकार का 'डांसिंग लेसन' दोनों को अभिभूत कर गया। गोंगा का फूलों से सजी हवाई बालाओं का अपूर्व चित्र आंखों को बांध लेता है। दोनों एक-दूसरे से सटे सटे श्रेष्ठ कलाकारों के सृजन का निरीक्षण कर रहे हैं। गैलरियां प्राय खाली हैं। कोई इक्का-दुक्का दर्शक दिख रहे हैं। वरना वे दोनों उन विशाल कक्षों में अकेले ही से हैं।

अचानक प्रो. चौधरी और मेरिया गोंगा के एक चित्र के सामने खड़े हो गये। बगल में खिड़की। दूर डैन्यूब में तैरती बोट। आकाश में दो-चार पनकौवे उड़ रहे थे। प्रो. चौधरी ने अचानक मेरिया को अपनी ओर खींचा और गाल पर चुंबन अंकित कर दिया। मेरिया उसके कंधे पर झूल गयी, मुग्ध भाव से। मानो कुछ क्षण किसी को होश ही नहीं रहा।

कुछ समय बाद प्रो. चौधरी ने मेरिया का हाथ दबाकर कहा--"मेरिया, एक बात पूछूं? कई दिन से पूछ ही नहीं पाता।"

मुस्कराकर बोली, "क्यों नहीं? पूछिये।"

वे तनिक रुक गये। मेरिया ने पूछा--"क्या है?"

प्रोफेसर फिर भी चुप। फिर पूछा--"तुम भगवान को मानती हो, मेरिया?"

उसने तुरंत कहा, "ओ.... नो, नो.... नो।"

प्रो. चौधरी हड़बड़ा गये। ऐसा दो-टूक उत्तर सुनकर।

कुछ आहत स्वर में स्पष्टीकरण मांगा। पहले वाला वह उत्साह न था। "आपद-विपद में, मानसिक संकट में क्या तुम्हें नहीं लगता कि कोई नैसर्गिक शक्ति है... एक सत्ता है जो आदमी की मदद कर सकती है, शक्ति या प्रेरणा दे सकती है। हम यथार्थ ज्ञान के जरिये जो देखते हैं, जितना देखते हैं, क्या उतना ही सब-कुछ है? या उसके पीछे कोई अदृश्य शक्ति काम कर रही है, कोई अदृश्य क्रिया चल रही है हमारे ज्ञान और बुद्धि के परे।"

मेरिया ने सहज भाव से कहा--"ना, ऐसा कुछ अनुभव हमें नहीं होता। जीवन के सबसे अधिक संकट के क्षणों में भी कभी भगवान की याद नहीं आयी। बचपन से ही हम इस तरह

सोचते आये हैं। स्कूल में किसी ने भगवान के बारे में कुछ नहीं बताया, न घर पर मां-बाप ने। दादा-दादी जरूर रविवार को गिरजाघर जाते हैं। कई बार मैं भी उनके साथ गयी हूं। चर्च अच्छा लगता है। वहां के लोग, वहां का परिवेश भी। कई बार ईश्वर के बारे में दादाजी से पूछा है। पर वे कुछ समझा नहीं पाये।"

प्रो. चौधरी कुछ नहीं कह पाये। चुपचाप सुनते रहे। फिर कहा–"चलो, चलें। काफी थकान लग रही है।"

गवाही

"मैं जिनतान साहू, पिता दिवंगत शालिग्राम साहू, उम्र 53 वर्ष; साकिन आलीसा बाजार, कटक-2, थाना लालबाग, शपथपूर्वक कहता हूं--जो कहूंगा सच कहूंगा, सच के सिवाय कुछ नहीं कहूंगा।"

प्रतिवादी पक्ष के वकील आकुली बाबू ने जिरह की--"तुम क्या करते हो?"

"जी, मेरी एक पान की दुकान है।"

"दुकान में क्या बेचते हो?"

"पान के बीड़े, सिगरेट, पिक्का, दियासलाई, सुबल जर्दा, केशव पत्ती....।"

"और क्या बेचते हो?"

"जी, नेहरू गुंडी[1], गांधी-मार्का सुपारी, पान का मसाला, बिस्कुट, चाकलेट, लक्स साबुन, कपड़े धोने का साबुन वगैरह..."

तभी मजिस्ट्रेट साहब ने कौतूहल से पूछा--"जिनतान का क्या मतलब है?"

"हुजूर, मेरे पिता भी पनवाड़ी थे। उन दिनों 'जिनतान' नाम वाले एक लाल लाल पान मसाले की गोली विलायत से जहाज में आती थी। एक छोटे चौकोर टीन के डब्बे में पचास गोलियां। वह डिब्बा भी कितना सुंदर चित्रांकित होता था, देखते ही मन खुशी से भर जाता। दाम थे कुल तीन आने। खूब महक होती थी। उसमें हुजूर, एक गोली मुंह में डाल लो, दिन भर महकता रहेगा। गोरे साहब घोड़े पर चढ़ हमारी दुकान पर पान का बीड़ा लेने आते थे। खुद कमिश्नर... जेफरसन साहब..."

मजिस्ट्रेट ने हाथ हाथ हिलाकर कहा--"बस करो।"

इसके बाद फिर आकुली बाबू ने जिरह की--"अच्छा, तुम कितने बरस से यह धंधा कर रहे हो?"

"जी, पांचवीं में पढ़ने के दिनों से। आज पैंतालीस बरस के करीब हो गये। दाहिने हाथ की ये दोनों अंगुलियां चूने के कारण सड़ चुकी हैं।" कहकर उसने मजिस्ट्रेट को अंगुलियां दिखायीं।

---

1. तम्बाकू मिला चूरा।

"हुजूर, पहले घंटे-दो घंटे दुकान पर बैठता था। बापू ने पढ़ाई छुड़ा दी। वे बोले--अब दोनों वक्त बैठो। तब से पान लगाता हूं।"

"तुम इस मुकदमे के आसामी बैजू सामल को जानते हो?"

"जी हुजूर!"

"कब से?"

"कोई दो बरस से, हुजूर!"

"कैसे परिचय हुआ?"

"वह बीच बीच में साइकिल से मेरी दुकान पर आकर बैठता था। पान खाता, बीड़ी-सिगरेट लगाता। कभी कभी एक दो बिस्कुट चबाता। घंटे-दो घंटे रुककर चला जाता।"

"घंटे-दो घंटे क्या करता?"

"जी, पेंट की जेब में हाथ डाले सड़क के किनारे खड़ा रहता। कभी सीटी बजाता। कालेज की लड़कियां रिक्शा में जाती होतीं तो उन्हें देखा करता।"

वादी पक्ष के सरकारी वकील ने हाकिम को गवाह का बयान लिखने में सहायता के लिए कहा--"ही कीप्स आन लुकिंग एट द कालेज गर्ल्स व्हाइल दे पास बाई रिक्शाज।"

"योर ओनर! इट इज इर्रेलीवेंट[1]।"

"हुजूर, है। इससे आसामी की चारित्रिक दुर्बलता प्रकट होती है।" सरकारी वकील ने जोर देकर कहा।

आकुली बाबू ने कहा, "कभी नहीं। यह तो उसके सूक्ष्म सौंदर्य-बोध का प्रमाण है। हर ओड़िया व्यक्ति सौंदर्यप्रिय है। यह कोई दोषपूर्ण बात नहीं।"

हाकिम मुस्कुराकर बोले, "आप लोग सौंदर्य-बोध की ओर भटकते जा रहे हैं। मूल घटना साइकिल-चोरी के केस पर आइये।"

जिनतान को खूब मजा आ रहा था। उसके बयान का एक एक शब्द इतना तर्क-वितर्क पैदा कर सकता है, कभी सोचा तक नहीं था। पहली बार कठघरे में खड़े होते समय जो दिल की दुर्बलता थी, अब धीरे धीरे छंट गयी। उसमें आत्मविश्वास लौट रहा था।

आकुली बाबू ने पूछा--"बेकार की बातें छोड़कर मेरे सवाल का ठीक ठीक उत्तर दो--बैजू का घर देखा है?"

"नहीं, जी साब!... उससे सुना है कि खाननगर में रहता है वह।"

"फिर कैसे देखी, उसकी साइकिल?"

"वह उस पर चढ़कर आता। दुकान के पास बिजली के खंभे से टिकाकर पान-बीड़ी खाता।"

"वह उसी की साइकिल है, यह तुमने कैसे जाना?"

---

1. श्रीमान, इस बात का मुकदमे से कोई ताल्लुक नहीं है।

''जी, दो बरस से उसी पर चढ़कर आता रहा है। एक बार पूछा तो बोला कि महांगा गांव से किसी से खरीदी है।''

''किससे ली, बता सकोगे?''

''नहीं, सर! इतनी बातें मैं कैसे जान सकूंगा? वह एक ग्राहक है। उसकी अंदरुनी बातें भला मैं क्या जानूं?''

''धत्... ये बातें छोड़ो।'' आकुली बाबू ने बीच में टोका। ''मैं जो पूछता हूं, उसका जवाब दो। अच्छा, बैजू क्या करता है, बता सकोगे?''

जिनतान ने सिर हिलाकर कहा, ''नहीं सर! हां, एक बार जरूर कहा था--स्टेडियम के पास साइकिल-स्टैंड के पास ठेका लेने के बारे में। वह मिला या नहीं, पूछ नहीं सका। इतनी बातों से मुझे मतलब ही क्या? मैं भला, मेरे ग्राहक भले। मैं किसी की बातों में नहीं पड़ता.... ।''

आकुली बाबू की जिरह पूरी हो गयी। अब सरकारी वकील की बारी थी। उसने तेज और ऊंची आवाज में पूछा--''बैजू सामल तुम्हारी दुकान पर पान खाने आता है?''

''जी, हां।''

''तो कुछ चोरी की चीजें लाते देखा है?''

''नहीं।''

''घड़ी, कलम, या साइकिल...?''

''नहीं।''

''वह कैसे आता है?''

''पैरों से।''

सरकारी वकील ने चिढ़कर कहा--''उफ् मैं क्या वह बात पूछता हूं? पैरों से नहीं आता तो क्या सिर से या हाथ से आता? मैं पूछता हूं--वह किस पर आता था? रिक्शा, साइकिल या कार पर?''

''साइकिल पर।''

''पहचान सकोगे वह साइकिल?''

जिनतान जरा सकपका गया। साइकिल या बैजू को तो कभी गौर से देखा नहीं। लाचारी में आकुली बाबू की ओर देखा। आकुली बाबू ने आंख मार दी।

जिनतान ने निडर होकर कहा, ''यही है बैजू की साइकिल।''

''सच कहते हो?'' सरकारी वकील ने पूछा।

''... हां, सर!''

''तुम एकदम झूठ बोल रहे हो?''

''नहीं, सर!''

सरकारी वकील विनोद बाबू थके हुए लग रहे थे। कुछ क्षण रुककर बोले--''खैर,

बैजू क्या करता है? कहां जाता है?''

''मुझे नहीं मालूम। फिर भी कभी कभी वह बताता था--बारकाटी किले की ओर जा रहा हूं।''

''क्यों जाता था वहां, इस बारे में कुछ बताता था?''

''वह कहता था--वहां गढ़ की खाई के पास बैठने पर मन में फुर्ती आ जाती है।''

आकुली बाबू ने आपत्ति की--''इसका मूल मुकदमे से कोई संबंध नहीं। यह बिलकुल अप्रासंगिक है।''

विनोद बाबू--''नहीं सर, संबंध है। तभी तो पता चलेगा कि आसामी एक आवारा है, लफंगा है। यों ही आवारगी में इधर-उधर फिरता रहता है। ऐसे लोग ही चोरी-चकोरी करते हैं।''

आकुली बाबू--''नहीं, सर! इससे तो उलटे यह पता चलता है कि आसामी शांतिप्रिय है। प्राकृतिक दृश्यों में उसकी रुचि है। इसमें उसे आनंद मिलता है। बाराबाटी किले में जाने से लगता है कि आसामी कलिंग की महान परंपरा का सम्मान करता है। अपनी संस्कृति से प्रेम हर सच्चे ओड़ीसा-वासी का मूल चारित्रिक गुण है।''

सुनवाई इतने में मुल्तवी कर दी गयी। हाकिम अपने खास कमरे में चले गये। फिर तीन बजे सुनवाई शुरू होगी।

पहले वादी (मुद्दई) पक्ष यानी पुलिस के गवाहों के बयान और जिरह पूरी हुई थी। जो दो कांस्टेबल गवाही दे रहे थे, उनका कहना था--''सिर्फ बैजू की ही साइकिल जब्त की थी। यह चोरी की है।'' इस बात पर कोई गवाह या सबूत प्रस्तुत नहीं कर सके। क्योंकि बैजू के विरुद्ध कोर्ट में गवाही देने से बस्ती के लोग डरते थे। हालांकि कई लोगों ने भीतरी तौर पर कहा था--''यह साइकिल दो महीने पहले चोरी करके कहीं से लाया था, उसी पर चढ़ता है। पहले भी साइकिल-चोरी के मामले में वह पकड़ा जा चुका है।

तीन बजे हाकिम इजलास में आये, फिर जिरह शुरू हुई। सरकारी वकील ने कहा--''अच्छा, कह सकते हो--बैजू सिनेमा जाता है?''

''हां, सर! अच्छी अच्छी पिक्चर आने पर जाता है।'' फिर रुककर बोला--''मगर सर, सिनेमा के टिकट ब्लैक नहीं करता।''

कोर्ट-रूम में सब एक साथ हंस पड़े।

''तुम्हें कैसे पता कि वह सिनेमा जाता है?''

''कभी कभी सिनेमा की बातें करता है।''

''वह कैसे दृश्य पसंद करता है? चोरी, डकैती, मारधाड़...के?''

''नहीं, सर!''

''तो फिर?''

''मुहब्बत-प्यार....के, सर!''

"कौन सा हीरो उसकी पसंद का है?"

"जी, धरमिंदर।"

"बता सकते हो, क्यों?"

"कहता, धरमिंदर ही मुहब्बत करना जानता है। वही है सुपर हीरो।"

आकुली बाबू ने आपत्ति की--"योर ऑनर, इन बातों का मुकदमे से कोई ताल्लुक नहीं।"

"... संबंध अलबत्ता है। इससे आसामी के असंतुलन और मूल्यों के अभाव की धारणा स्पष्ट होती है।"

तब आकुली बाबू ने टोका--"नहीं योर ऑनर! इससे तो आसामी की हीरो वरशिप का ही पता चलता है। बैजू आला दरजे का हीरो वरशिपर है।"

ये जवाब-सवाल जिनतान को खूब अच्छे लगते। उसकी बात बात का गूढ़ अर्थ निकालने पर उसकी छाती फूलकर कुप्पा हो जाती। वह भविष्य में अच्छा गवाह बन सकेगा--उसे पक्का विश्वास हो गया।

हाकिम ने मुस्कुराकर पूछा, "तो लिखता हूं।"

दोनों वकीलों ने एक साथ कहा, "यस, यस, योर ऑनर!"

उस दिन की सुनवाई वहीं पूरी हो गयी।

गवाही वाला धंधा जिनतान को बुरा नहीं लगा। इसमें कोई झमेला नहीं। बस आये, कठघरे में खड़े हुए, सत्यपाठ से पहले वकील की बतायी दो-चार बातें कह दें। काम फतह। है मजेदार यह चीज।

इससे पहले आकुली बाबू वकील की बातों में पड़कर वह जमानत लेता था। कटक में अलीसा बाजार में एक पैतृक फूस का घर है। यही तो जमानत लेने वाले की सब से बड़ी योग्यता है। कितने लोगों की अपनी जगह-जगह है कटक में? चाहे दस गज ही हो। वह कटक के बाशिंदे के रूप में गर्व करेगा। अब कटक में जो मकान, घर-बार सिर ऊंचा किये हैं, ज्यादातर उनके मालिक हैं बाहर के लोग। कोई उसकी तरह पक्का कटकी नहीं। उसके खानदानी मुगल-मराठों के जमाने से कटक के बाशिंदे हैं। इनकी तरह कहीं और से आकर रौब गांठने वाले नहीं। उसके मामा भी कटकी हैं, भूलामियां बाजार में। बस्ती से बस्ती सटी है। कोई दूर नहीं। जिनतान के बापू कहा करते थे--'खुद कमिश्नर जेफरसन साहब ने एक दिन उसकी दुकान के आगे गाड़ी रोककर कोचवान के हाथ पान का बीड़ा मंगवाकर खाया था। पान चबाते चबाते सा'ब ने कहा--फेंटास्टिक[1]!" तब उसकी दुकान चांदनी चौक में थी--कमिश्नर की कोठी के पास। मगर कुछ वर्ष हुए, वहां से बस-स्टैंड

---

1. बहुत उम्दा, लाजवाब!

उठ जाने के बाद खोखे उठाने का अभियान चला। अपने खोखे को उठाकर, बैलगाड़ी में लादकर सामान-सहित अब कटक चंडी चौराहे के पास ले आया। शुरू शुरू में अच्छी बिक्री होती रही। महिला कालेज पास ही है। लड़के-लड़कियां काफी भीड़ लगाये रहते। बीड़ी, सिगरेट पीते, पान खाते। घंटों खड़े रहते। लेकिन अब पुलिस खड़ी होने लगी है, किसी को ज्यादा देर तक खड़ा नहीं रहने देती। फिर साल-छह महीने में वहां कई खोखे हो गये हैं। बाजार मंदा हो गया... तिस पर लंबी छुट्टियां। गरमियों की छुट्टी, दशहरे की छुट्टी, बड़े दिन की छुट्टियां...। ऐसे में आदमी क्या करे? इतनी छुट्टियों में कमाई कैसे होगी?

घर पर पांच प्राणी। परिवार का पेट भरना है। बेटी मालती छठी कक्षा में आयी है, उसे किताबें, कलम, कागज, फ्राक, कपड़े चाहिए। छोटे बेटे के पैरों में चप्पल नहीं। बच्चों की एक एक किताब के दाम सात-आठ रुपये, स्त्री को सांस की बीमारी है। खुद भी साल में बारह महीने बीमार रहने लगा। मधुमेह की बीमारी हो गयी। ऐसे में आदमी गुजारा कैसे करे? आकुली बाबू वकील की मान वह दस से पांच बजे तक कचहरी जाने लगा। चोरों, जेबकतरों, नकली डाक्टर, ठग, साधू वगैरह को जमानत पर लाने लगा। आकुली बाबू कह देते--"जा, ले जमानत। परवाह नहीं, मैं जो हूं।" एक की जमानत लेने पर चालीस-पचास की आमदनी हो जाती। इसमें से दस-बारह आकुली बाबू ले जाते। एक बार एक रिक्शे वाले की जमानत ली। दो महीने से जेल में था, कोई जमानत लेने वाला नहीं मिला। किसी दूसरे के रिक्शे से टायर उतार अपने रिक्शे में लगा रहा था, पकड़ा गया। आकुली बाबू बोले--"तू जा, जमानत ले ले। साठ रुपये मिल जायेंगे।" रिक्शावाला साठ रुपये देकर छूट आया। मगर फिर उसके दर्शन नहीं हुए। अपने देस श्रीकाकुलम् चला गया। दो दो तारीखें पड़ीं--आसामी फरार। आखिर जिनतान का घर-बार नीलाम होकर जमानत के रुपये वसूले जाते। मगर आकुली बाबू ने थाने में हुलिया दिया था। श्रीकाकुलम् पुलिस ने तेड़ापल्लीगुडम् जाकर उसे पकड़कर थाने में हाजिर कर दिया। जिनतान की जान बची। अब जमानत का धंधा भी छोड़ दिया। उसके बाद? इधर एक दिन आकुली बाबू ने आकर कहा, "क्यों जिनतान, क्या हाल है? गवाही दोगे? हर तारीख पर बीस-पच्चीस मिल जायेंगे।"

घर पर छप्पर के लिए जिनतान को सौ-सवा सौ रुपयों की सख्त जरूरत थी। वह आकुली बाबू की बात मान गया। कोर्ट गया था। बहुत नया-नया लगा। जमानत वाला धंधा छोड़ने के बाद काफी दिनों से इधर नहीं आया था। इस कोर्ट के पुराने मजिस्ट्रेट सा'ब का तबादला हो गया है। बरगद के नीचे दो शरबत की दुकानें लग गयी हैं। दूर काठजोड़ी नदी चमचमाती दिख रही है। पत्थर के तटबंध के नीचे घने पेड़ में नयी नयी कोंपलें निकल आयी हैं। चिड़ियां वैसे ही किचर-मिचर कर रही हैं। एक-दो गायें चाय की दुकान के आस-पास फिर रही हैं। जिनतान उदास उदास आंखों से चारों ओर देखता रहा।

रोज दस से पांच बजे तक कचहरी में रहना कोई कम झंझट नहीं। साइकिल थी तो

एक बात थी। दो महीने हुए वह भी चोरी हो गयी। बड़े पोस्ट-आफिस के आगे रखकर पोस्टकार्ड लाने गया था, लौटकर आया तब तक गायब। थाने में इत्तला दी गयी। थाना बाबू ने नंबर मांगे। मगर उस में नंबर-वंबर कुछ नहीं लिखे थे। बस, इतना लिखवाकर आ गया--"मेरी पुरानी हीरो साइकिल जी.पी.ओ. के सामने से चोरी हो गयी है।" इससे कुछ नहीं हुआ। होता भी कैसे? कटक और उसके आस-पास के इलाकों में रोज सैकड़ों साइकिल चुराई जाती हैं। सबकी कौन कितनी खबर करेगा? थाने में रिपोर्ट की, तो वह टेबुल पर ही दब गयी। फिर कहीं रद्दी की टोकरी में चली जाती है। अब अखबार में पुलिस के विरोध में हजार बातें लिखी गयीं। पुलिस अचानक तत्पर हो उठी है। चारों ओर दौड़-धूप चली। कुछ दिनों बाद फिर ठंडी पड़ जायेगी।

आज आखिरी तारीख है। वादी-प्रतिवादी वकील ने सवाल किये। सरकारी वकील विनोद बाबू ने बड़ी बड़ी किताबें दिखाकर कहा--"योर ऑनर! आसामी दुश्चरित्र है, लफंगा है। पहले भी साइकिल चोरी में दो बार गिरफ्तार हो जेल में रह चुका है, प्रमाण न मिलने पर छूट गया। अबकी बार कड़ी सजा दी जाये। भारतीय पेनल कोड की धारा 379 का मूल उद्देश्य है--देश से चोरी-वृत्ति के मूल कारण यानी लफंगापन, अपहरण आदि का मूलोच्छेद करना... ।"

प्रतिवादी के वकील आकुली बाबू ने और भी बड़ी बड़ी किताबें टेबुल पर रखकर, टेबल पीट-पीटकर कहा, "योर ऑनर! आसामी निर्दोष है। वह सौंदर्यप्रिय, विदग्ध युवक है। देश की संस्कृति के प्रति उसमें काफी आदर है। वह उच्च कोटि का हीरो वरशिपर है। पुलिस असली दोषी को न पकड़कर, निर्दोष को व्यर्थ परेशान कर रही है--यह लज्जा की बात है। किसी सभ्य समाज में यह बरदाश्त नहीं होता। अपनी गलती ढांपने के लिए पुलिस इस निरीह युवक के पीछे पड़ गयी है। पिछले दो बरस से काम में लायी जा रही साइकिल को पुलिस कुछ दिन पहले चोरी हुई साइकिल बता रही है! यह सब असंबद्ध और बेबुनियाद अभियोग है। पुलिस की ओर से लगाया गया कोई चार्ज गवाहियों से प्रमाणित नहीं हुआ। पुलिस के एक भी गवाह ने बैजू सामल द्वारा चोरी की बात नहीं कही। दूसरी ओर, प्रतिवादी पक्ष के गवाह ने बयान दिया है कि यह साइकिल बैजू की है, सिर्फ बैजू की। पिछले दो वर्ष से वह इसे काम में लेता आया है। अतः बैजू को निर्दोष घोषित कर दिया जाये। बैजू को उसकी साइकिल वापस दी जाये।"

हाकिम ने दोनों पक्षों के सवाल-जवाब सुनकर राय दी--

"बैजू सामल निर्दोष है। पुलिस अपने अभियोग प्रमाणित करने में उपयुक्त गवाह और सबूत नहीं दे सकी। अतः बैजू को बरी किया जाता है। मुकदमा खारिज किया जाता है। बैजू को उस की साइकिल लौटा दी जाये।"

फैसला सुनकर बैजू, आकुली बाबू, जिनतान खुशी खुशी बाहर आ गये। आकुली और जिनतान को बरगद के नीचे इंतजार करने को कहकर बैजू कोर्ट से साइकिल लाने चला

गया। बीस-पच्चीस मिनट बाद साइकिल लेकर आ गया। पचास रुपये आकुली के हाथ में रखे, जिनतान को भी बीस दिये। दोनों को धन्यवाद देकर अपनी साइकिल पर चल पड़ा।

जिनतान ने साइकिल और बैजू को करीब से देखा। अब तक तो वह दूर से ही देखता रहा था। पहचानने में देर न लगी, यह तो उसकी अपनी 'हीरो' साइकिल है। दो महीने पहले जी.पी.ओ. के सामने से चोरी हुई थी। तो बैजू ने ही चोरी की थी उसकी साइकिल।

साइकिल की सीट पर हाथ रखकर चिल्लाया--"अरे, यह तो मेरी साइकिल है।"

बैजू हाथ हटाकर, साइकिल पर चढ़कर, गर्व से रूमाल हिलाता दूर चला जा रहा था। आकुली बाबू वहीं बरगद के नीचे खड़े खड़े मुस्कुरा रहे थे।

पापी

विराट शिल्पनगरी खड़ी हो रही है। तीस बरस पहले किसी ने कल्पना भी नहीं की थी--घने जंगल की कटाई होगी। वहां सिर उठायेगी ईंट-पत्थर लोहे से बनी विराट महानगरी जो देश-विदेश के बेशुमार लोगों के कोलाहल से भर जायेगी। रात में रंग-बिरंगी कितनी ही लाल-हरी-सुनहली रोशनी में झलमला उठेगी सूने पहाड़ की तलहटी।

वो जो त्रिमूला पहाड़ की चोटी पर नीचे लाल, बैंगनी रंगो की रोशनी का मेला दिख रहा है--वहां से बड़े बड़े अफसरों के क्लब से शराब और मांस की गंध आ रही है--उसी के तले और आस-पास के इलाकों में थे कई जाति-उपजातियों वाले आदिवासी गांव, बस्ती वगैरह। गांव गांव में होते थे बारह मास में तेरह परब-त्यौहार, मेले-ठेले, गीत-नाच, मजलिस ...और कभी कभी कलह-तकरार।

खांडा, फरसा, मार-पीट की तांडव लीला। बासेली देवी की पूजा, चड़क देवी की पूजा, झामू यात्रा, हिरण या खरगोश का शिकार पाने की आशा में होती पूजा। बलि लगती--एक के बाद एक मुरगे, बकरी, पाड़े और फिर भैंसे की। बाजों की टंकार में समूचा वन, जंगल, पहाड़ गूंज उठता। महुए और काठ-चंपा के झाड़-तले डालखाई नाच होता--कमर में हाथ दिये लड़कियों द्वारा--लड़के भी साथ नाचते, बंशी बजा झुंड में घेरा बनाकर....।

रात में महाबली बाघ की गरज के साथ अहिराज सांप के मुंह में हिरण-शावक की चीख सबको बेचैन कर देती।

साल में एक बार होता मेला--पौष मास के अंत में धान-कटाई के दिनों में लड़कियां आतीं नयी साड़ी पहनकर, टिकुली, रिबन, कंघी खरीदने के लिए। लड़के पेड़-झुरमुट की ओर से सीटी-सिसकारी के जरिये इशारा करते और फिर दृश्य बदल गया...।

उस बार बाघ पागल हो गया। अनेक लोगों, गाय-बैलों को खा गया। लोग डरकर गांव-गली से भाग खड़े हुए। दूसरी जगह जाकर घर-बार बनाया, बसाया। पेड़-खेती[1] के बाद वहां फिर नये-नये गांव-बस्ती बस गये। जंगल साफ किया।

पहले सरकारी खाद का कारखाना शुरू किया। फिर आसपास में लोगों ने कई

---

1. पहाड़ या जंगल में आग लगाकर फिर खेती करना।

कल-कारखाने खड़े किये--आरा मशीन, स्टील फाउंड्री, शराब बनाने का कारखाना, सूत के धागे का कारखाना। सीटी बजते ही लोग काम पर चल देते। शिफ्ट खत्म होते ही लौट आते। धीरे धीरे कितना कुछ वहां पर खड़ा हो गया--दुकान, हाट, बाजार, सिनेमा, थाना, कचहरी, डाकघर, स्कूल, कालेज, छापाखाना और देशी शराब की भट्टी। आदिवासियों को हरजाना दिया गया। दूसरी जगह जाने के लिए उस इलाके में जगह मुहय्या करा दी गयी... उनकी जमीन पर अब कितनी सुंदर कालोनी खड़ी है। बड़े बड़े बैंक और बीमा कंपनियों की इमारतें! नक्शा ही बदल गया है। उसके साथ आदमी भी। मगर सचमुच आदमी बदलता है या बदलेगा?

पहले का वही आदिम गांव। कलह की जगह वहां दिखेगी दलबंदी, हिंदू-मुसलमान दंगा, ओड़िया, गैर-ओड़िया लोगों में छोटी-मोटी लड़ाई, खून खराबा, यूनियनों के बीच झगड़ा, मारपीट, फिर मजदूर-मालिक विवाद। बड़े-बूढ़ों का कहना है--पहले आदमी कितना अच्छा था...। मगर आदमी कब था भला जो आज बिगड़ गया? वह गमछा छोड़ पेंट-कमीज पहनता है, महुआ छोड़ देशी विलायती बोतल गटक रहा है। वह कब तुलसी-पत्ते सा पूरा शुद्ध था?

...हालांकि आज भी बदला नहीं। केवल जंगल पर ही निर्भर रहने वाला आदिम मनुष्य समय से कितना पिछड़ गया... जो लकड़ी के ठेकेदार के ट्रक के हजार हार्न बजाने पर भी दूर खड़ा है। आलस में जम्हाई लेता है--अपने बुरे अतीत को याद करके...!

क्या चित्र सचमुच ही बदला है?

आज है रथयात्रा। रज त्यौहार के बाद रथपर्व आता है। सुबह से मेघ रिमझिम बरस रहे हैं। कभी कभी धूप निकलकर देह को चुनचुना जाती है। लोग पसीना पसीना हो जाते हैं। हजारों लोग जगह जगह से आये हैं। शिल्पनगरी में रथ खींचने के लिए। पहंडी[1] संपन्न हो गयी। तीनों ठाकुर रथ के ऊपर निजी आसनों पर विराजमान हो गये हैं। लोग-बाग रथ के रस्से पकड़े खड़े हैं। आगे की कतारवाले लोग और आगे जाने के लिए आपस में धक्का-मुक्की कर रहे हैं। रथ के चारों ओर पुलिस लाठी से गोल घेरा बनाकर सतर्क है, ताकि रथ खींचते समय कोई दुर्घटना न होने पाये। अनेक बाबाजी, माताजी रथ के आगे चंवर डुला रहे हैं। कुछेक विदेशी श्वेतांग संन्यासी करताल के साथ 'हरे कृष्ण' कीर्तन करते हुए तथा मृदंग बजाते रथ के आगे चंवर डुला रहे हैं। सबकी आंखें चकाडोला[2] पर जमी हैं। पंडित शास्त्र-पुराणों से श्लोक बोल रहे हैं--

"रथे तु वामनं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते।"[3]

---

1. देव-विग्रहों के पधारने की प्रक्रिया।
2. विशाल-नेत्र जगन्नाथ।
3. रथ में वामन जगन्नाथ के दर्शन करके आदमी मुक्ति पा जाता है, पुनर्जन्म नहीं होता।

ऐसा सुलभ मुक्ति-फल छोड़े कौन? लोगों में खींच-तान जारी है--रथ का रस्सा पकड़ने के लिए। इसी में चल रहा है भजन, कीर्तन, शंकराचार्य का गीत 'जगन्नाथ स्वामी नयन पथ गामी' और सालबेग का गीत 'जगबंधु परि जणे सामंत नाहि नाहिंत' आदि श्लोक व भजन।

सबको इंतजार है, रथ चलने का। श्रीजगन्नाथ मंदिर से मौसी मां का छोटा सा मंदिर कोई एक-दो फर्लांग होगा। बस वहां तक पहुंचा दें, फिर सब की छुट्टी। अपने अपने घर लौट जायेंगे। खा-पीकर दिन भर की थकान मिटायेंगे।

मगर हुआ क्या? अभी तक छेरा-पंहरा[1] तक संपन्न नहीं हुई। रथ चलेगा कब तक? यहां एक ही रथ में तीनों देव--श्रीजगन्नाथ, बलभद्र, सुभद्रा--गुंडिचा गृह[2] तक जाते हैं। नंदिदोष, तालध्वज एवं दर्पदलन[3] की तरह के तीन रथ नहीं है। रथ पर लाल पताका फर फर उड़ रही है। बीच बीच में मेघों की बौछार। फिर वही धूप की धूप। लोगों को परेशानी हो रही है।

तभी यहां के स्थानीय श्रीमंदिर के प्रतिष्ठाता और इस रथ-यात्रा के पृष्ठपोषक नामी कंट्रैक्टर व खान के पट्टेदार बांछानिधि परिड़ा, एक खुली जीप में जुलूस बनाकर आ पहुंचे। पंडे-पंडितजन उनका स्वागत-सत्कार कर फूल-चंदन से छिड़काव कर उन्हें रथ पर लिवा ले गये। कुंभ-कढ़ाई की गयी सफेद रेशमी धोती पहने, रेशमी कुरते के ऊपर ब्रह्मपुरी सिल्क की चादर डाले परिड़ाजी ने रथ पर खड़े होकर सब को हाथ जोड़कर नमस्कार किया। उनके माथे पर चंदन की तीन रेखाएं दूर से ही झलक रही हैं। चिकने काले मुखमंडल पर पसीने की बूंदे दूर दूर से निगाहों में पड़ जाती हैं।

पंडितजी ने उन पर और रथ पर गंगाजल का छिड़काव किया। इसके बाद उनके हाथों में सोने का पानी चढ़ी पीतल की सींक वाली झाड़ू दी। परिड़ाजी छेरा-पंहरा संपन्न करने जा रहे थे, तभी सारी जनता चिल्लाने लगी--

"ना - ना। वे बुहारी नहीं देंगे। वे बुहारी देंगे तो हम रथ नहीं खीचेंगे।"

पंडितजी ने हाथ जोड़कर कहा--"छेरा-पंहरा नहीं होगा तो रथ चलेगा कैसे? कितनी देर हो गयी। यहां तो रथयात्रा जब से शुरू हुई है परिड़ाजी ही छेरा-पंहरा करते आये हैं। यह तो यहां की प्रचलित प्रथा है। कोई नयी बात तो नहीं आज।"

मगर जन-समुद्र अटल-अचल खड़ा रहा।

"ना, वे बुहारी नहीं देंगे।"

परिड़ाजी बुहारी को रथ की दीवार के सहारे टिकाये खड़े हैं। बुहारी की मुट्ठी सूरज

---

1. चंदन-चर्चित सुगंधित जल का रथ के चारों ओर छिड़काव तथा रथ के आगे स्वर्ण सम्मार्जनी से महाराजा द्वारा बुहारने की विधि।
2. जगन्नाथ की मौसी का गृह।
3. पुरी वाले बड़े बड़े तीन रथ।

की किरण से सोने सी चमक रही है।

पंडितजी ने हाथ जोड़कर कहा--"क्यों क्या हो गया?"

समवेत आवाज आयी--"ना, वे पापी हैं! वे झाड़ू नहीं देंगे।"

कुछ समझ में नहीं आया। आखिर में पंडितजी ने हाथ जोड़कर पूछा--"क्या पाप किया है? आप लोग ही बतायें।"

समवेत जनता ने कहा--"हम ये सब नहीं जानते। पर वे पापी हैं, पापी। महापापी!"

परिड़ाजी के छह भाई नीचे खड़े थे सब। अब तक सारी बातें सुनते रहे। एक एक कर वे सीढ़ियों से रथ पर आ गये। मंझले भाई ने सब को हाथ हिलाकर धीर-स्थिर होने को कहा। खूब ऊंची आवाज में बोले--"भाई ने क्या पाप किया है? आप खुल्लमखुला कहें? वे यदि दोषी प्रमाणित होंगे, हम सभी यह मंदिर, यह रथ छोड़कर चले जायेंगे। वैसा न कर किसी भले आदमी पर लांछन लगा रहे हैं, यह ठीक नहीं। उन्होंने क्या किया है? चोरी या अन्याय, नारी-दारी?"

"ना ना, वो सब कुछ नहीं। हम वैसा कुछ न जानते हैं, न सुना है। मगर वे पापी हैं, जरूर पापी हैं।"

"क्या वे दारू पीते हैं? या फिर कोई और नशा करते हैं? कोई रेप, मर्डर, जालसाजी, चारसौ बीसी, गोहत्या, ब्रह्म-हत्या, भ्रूण-हत्या?" मंझले भाई अरखित परिड़ा ने पूछा।

"ना ना, ये बात हम नहीं कहते। पर वे पापी हैं। हमारा मन कहता है, वे पापी हैं। इतने लोगों की ऐसी धारणा बनी कैसे? वे पापी हैं, जरूर पापी हैं।' जनता ने उत्तर दिया।

तब मंझले भाई ने कहा--"न कोई बात, न चीत... बस कह दिया कि वे पापी हैं। क्या पाप किया है? प्रमाण दें। उन्होंने लोगों के लिए अपना सर्वस्व दिया है। पांच लाख खर्च करके यह जगन्नाथ मंदिर बनवाया है। इतने बड़े शहर में एक मंदिर तक न था। सिखों का गुरुद्वारा था, खिस्तानों का गिरजा था, मुसलमानों की मस्जिद थी। मगर हमारा कुछ न था। मंदिर बनाने के बाद नीम की लकड़ी मंगवाकर शास्त्र-विधान के मुताबिक तीनों देव-विग्रह बनवाये। ऋषिकेश से तीन महात्माओं को बुलाकर प्राण-प्रतिष्ठा करवायी। इतना ही नहीं, इस रथयात्रा के लिए हर बरस तीस-चालीस हजार का खरचा करते आ रहे हैं। उन्हें कह रहे हो, पापी हैं। तीनों विग्रहों के लिए अब लाख रुपयों के अलंकार बनवा दिये हैं। बाहुड़ा यात्रा के समय रथ पर तीनों ठाकुरजी सोने के वेश में सजे होंगे। आप अपनी आंखों से देख लेना। अगर वे फिर भी पापी हैं तो फिर धर्मात्मा कौन हुआ?"

मगर जनता भी जिद्दी ठहरी। एक ही रट--"वे पापी हैं" भीड़ में से किसी ने कहा, "उन्हें देखकर ही लगता है, वे पापी हैं। उनके भाई... आप लोग भी सब पापी हैं!"

इसी बीच दूसरे ने थोड़ी धीमी आवाज में कहा--"देखो न, कैसे सत भैया वाले मोटे-सोटे बंदरों की तरह हट्टे-कट्टे चिकने चिट्टे दिख रहे हैं। मूंछ-कली का कहना ही क्या? ये सब पापी हैं।"

छोटे भाई दीन किसन परिड़ा बोले--"भाई ने क्या नहीं किया आप लोगों के लिए? हमारे गांव में और इस शहर में दो दो स्कूल खुलवाये। कालेज में लड़कियों के रहने की व्यवस्था क्या नहीं की? भाभी ने पैसे दिये, वो सुविधा करवा दी। शहर में दो दो अस्पताल खुलवा दिये। कितने ही गरीब लड़कों को पढ़ाई के लिए रुपयों से मदद करते हैं। जो भी जाता है उनके पास सबकी किसी-न-किसी तरह की, कुछ-न-कुछ मदद जरूर करते हैं। उन्हें पापी कहते समय जीभ नहीं कट जाती?"

मगर लोग वैसे ही जिद पकड़े हुए हैं--"ना, वे पापी हैं। वे महाप्रभु के आगे झाड़ू देंगे तो हम रथ नहीं खींचेंगे।"

झीलपाली गांव के मुखिया अंइठू साहू कह उठे--"ठहरो, मैं बताता हूं जी... वे पापी नहीं तो धर्मावतार हैं? भले आदमी होते तो करोड़ों के मालिक बन पाते? बस... एक ही बात से सब समझ लें। बताइये, इस जमाने में सच के बल पर कोई इतना धन कमा सकेगा? हमारी कालोनी के हेडमास्टर को ही देखें। कितनी पढ़ाई नहीं की? तीन तीन विषयों में एम.ए. किया है, मगर हुआ क्या? खपरैल के घर की मरम्मत भी नहीं करा पाते। बरसात होते ही पानी टप-टप झरता है। हां, करोड़पति बन जाना सहज है?"

बॉयर-मिस्त्री अप्पा राव बोल उठे--"जी, सबने देखा है, पंद्रह बरस पहले सेठ ओंकारमल के गोदाम में वे पच्चीस रुपये महीने की तनख्वाह पर काम करते थे। इन पंद्रह बरसों में इतने घरबार, जमीन-जायदाद, मंदिर, स्कूल, अस्पताल कैसे हो गये? जादू या मंतर से?"

सब अप्पा राव की हां में हां मिला रहे हैं। "हां, हां ठीक तो कह रहे हैं मिस्त्री जी। खरी खरी कह दी है। असल जड़ तो यही है।"

मंझले भाई ने कहा--"अक्ल और हिम्मत के बल पर भाई साहब ने पैसा कमाया। जाल, फिसाद या चोरी, जुए से नहीं धनी होना कोई पाप है? इस शहर में हमसे बढ़कर भी बहुत धनी हैं। चिरंजीलाल मारवाड़ी, सरदार सुरजीत सिंह, कंट्रैक्टर ए.के. बोस को देख लें। इनमें से कोई भी लोगों के लिए एक पैसा भी नहीं देता। हम अपनी कमाई के धन में से लोगों पर खर्च करते हैं, इसलिए कुसूरवार हुए, हम पापी हुए। एक ओड़िया भाई ने कुछ पैसे कमा लिये, वह बन गया पापी। यह बात बंगाली, मारवाड़ी मुसलमानों को तो नहीं कहते?"

स्मेल्टिंग-मिस्त्री नरी पाटजोशी ने कहा--"बस, बस करो। भगवान को कोई और आदमी नहीं मिला, इन्हीं के दिमाग में सारी अक्ल भर दी।"

लुहाकिला गांव के बाबुला कंध ने कहा--"नहीं जी, बात वो नहीं... फिलहाल इस वक्त झाड़ू कौन देगा, झाड़ू लगाये बिना रथ चलेगा कैसे? सबकी भूख के मारे जान निकल रही है।"

छोटे भाई ने कहा--"क्यों, क्या हो गया? बड़े भैया करेंगे--छेरा-पंहरा। और कौन करेगा? पिछले पांच बरस से रीत चली आयी है। आज भी वही होगा।"

मगर सब चिल्लाने लगे--''नहीं...नहीं....!''

''तो कौन करेगा छेरा-पंहरा?''

किसी एक ने उत्तर दिया--''जिलाधीश को बुलाया जाये, वेश बदलने पर वे ठीक जंच जायेंगे।''

किसी दूसरे ने स्थानीय एम.एल.ए. का नाम सुझाया। मगर लोगों ने नापसंद कर दिया।

''आज ये हैं, कल और कोई आयेगा। वह कौन होगा, कौन जाने? मुसलमान या खिरस्तां, कोई ठिकाना है?''

रुक्मिणी कालोनी के एक मास्टर बोले--''हमारे पुराने राजा को बुला लेते तो कैसा रहेगा? वे पगड़ी बांध, पोशाक पहन आयें तो खूब जचेंगे, उनकी कीमत भी कोई कम नहीं। हालांकि अब वे नशापानी करने लगे हैं, सदा नशे में डूबे रहते हैं। मगर किसी दिन इस इलाके के वे ही राजा थे। उनकी करामात कम न थी। सिपाही, पलटन, दल-के-दल हाथी-घोड़े, रोल्स-रायस गाड़ी--सब कुछ था। अब हाथीखाने, घुड़साल और कचहरी--सबके छप्पर से फूस उड़ गयी है। महल का पिछवाड़ा आधा ढह गया है। फिर भी राजा का बच्चा राजा ही तो होगा। बिहार-उड़ीसा के जंगी लाट ने उन्हें रांची-दरबार में बुलाया था। उन्हें के. टी. 'नाइट' की उपाधि मिली थी। उनके पिता, बूढ़े राजा जी को सी.आई.ए. यानी 'कंम्पेनियन ऑफ इंडिया एम्पायर' की उपाधि से विभूषित किया गया था। वे कोई साधारण आदमी नहीं।''

आरा मशीन के टाइम-कीपर बाबू सब सुनते रहे थे। अब बोले--''राजा का एक पुराना हाथी है। खाने को न मिला, सूखकर कंकाल बना फिरता है। उसे ट्रक में लादकर लाया जा सकता है। फिर तो राजा भी हाथी के हौदे पर बैठ आराम से रथ तक जा सकेंगे। ट्रक में लाये बिना पांच कोस चलकर हाथी आ नहीं सकेगा।''

सबने उसकी बात हंसकर जोरदार ठहाके में ऊपर-ही-ऊपर उड़ा दी।

''हें हें, राजा। कैसा राजा, कहां स्वाधीन कलिंग साम्राज्य के वीराधिवीर नवकोटि कलवर्गेश्वर गजपति महाराज और कहां हमारे शेरगढ़ मुल्क के शराबी राजा-- जो दिन में भी आकाश की ओर देख तारे गिनते हैं।... के.टी.सी.आई. हैं।... यह बकवास छोड़ो। अब रथ कैसे खीचेंगे, वह बात करो। लोग परेशान हो रहे हैं। दिन का एक बजने को आया।''

परिड़ाजी तमतमाकर रथ के नीचे उतर आये। बोले, ''मुझे नहीं चाहिए। मैं झाड़ू नहीं लगाऊंगा। रथ चले या न चले, मेरा इस में क्या आता-जाता है। मैं घर चला।''

उनके छह भाई भी पीछे पीछे चल पड़े। उठकर खड़े हो गये।

लोग वैसे ही रथ का रस्सा थामे खड़े हैं। लो, यह तो घोर विपदा आ गयी। रथ खींचे बिना घर लौटें क्या मुंह लेकर? पुनर्जन्म के संकट से भी उद्धार हो तो कैसे? वे आपस में एक-दूसरे का चेहरा देख खुसर-पुसुर करने लगे। इधर भूख और उधर धूप में अक्ल गड़बड़ा रही है।

अंत में तय हुआ--इस बरस परिड़ाजी झाड़ू लगायें। अगले बरस देखी जायेगी। आनंद में एक बार 'हरि बोल' ध्वनि से शहर कांप उठा। जोरों के घर्र घर्र नाद में रथ आगे बढ़ चला।

पद्मबीज

उस दिन हमारी पड़ोसिन ने टोकरी भर दाने भेज दिये पद्मबीज (कमलगट्टे) के, टोकरी के साथ। वे खुद उन्होंने नहीं मंगवाये थे। उन्हें किसी और ने गांव से लाकर दिये थे। पत्नी ने कमलगट्टे देखकर मुंह फेर लिया। कहा--"हां, तरकारी अच्छी लगती है। मैं कुंआरी थी, उन दिनों कई बार खायी है। मगर कैसे बनती है, यह मैं नहीं जानती।"

आखिर महाराज (रसोइये) को बड़ी दीदी के घर भेजना पड़ा। वह मुझसे दस बरस बड़ी है। सत्तर से भी ज्यादा की होगी। खाना बनाने में खूब नाम है दीदी का। मगर वे कमलगट्टे की सब्जी बनाना भूल गयी थीं। उन्होंने भेजा एक और के घर--बड़ी जेठानी सावित्री देवी के यहां। वहां महाराज जो कुछ पूछकर आया उसी के मुताबिक मसाला डाला गया, तरकारी पकायी गयी। वैसे तरकारी ऐसी लज्जतदार बनी कि सहज ही उसके स्वाद को भुलाया नहीं जा सकता।

रात में खा-पीकर पलंग पर लेटे, पेट पर हाथ फेरते समय कई बातें याद आ गयीं--गांव का वह पद्मपोखर। तीनों किनारों पर कमल-ही-कमल के फूल। कुंई की लता से भरा। सिर्फ पूर्व की ओर से बीच तक किनारा साफ रहता। उस किनारे पर लोग नहाना-धोना करते, तिल-तर्पण भी होता। दुपहर में गाय, बैल, भैंस, बकरी वगैरह को लाकर पानी में नहलाते व पानी पिलाते। घाट से कुछ हटकर कपड़े धोना अनवरत चलता।

पोखर में मछली से ज्यादा थी जोंक। एक बार खुदरकुणी के व्रत के समय बीनू दीदी ने कहा--कुछ पद्म लाकर दो। मुझे सवेरे वाला वह गीत याद आया--

"पद्मावती रानी
कंसेर घरनी, करछि धरित्रि ओषा,
लक्षभार पद्म
दबेर कन्हाई, पाखुडा न थिब मिशा।"

(पद्मावती रानी
कंस की घरनी
लक्षभार पद्म

देगा रे कन्हाई
पंखुड़ी देना न मिलाय।)

बहादुरी दिखाने के लिए बिना किसी को बताये मैं धप्प से पानी में चला गया। दलदल में पैर फंस गया, और मेरे होश गुम। कुछ पद्म तोड़कर गले में डाल रखे थे। अचानक सारी देह जलन से भर गयी। मानो कोई चिनगारी लगा रहा हो। समूची देह कोई जकड़े है। मैं दर्द से घबराकर चीख उठा। हड़बड़ाकर ऊपर उठ आया तो देखा हाथ-पांव, पीठ-छाती सब जगह पंद्रह-बीस जोंक चिपट गयी हैं। मेरा खून चूसने में लगी हैं। कितना खींचता हूं, छोड़ती ही नहीं। चमड़ी छिल जाती है। अचेत होकर पोखर के किनारे गिर पड़ा। पास में गायें चराने वाले छोकरे दौड़कर चले आये। चिल्लाने लगे। गांववाले आकर जमा हो गये। वे भी जोंक खींच रहे हैं। चमड़ी उखड़ जाती है, मगर जोंक छोड़ ही नहीं रहीं। आखिर एक ने कहा--"जाकर अंजुरी भर नमक ले आओ।"

तब तक मां-पिताजी सब खबर सुनकर आ पहुंचे थे। वे भी चीख-पुकार में शामिल हो गये। मां तो बस--'क्या हुआ रे, यह क्या हुआ रे!' कहती हाथ-पांव पटक रही थी। नमक आया। आधा खून पी गयीं तब तक। एकदम सफेद पड़ गया मैं तो। होश का तो सवाल ही न था। तब बैलगाड़ी में लादकर शहर अस्पताल में गये। सेलाइन और कई इंजेक्शन लेने पड़े। तब जाकर दस दिन बाद ठीक हुआ, घर लौटा।

एक बार मामा के यहां गया हुआ था मैं। साथ थे दोनों भाई और मां भी। वहां भी बहुत बड़ा पोखर है। कोई पूजा थी उस दिन। दोनों ममेरी बहनों ने जिद पकड़ ली--'हमें कुंई लाकर दो।' उनके दो भाई घर पर थे नहीं। मैं मना करता तो डरपोक कहलाता। लेकिन पुराना अनुभव भूला न था।

छुटकी, यानी परिमला ने अधिक जिद की। नौवीं में पढ़ती थी। एक-दो बार उसका कहना न किया तो गाल पर चिकोटी काट दी थी। मैंने उसके आंचल का एक हिस्सा दांत से काट दिया था। मां ने आकर छुड़ाया। उसकी लंबी वेणी पर मैंने एक बार कैंची चला दी थी। उस वक्त तो वह नींद में सोई थी। मगर मैं पकड़ा गया। मामी ने जाकर मां से कह दिया। मां ने आकर अच्छी तरह पिटाई कर दी।

हां, अबकी बार मैं पानी में नहीं उतरा। पोखर के बायीं ओर किनारे पर एक बड़ा आम का पेड़ था। उसकी लंबी डाल अंदर तक झुकी थी। वहां पर एक लग्गी लेकर डाल पर बैठा फूल खींचता रहा। आठ-दस फूल खींचने में ही काफी देर हो गयी। तभी देखा, दाहिने हाथ में कुछ काट रहा है। पानी में छपाक से गिरा। मगर उधर ध्यान दिये बिना फूल खींचता रहा।

कुछ देर में थकावट लगने लगी। एक तरह से ऊंघ सा गया। हड़बड़ाकर नीचे उतरने लगा। तभी मामा जी कहीं से आकर घाट पर पहुंचे। मुझे पेड़ पर देख चिल्लाये--"चल

चल, घर चल। तुझे पेड़ पर चढ़ने को किसने कहा? शैतान। ठहर, दीदी से शिकायत करता हूं। जमकर पिटाई होनी चाहिए तेरी।''

मैंने सुना था, उस पोखर में दो जने डूबकर मर चुके हैं। कहते हैं, उनके भूत इस आम पर रहते हैं। चिलचिलाती दुपहर में या सुनसान सांझ की बेला में कोई उधर कभी नहीं जाता। आम पर चढ़ने की बात तो दूर रही।

पेड़ से उतरकर देखा--मेरी बांह से जगह जगह खून टपक रहा है। हाथ से खून पोंछ सीधा घर की ओर दौड़ा। परमिला के हाथ में कुंई बढ़ा दिये। हाथ-पांव धोकर चारपाई पर बैठ गया। मामी खाना परोसकर बुलाने आयी, तब तक मैं लेट गया था। हिला-हिलाकर जगाया। मगर मैं सिर्फ गूं-गां कर रहा था। मामी ने उलटाकर मुझे खींचा, हाथ से खून बहता देख चौंक उठी। ऊंची आवाज देकर मां व दोनों भाइयों को बुलाया। दोल पूर्णिमा के दिन थे, वे सब नहीं थे। बापू व बीनू दीदी कटक में थे। मां झपटकर आयी। मुझे देख ऊंची आवाज में--''अब क्या होगा? इसे क्या हो गया?'' चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगी। मंझले मामा दौड़े दौड़े जाकर माली-साही से केला सेठी को बुला लाये। इस इलाके के नामी ओझा हैं वह। आकर मंत्र फूंका। बार बार मुझ पर पानी के छींटे दिये। फिर बोले, ''किसी जीव-जंतु ने काट लिया है पेड़ पर। वो जी न सकेगा। यह कोई गिरगिट होगा या कोई कीड़ा... ।''

उन्होंने उस घाव पर पीत की छोटी थाली लगायी। इतनी वजना थाली नीचे नहीं गिरी। कैसे चिपक गयी वहां? खूब झाड़-फूंक की, तब जाकर मुझे होश आया। ओझा ने बताया--''इसे सोने न देना। कल दिन में इसी समय जहर उतरेगा। इस बीच सो जायेगा तो कोई भी बचा न पायेगा। सावधान रहना।''

दोनों भाई और परिमला तीमारदारी में सजग रहे ताकि मैं सो न जाऊं। मां ने बताया--''दिन-रात में परिमला की एक बार भी पलक नहीं झपकी। मूर्ति बनी बिस्तर के पास काठ सी स्थिर बैठी रही।'' अगले दिन बापू और बीनू दीदी आ पहुंचे।

चारपाई पर लेटा था। कई बातें सिनेमा की रील की तरह आ रही थीं। कितने दिन से गांव नहीं गया था। मामा के घर की बात तो बहुत दूर की है। बापू चले गये। गांव में मां है, बीनू दीदी भी विधवा होकर गांव में ही मां के पास है। कुछ दिन ससुराल में रहकर खेत, बाग का काम देखती है। परिमला के तीन बच्चे हुए और फिर हम सबको छोड़कर चल बसी। बड़े मामा-मामी आठ बरस से इस दुनिया में नहीं....।

सुबह उठकर देखा तो मेरी स्त्री कमलगट्टे के छिलके उतारकर एक थाली में रख रही है। मुझे देखकर बोली--''कल तक तो सड़ जायेंगे। आज ही सबकी तरकारी बना लें, क्या कहते हो जी?''

वागर्थ

महाकवि कालिदास ने लिखा है--वागर्थ परस्पर जुड़े हुए हैं। वाक् या शब्द के साथ अर्थ का अन्योन्य संबंध है। वैसे ही जैसे शिव-पार्वती का संबंध है। हम अब 'अर्थ' को मतलब 'मायने' न समझ रुपया-पैसा समझते हैं। फलतः वाक् के साथ अर्थ की दूरी बढ़ती जा रही है। जो वाग्देवी का भक्त है, वह लक्ष्मीदेवी द्वारा परित्यक्त है, वर्जित है। मगर अब दशा बदल गयी है। लक्ष्मी अब सरस्वती की सौत नहीं रही अपितु लक्ष्मी सरस्वती की परिचारिका में परिणत हो गयी है।

गदाधर बाबू आज सुबह, पता नहीं क्यों, कालिदास की बात सोच रहे थे। अचानक तभी आ गये प्रकाशक खगेश्वर बाबू। गदाधर बाबू नामी-गरामी लेखक और समाज - सुधारक हैं। कलिंग साहित्य संसद् के सभापति भी हैं। लेखक-कलाकारों के लिए कई आंदोलन चलाये हैं उन्होंने।

आते ही खगेश्वर बाबू ने नमस्कार किया। गदाधर बाबू कुछे बोलें इससे पहले ही कुर्सी पर बैठ गये। चेहरे का पसीना पोंछकर बोले--"आप हम प्रकाशकों के पीछे क्यों पड़े हैं? क्यों चलाया है यह आंदोलन?"

गदाधर बाबू बोले--"प्रकाशक? मैंने तो उनके विरुद्ध कभी मुंह नहीं खोला। मैं तो सिर्फ इतना कहता हूं कि लेखकों की तरफ ध्यान दिया जाये थोड़ा बहुत।"

खगेश्वर बाबू बोले, "एक ही बात है, वही तो है।"

गदाधर बाबू ने जरा आश्चर्य में भरकर कर पूछा--एक ही बात है? सो कैसे? लेखकों का कुछ भला होने पर प्रकाशकों का क्या कोई नुकसान हो जायेगा?"

"होगा नहीं? परोक्ष में?" खगेश्वर बाबू का जवाब था।

गदाधर बाबू ने पूछा, "नुकसान क्यों होगा? मैंने तो कभी ऐसा सोचा भी नहीं। लेखक-प्रकाशक एक-दूसरे के परिपूरक हैं, सहायक हैं। आप क्यों सोचते हैं कि वे परस्पर विरोधी हैं। प्रकाशक न होता तो ओड़िया साहित्य जहां तक पहुंचा है, वहां पहुंच पाता? साहित्य को प्रकाशकों की देन कम नहीं है।"

खगेश्वर बाबू ने सिर पर हाथ फिराकर कहा, "हां, यह तो ठीक है। मगर पूछता कौन है प्रकाशकों को? सारे पुरस्कार और फूलमालाएं तो लेखक को मिलें और प्रकाशकों के

भाग में सिर्फ गालियां, बदनामी....।"

"न, न, ऐसा न कहें, खगेश्वर बाबू। किसी प्रकाशित किताब को सम्मान या पुरस्कार देने से क्या प्रकाशक का गौरव नहीं बढ़ता?" गदाधर बाबू ने पूछा।

"हां—हां, सो तो है।" इतना कहकर खगेश्वर बाबू ने कुर्सी कुछ पास खींचते हुए धीमे से सुना दिया--"जी सुनिये, बात कुछ गुप्त है। ज्यादातर प्रकाशक लेखक को कोई रायल्टी नहीं देते। 'रुपये मिले'--एक कागज पर लिखवाकर कुछ रुपये देकर चले जाते हैं। मगर हमारी बात अलग है। हमारा 'शुद्ध साहित्य मंदिर' किसी लेखक का एक पैसा भी बाकी नहीं रखता। हर बरस हम पाई पाई का हिसाब कर देते हैं। आप पता कर लें, और जितने दिख रहे हैं, एक से बढ़कर एक बगुला भगत हैं। एक भी भला मानुस नहीं। अतः आप जो कह रहे हैं, बात बिलकुल ठीक है। मैं आपके मुंह पर बड़ाई नहीं करता, आपकी पीठ-पीछे सबसे इसका जिक्र किया करता हूं। चाहे पूछकर देख लें, मेरी बात सच न हो तो कह देना--खगेश्वर झूठा है।"

इसके बाद जरा सहज होकर बैठे। गला खंखारकर बोले, "बापू कह कर गये हैं--'लेखकों का हक सदा देना'।"

गदाधर बाबू ने पूछा--"सच, आपके पिताजी ने कहा था?"

खगेश्वर बाबू ने कहा, "जी, हां, सचमुच! और नहीं तो क्या। पिताजी ने एक दिन हम तीनों भाइयों को बुलाकर कहा--'प्रकाशक का धंधा करते हो, करो। मगर एक बात याद रखना--लेखक को कभी ठगना मत। लेखक और प्रेस के कर्मचारी हमारे हाथ-पांव हैं।' मैंने बापू से पूछा--'तब कब और किसे ठगें? बिजनेस कैसे चलेगा?' बापू ने बताया, 'ठहरो। यों उतावले क्यों हो रहे हो? मैं राह बताये देता हूं, सरकार है। उसे चाहे जितना ठग लेना। टैक्स, आयकर वगैरह में चाहे जितना मरजी ठगना। सेल्स टैक्स जितना मरजी उड़ा लेना। डी.पी.आई., म्युनिसिपैलिटी, बिजली विभाग--इन सब को ठगने में कोई हरज नहीं।' जी, हमारे पिताजी तो पांच साल हुए गुजर गये। मगर उनकी बात को तोला-माशा-रत्ती मान रहे हैं। पिताजी की नीति के अनुसार ही तो बिजनेस चल रहा है। आप इस बात की जांच करके संपुष्टि कर लें। झूठ हो तो हमें कहना।" कहकर खगेश्वर बाबू खड़े हो गये और चल दिये।

गदाधर बाबू सोचते रह गये--'क्या खगेश्वर की बात सच है या फिर मुझे सीधा-सादा देखकर उल्लू बना चलते बना? सब जानते हैं कि वह धनी आदमी हैं इस शहर में। जमीन-जायदाद, बाग-बगीचा सिर्फ ओड़ीसा में ही नहीं बल्कि कई और जगहों में भी है। जमीन से मन नहीं भरा तो जल के बीच महानदी के टापू में जमीन लीज पर लेकर ककड़ी, बैंगन, टमाटर, भिंडी, तोरई पैदा कर रहे हैं। एक ट्रालर पारादीप में डालकर मछली का धंधा कर रहे हैं। इतनी जमीन-जायदाद कहां से बन गयी? सद्उपाय से या असद्उपाय से या फिर जादू-मंतर करके? या कोई इंद्रजाल ही रच दिया?' सोचते सोचते उनका दिमाग ही चकरा

गया। कोई ओर-छोर ही नहीं मिलता। गदाधर बाबू को लगा--वास्तव में साहित्य (या वाक्) और अर्थ (रुपया-पैसा) के बीच अंतर जितना बढ़ता जा रहा है। उधर, वाक् और अर्थ (यानी शब्द और मायने) में भी अंतर उतना ही ज्यादा हो जा रहा है। साहित्य क्रमशः अर्थहीन और दुर्बोध होता जा रहा है। कुछ दिनों में तो शायद यह बिलकुल व्यर्थ बन जायेगा।

खैर जो हो, खगेश्वर बाबू के स्वर्गीय पिता सच्चे आदमी थे। अच्छे लेखक थे, पंडित आदमी थे। 'अ' अनुप्रास में दो सौ पन्नों का विशाल काव्य लिख गये हैं। छपवाया था। लेकिन खगेश्वर बाबू खूब चालाक और दुनियादार आदमी लगते हैं। उनकी स्थूल काया शायद इसके लिए कुछ हद तक उत्तरदायी है।

उन्होंने अपने और स्वजनों के नाम पर खूब किताबें छापी हैं। अपने 'शुद्ध साहित्य मंदिर' के वे लेखक भी हैं, प्रकाशक भी। अतः किसी को अधिक रायल्टी देने का सवाल नहीं। इस मामले में रास्ता साफ है। बाकी बड़े बड़े सरकारी अफसरों, भूतपूर्व एवं वर्तमान अध्यापकों, शिक्षकों की दस से पंद्रह सौ किताबें उन्होंने छापी हैं। वे लोग ही तो 'पुस्तक चुनाव समिति' के सदस्य हैं। चेयरमैन हैं, सेक्रेटरी हैं। उन में कोई कोई तो देश में भुवनेश्वर से दिल्ली तक हर कमेटी के मेंबर हैं। अतः उन्हें चिंता क्या? चैन से बैठे हैं। हाल ही में लाखों रुपये की उनकी प्रकाशित किताबें बाढ़वाले इलाके में गयी हैं। गोदाम खाली हो गया। कोई रोक न सका। जो लेखक हैं, वही विचारक हैं, वही खरीदार भी, उन्हें चिंता क्या? डर कैसा?

हालांकि उन्होंने पहले बड़े बड़े लेखकों की किताबें छापी थीं। मगर वह पुरानी बात है। अपने पिता के जमाने के कुछ बड़े बड़े लेखकों से लाकर किताबें छापीं। आजकल वे चल रही हैं। तब यों कमेटी, बोर्ड, लाइब्रेरी, वाला झंझट न था। बहुत कम किताबें छपती थीं। अच्छी किताबें ही छापते। इतने दांव-पेंच, चालबाजी न थी। किताब का मतलब किताब होता था। इसमें यों कुबेर का खजाना ही मिल जायेगा, किसी के मन में सो बात भी न थी। लेकिन जमाना बदल गया। गदाधर बाबू ने देखा, इस जमाने में साहित्य-फाहित्य नहीं चलेगा। जिसका जोर, साहित्य भी उसी का।

दुर्गा पूजा - दीवाली हो गयी। किताब वालों का एक सीजन खत्म। सुबह नौ बजे थे। गदाधर बाबू ताजा पत्रिका पर नजर फिरा रहे थे। वयोवृद्ध साहित्यकार बटकृष्ण महंती छड़ी टेकते टेकते आ पहुंचे। गदाधर बाबू खड़े हो गये। सिर झुकाकर नमस्कार किया। हाथ पकड़कर पास की कुर्सी पर बिठाया। विनयपूर्वक झुककर पूछा, "जी बात क्या है? सब ठीक-ठाक तो है?"

बट बाबू ने निराशा में कहा, "ठीक और क्या पूछते हो? अस्सी पार कर गया मैं तो। कमाई पैसे की भी नहीं रही। अब दमा अधिक हो रहा है। जोर पकड़ लेता है कभी कभी।" कहते हुए खांसने लगे। फिर हांफने लगे।

गदाधर बाबू ने कहा--"अभी अभी दीवाली गयी है। रायल्टी तो एकमुश्त कुछ मिली होगी?" बट बाबू ने करुण दृष्टि से देख कूंथते हुए कहा--"कुल पैंतीस रुपये मिले थे!"

"क्यों? आपकी किताबें तो बी.ए., एम.ए. में चलती हैं। वे तो काफी कीमती किताबें हैं। पैंतीस रुपये? हिसाब मांगा था?" गदाधर बाबू ने पूछा।

बट बाबू ने उत्तर दिया--"हिसाब मांगा था, मगर प्रकाशक बोले--'आप सारा रुपया तो पहले ही दस-पांच, दस-पांच करके ले चुके हैं। और रुपये आयेंगे कहां से? आपके हिसाब में कुल पैंतीस रुपये निकलते हैं।"

गदाधर बाबू ने पूछा, "आप सारे रुपये ले चुके हैं?"

बट बाबू ने अपराधी की तरह कहा, "हर महीने जरूरत पड़ती थी तो मांग लेता। दो-तीन घंटा बिठाते, फिर मुंह सिकोड़कर दस-पांच रुपये बढ़ा देते। और कहते--'जाइये।' बिलकुल नहीं दिये, ऐसा तो मैं नहीं कहूंगा।"

और फिर वे खड़े हो गये। बोले, 'मैं चलता हूं। आप हम लेखकों-कलाकारों के लिए लड़ रहे हैं। भगवान आप को दीर्घायु करें, मेरे भत्ते[1] के लिए कुछ कोशिश करना। बस यही कहने आया था। मेरा और है भी क्या? कौन है जो मेरे लिए कुछ करेगा, सोचेगा? आप मेरे लिए लिखेंगे तो सरकार जरूर कुछ करेगी।"

गदाधर बाबू सोच रहे थे--मेरी बात सरकार रखेगी--यह कोई जरूरी नहीं। फिर भी आश्वासन देकर बोले, "जरूर लिखूंगा। आज ही लिखूंगा। देखें, क्या होता है?"

बट बाबू उन्हें आशीष देकर छड़ी से ठुक ठुक करते चले गये। जाते जाते इतना और कह गये--"भगवान तुम्हारा भला करें!"

खगेश्वर बाबू पर गदाधर बाबू को क्रोध आ गया। कितना धूर्त है। उस दिन सत्य पाठ करने की भांति बोल गया--'मैं हलफ लेकर कहता हूं, हमारे 'शुद्ध साहित्य मंदिर' के पास किसी लेखक का एक पैसा भी रायल्टी बाकी नहीं। सारे पैसों का हिसाब साफ है, एकदम।' फिर कहता है--'पिता जी ने मना किया है लेखकों को ठगने के लिए।' इधर देखते हैं तो बट बाबू जैसे वयोवृद्ध उच्च कोटि के साहित्यकार के साथ सरासर दगाबाजी। क्या कुछ नहीं किया उन्होंने साहित्य के लिए? जीवन भर कुंवारे रहे, बाल-बच्चों का मुंह नहीं देखा, अकेले रहकर साहित्य-साधना करते रहे हैं। उनकी किताबें क्लासिक मानी जाती हैं। उनके साथ ऐसा व्यवहार, यह तो सरासर डकैती है।

गदाधर बाबू गुस्से में लाल हो गये। फोन मिलाया खगेश्वर बाबू के घर से। फोन उठाया आठ-नौ बरस की बच्ची ने। बातों से लग रहा था, छठी या सातवीं कक्षा की छात्रा होगी।

उसने पूछा, "कौन?"

---

1. वृद्ध अथवा रुग्ण साहित्यकारों को सरकार द्वारा दी जाने वाली मासिक सहायता।

अपना नाम बताया गदाधर बाबू ने। "देखती हूं," कहकर रिसीवर अलग रखकर गयी। आकर कहा, "बापू सो रहे हैं।"

सो रहे हैं, दस बजे! फिर ग्यारह बजे फोन किया, उसी ने उठाया। अब की नाम बताने की जरूरत नहीं पड़ी, उसने फिर कहा, "बापू सोये हुए हैं।"

फिर पांच बजे, आठ बजे फोन किया, उसी ने उठाया। वही उत्तर--"बापू सोये हुए हैं।"

गदाधर बाबू गुस्सा हो गये। अगले दिन 'संभार' में एक जोरदार स्टेटमेंट दे दिया। उसका शीर्षक था--'विख्यात वयोवृद्ध साहित्यकार की दुर्दशा'।

इसमें कहा गया था कि किस प्रकार एक प्रतिष्ठित प्रकाशक ने वयोवृद्ध साहित्यकार बटकृष्ण महांती को घंटों बिठाकर अनुनय करने को मजबूर किया। फिर दस-पांच रुपये देकर विदा कर दिया। और अब साल के अंत में मात्र 35 रुपये रायल्टी। इस घटना का संक्षिप्त वर्णन मर्मस्पर्शी भाषा में किया गया था। सरकारी उदासीनता की इस मामले में कटु आलोचना थी। अंत में लिखा था--संक्षेप में है।

हालांकि किसी आदमी या फर्म का नाम वहां न था, मगर सब जानते हैं कि महान साहित्यकार बटकृष्ण बाबू की किताबों का प्रकाशक कौन है। लोग आपस में फुसफुसाहट करने लगे।

आठ-दस दिन बाद की बात हे। अस्सी वर्ष के बूढ़े बट बाबू की जीर्ण-शीर्ण कुटिया के आगे खगेश्वर बावू की सफेद अंबेसेडर खड़ी है। लिजलिजे बने खगेश्वर बाबू अंदर दाखिल हुए। पीछे पीछे ड्राइवर टोकरी में कुछ चीजें लिये है।

बस्ती वालों में कानाफूसी हुई--"अब बटबाबू के भाग खुल गये समझो। कोई बड़ा आदमी चार-पांच दिन से आ रहा है।"

दूसरे ने कहा, "बट बाबू मामूली आदमी नहीं है। महान व्यक्ति हैं वे। उनके मरने पर देखना, मंत्री, जिलाधीश, आई.जी., एस.पी., 'संभार' के संपादक आयेंगे--उनकी अरथी पर फूल चढ़ाने। उनकी जीवनवृत्ति अखबारों में पहले पन्ने पर छपेगी। अजर-अमर हो जायेंगे।"

हफ्ते भर बाद ही शाम को 'संभार' में प्रतिवाद छप गया--

'वयोवृद्ध साहित्यकार का प्रतिवाद।' लेख में बट बाबू ने निर्मल हृदय से घोषणा की थी--"अमुक तारीख के 'संभार' में मुझे लेकर गदाधर नायक ने दुर्भाग्यपूर्ण स्टेटमेंट दिया है। उसमें तथ्यों की खेदजनक भूल रह गयी हैं। प्रकाशक खगेश्वर मेरे पुराने मित्र हैं। सहोदर की तरह हैं। सारा प्राप्त मांगते ही दे दिया करते हैं। कभी कभी एडवांस भी दे देते हैं। वे जिस प्रकार भले-बुरे में मेरा साथ देते हैं, सगा भाई भी नहीं देगा। उनके बारे में ऐसा कोई वक्तव्य देना--उन्हें मर्माहत करता है। इसका वे दृढ़ता के साथ प्रतिवाद करते हैं...।"

पढ़कर गदाधर बाबू सन्न। सिर पर हाथ रखे रह गये। जुबान तालू से चिपक गयी। सोच रहे थे--'आखिर लोग कहेंगे कि मैं उन्हें ब्लैकमेल कर रहा था। झूठ-मूठ ही भले आदमी के नाम पर बकवास कर रहा हूं?' सारी रात नींद नहीं आयी।

सुबह सात बजते-न-बजते फोन की घंटी बज गयी। खगेश्वर बाबू ने गदाधर बाबू को याद किया था--"जी कल का 'संभार' देखा?"

गदाधर बाबू चुप। बोली बंद। वे चुप रहे थे---"जी? कौन? गदाधर बाबू! मैं खगेश्वर कह रहा हूं। जी, गदाधर जी...?"

गुस्से में गदाधर जी अस्थिर हो उठे। उनकी सारी देह पराजय की ग्लानि से भर गयी। जोर से चीखते हुए कह उठे--"नहीं... नहीं... मैं नहीं, यहां.... इस देश में आप और आपके जैसे लोग ही रहते हैं और वे ही रहेंगे!"

और उन्होंने झटके से फोन का चोंगा रख दिया।

विसर्जन

कटक का दशहरा। विजयदशमी में सिर्फ दो दिन और रह गये हैं। चारों ओर दुर्गा-पूजा के लिए जोरदार तैयारियां।

सब ओर अपनी अपनी देवी को श्रेष्ठ आसन देने की चेष्टा चल रही है। रुपये-पैसों की किसी को परवाह नहीं, पानी की तरह बहाया जा रहा है।

पिछले बरस चौधरी बाजार का बालू बाजार से झगड़ा हो गया था। अतः इस बार उस गुस्से को उतारने के लिए दोनों दलों में भीतर-ही-भीतर एक-दूसरे के विरुद्ध जोरदार तैयारी चल रही है। लाठी व लठैतों की पूरी व्यवस्था की गयी है। बस, मौके की तलाश में चुप हैं। दोनों दलों के बीच प्रतिद्वंद्विता की कोई सीमा नहीं रही। हजारों रुपये खर्च कर दुर्गा को सजाने के लिए कलकत्ता से कारीगर बुलवाये गये।

आज विजयदशमी है। विसर्जन की करुण वंसी शहर के निद्रित वक्ष को कंपित कर रही है। सबके मन में, पता नहीं क्यों, एक आशंका भरी है। लगता है, जैसे कुछ अनहोनी होकर रहेगी।

सब आज बालू बाजार व चौधरी बाजार की मूर्तियों के पास इकट्ठे हो रहे हैं। ऐसी देवी किसी ने कभी देखी भी नहीं होगी। इतना सुंदर रूप, कीमती साज-सजावट कटक में कभी नहीं हुई। इन मूर्तियों को बनाने में हजारों रुपये खर्च हुए हैं।

जुलूस में चौधरी बाजार का दल आगे जा रहा है। बालू बाजार वाले उसे लांघने को उतावले हैं, मगर लांघ नहीं सकते। सब चुपचाप भीड़ को धकेल आगे आगे जा रहे हैं। दर्शकों को लगता है--अब कुछ हुआ, अब कुछ हुआ। कुछ ऐसे भी हैं जो तमाशा देखने भर के लिए दोनों दलों को उकसा रहे हैं।

आगे चौधरी बाजार का चौराहा है। वहां अगर बालू बाजार वाले आगे न जा सके तो बस अंत तक पीछे ही चलना होगा। बालू बाजार वालों की चाल में तेजी आ गयी। यह चौराहा तेजी से पार करना होगा।

धगड़... धगड़... धूम.. ड्रम बज उठे। धड़क धड़ककर सबका हृदय कांप उठा। युवक

लाठी लेकर आगे बढ़कर कूद गये। बड़े-बूढ़े 'मां भगवती की जो इच्छा' कह मन-ही-मन स्मरण करने लगे।

चौधरी बाजार वालों ने जमकर रास्ता रोक लिया। वे हमेशा आगे रहना चाहते हैं। तभी एक लकड़ी का टुकड़ा जाकर चौधरी बाजार वालों के बीच गिरा। बड़ी सी लाइट टूटकर चूर चूर हो गयी। लाठी आकर चौधरी बाजार वालों की देवी पर गिरी। विमान टूट गया। 'मारो... मारो...' की चीख-पुकार मच गयी। सब की देह का खून गरम हो गया। ड्रम की आवाज तेज हो गयी।

दोनों दल पंद्रह-बीस कदम दूर ही रह गये, अब दोनों एक-दूसरे पर हमला करेंगे। अगला दल दूसरे पर हमला करेगा। अगला दल लड़ाई की प्रतीक्षा में खड़ा है। पिछले दल के लोग उनके पास पहुंचने को व्यग्र हैं। बस, दस-बारह हाथ का फासला रह गया है। वातावरण लाठियों की आवाज से भर उठा।

तभी कोई दोनों दलों के बीच खड़ा हो गया। सबने देखा कि आगंतुक एक महिला है। दोनों दल अवाक् खड़े रह गये। लाइट आगे करके देखा, कोई औरत है। मांगकर खाती है वह--अंइठू की मां है।

अंइठू की मां की गोद से चिपटी है मरे बच्चे की सड़ी लाश। शायद तीन-चार दिन पहले ही मरा है। सड़ांध चारों ओर भर रही है। सब नाक पर रूमाल रख अंइठू की मां को भगाने लगे।

मगर अंइठू की मां राह से हटी ही नहीं। बस, पगली की तरह जोर जोर से हंसने लगी--"मेरे अंइठू को खाने को दो--नौ दिन से इसने कुछ भी नहीं खाया है। इसे खाना न दोगे, तो मैं भी राह नहीं छोड़ूंगी।" दोनों हाथ फैला, राह रोककर खड़ी हो गयी। लाश पर से हाथ खिसक गया तो वह धम से गिर पड़ी। दोनों ओर के लोग हड़बड़ाकर पीछे हट गये। वह उसे गिरता देख चीख उठी--'अरे - रे!' धीरे धीरे उसे धरती से उठाकर कहने लगी--"रो मत... मत रो मेरे लाल! लग गयी? बस..." समझाने लगी।

औरत का पागलपन देख दो-चार शैतान छोकरे आगे आये। उसे दो-चार घूंसे मारकर किनारे हो जाने को कहा। मगर मार खाकर भी अंइठू की मां गुस्से में कहने लगी, "मारोगे? मेरे अंइठू को मारोगे...? दुष्टों का खून पी जाऊंगी? आ देखूं, अभी चबाती हूं।" बाल हवा में फरफरा रहे थे। साड़ी भी छाती पर से कब खिसक चुकी थी, पता ही नहीं। कमर में खोंसे थी आंचल।

वे शैतान छोकरे अंइठू की मां का वह भयंकर रूप देख डर गये। उसकी गाली-गलौज से बचने के लिए भीड़ में दुबक गये। तनिक रुककर वह लोगों की भीड़ से कहने लगी, "अंइठू ने नौ दिन से कुछ नहीं खाया। क्या था जो वह खाता... और उसे बुखार हो गया। देखो... बेटे की देह तवे की तरह जल रही है।... एक पैसा दो बाबू, डागदर से दवा लाकर दूंगी। बस, यही एक है...।" और कुछ बोल नहीं पायी। फफक फफककर रोने लगी।

भीड़ में से दो-चार वृद्ध लोग निकल आये। तरह तरह की बातें कहकर यह बात

समझायी—"तेरा अंइठू तो मर चुका है!"

मरने की बात सुन वह अनाप-शनाप गालियां बकने लगी। गुस्सा कुछ ठंडा होने के बाद कहने लगी, "अंइठू रे!... मेरे अंइठू रे!"

बाजे बंद हो गये। शत्रुता भूल दोनों दल वाले अंइठू की मां की विकल चीख-पुकार सुनने लगे। सैकड़ों आंखों से आंसुओं की ऊष्म धारा बहकर कटक की सड़क को भिगोती रही। इसके बाद वह खड़ी हो गयी। सड़क के किनारे पड़े कुंड से दो-चार फटे चिथड़े निकाले। उसी में अपने लत्ते रखा करती थी। बिछाकर उस पर अंइठू को लिटा दिया।

जुलूस को रुका देख चौधरी बाजार के नामी-गिरामी नेता मिस्सरजी आकर घटना-स्थल पर पहुंच गये। मिस्सरजी के हाथ में थी रुद्राक्ष माला। देखा, यहां भगवती दुर्गा का काम बंद हो रहा है। गुस्से में वे लाल हो गये "उस भिखारिन को ठोकरों से हटाकर मां को आगे ले चलो।" मिस्सरजी महाराज ने हुकुम दे दिया। अंइठू की मां भीड़ में उन्हें देख न सकी। सिर्फ आवाज सुनकर ही गुस्से में जल उठी। मानो यह स्वर उसका बहुत दिनों से परिचित है। मानो इस आवाज ने उसके रुद्ध प्राणों पर पत्थर से वार कर दिया है। दुख व वेदना से तिलमिला उठी। धीरे धीरे खड़ी हो गयी। उस आवाज को लक्ष्य करके कहने लगी, "रख अपने बेटे को, मैं जल गयी इसकी ज्वाला में।" और छाती पर चिपटायी लाश मिस्सर के पैरों में डाल दी। और फिर उस निर्जन रात के अंधेरे में अंइठू की मां कहीं लीन हो गयी। सबने सोचा--'पगली है, बक रही है अंटशंट।' मिस्सर जी ने हुकुम दिया है--ले जाओ जुलूस!' मगर जुलूस आगे कैसे जाये? राह में लाश जों है। उसे लांघकर मां भगवती का विमान कैसे जाये? बड़े बड़े बाह्मन-पंडित निकलकर आये और शास्त्र का उदाहरण देकर बात बताने लगे। आखिर तय हुआ कि लाश को रास्ते से हटाना पहला कर्तव्य है। वरना मां की देह अपवित्र हो जायेगी।

तभी भीड़ से दो नवयुवक निकल आये। खादी पहने हैं। लाश उठाकर 'राम नाम सत्य है' जोर जोर से कहते हुए श्मशान की ओर चल पड़े।

पीछे पीछे चली मां देवी की शोभायात्रा। आगे अंइठू का जरा सा शव, पीछे पीछे मां का उद्धत खड्ग--धरती पर प्रलय की वार्ता का प्रचार कर रहा है। बाजे बज उठे। "हरि बोल!" की ध्वनि। धरती के सारे दोषों--लूट-पाट, हानि-लाभ, मृत्यु के विरुद्ध मां की जययात्रा शहर की छाती को कंपायमान कर रही है। उत्कंठित जनता अननुभूत ध्वंस-रस में पागल होकर करालिनी मां, मृण्मय मूर्ति को कंधे पर उठा काठजोड़ी नदी के पुलिन की ओर चल पड़ी।

खाननगर के श्मशान में जब अंइठू की लाश माटी के गड्ढे में उतारी जा रही थी, उसी समय देवी घाट पर मां भगवती की मृण्मय मूर्ति का काठजोड़ी नदी के जल में विसर्जन हो रहा था।

राख, हुलुहुली[1], हरि बोल[2] ध्वनियों से नदी का घाट गूंज रहा था।

1, 2. शुभ मुहूर्तों पर निकाली जाने वाली ध्वनियां।

सहस्र शैया की नायिका

आकाश में चांद उग आया है। सावन में चांदनी की हल्की छाया। आकाशगंगा आधी दिखती है, आधी नहीं। कभी कभी मौसमी हवा में भी आर्द्र, कुंचित कंपन में जलीय वाष्प की ऊष्म आंतरिकता बह जाती है। वह आदमी के हाड़ में अगणित मधुमक्खियों का अनुच्चारित घोष पैदा करता है...। भीगी माटी की हल्की गंध में मिला है धान के खेत का स्निग्ध शैशव और वन की तरुण हरियाली। सूने ईथर तले भीरु चांदनी की क्लांत कातर विनती के विरुद्ध प्रतिवाद करती राज कर रही है वर्षा। उसका अविनीत अभिजात्य और क्षणिक बांझ पौरुष।

यही था उस दिन का बैकग्राउंड।

मीनाक्षी के अशांत यौवन पर जमी है युगों की तंद्रा... सरोवर की स्थिर जलशैया पर पड़ रही है मानो ढलती सांझ की छाया। उसकी इस लूली स्थविरता का जन्म सावन की रात के गुप्त जरायु से नहीं हुआ। यही उसकी मूल प्रकृति है...। यही उसकी प्राणधारा का सनातन, आदिम उत्स है।

फिर भी उसके यौवन की नींद आज टूटी है। जैसे कभी ऐरावत के दंताघात से सुरगंगा की मोह निद्रा अचानक टूटी थी। उस का यौवन आकाश की जीवंत विस्तृति की ओर आंखें मलते हुए, जम्हाई लेते हुए ताक रहा है, जहां पर रंगों का झरना अविराम गति से दौड़ते हुए बह गया है। काले मेघ के हाथों से अनाहत गंभीर में।

सदियों की निरंतर तंद्रा की तपस्या के बाद मीनाक्षी पहली बार आंखें खोल देख रही है...। बहुत दूर आ गयी इसी बीच। पीछे छूट गया उसका मंथर मुमूर्ष संसार, पति, पुत्र, घर-बार और किसी प्रागैतिहासिक की तरह उसका परिचित अतिकाय रोजमर्रा का...।

सहज ही उन सबको वह पार कर आयी है। उस के अंतर में बज रहा है अतिक्रमण का छंद... आंखों में ऊष्म आकांक्षा की विरामहीन लापरवाह लहरें।

ऊपर चांद की बीमार मुस्कान तले भीगी माटी की महक का रोमांस...। दोनों के बीच विनिमय का जरा सा मौका देकर झर जाता है आद्य जुलाई का श्यामल समारोह। वर्षा का भद्र, मेयुर व्यक्तित्व।

यही है उस दिन की भीतर-बाहर की परिस्थिति।

अचानक मीनाक्षी बोली--'मैं मीनाक्षी नहीं हूं, मैं तुम्हारी क्षिप्रा हूं। हजार वर्ष पहले की वह अति पुरातन, अति परिचित क्षिप्रा। मेरा विश्वास करो। मीनाक्षी की अकाल मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए आज क्षिप्रा का पुनर्जन्म हुआ है। मैं फिर उसी वन्य, आदिम बर्बरता में स्थापित होना चाहती हूं। उस दिन और आज के बीच में जो अंतर आ गया है, उसे मैं लांघ जाना चाहती हूं।'

अचानक मुझे याद आया--दिमाग पर बहुत जोर देने पर याद आया कि वर्षों पहले कभी मीनाक्षी के जन्मदिन पर मैंने उसे चुपके से 'क्षिप्रा' नाम दिया था। जन्मदिन के शोर-शराबे में मैं उसे कॉरिडोर में ले गया था। चुपके से उसे पुकारा था--'क्षिप्रा!' यह नाम उसे गोपन में दिया गया था। उस छोटे से नाम में मैंने अपनी आहत आत्मा का क्षत-विक्षत रक्तिम हस्ताक्षर और अपने उदार व्यक्तित्व का अकृपण, अकृत्रिम परिचय स्थापित किया था...।

आज क्षिप्रा लौट आयी है, पर मीनाक्षी तो नहीं मरी। वह भी है। उसके पति, संतान, परिवार, उसका समूचा परिवेश उसे घेरकर खड़ा है। मीनाक्षी जी रही है। सांप की विषैली सांस की तरह उसकी सांसें मेरे कंकाल को छू रही हैं। दोनों को स्वीकार करना होगा। दोनों व्यक्तित्वों को अपनाना पड़ेगा।

मैंने कहा--''क्षिप्रा, लौट आयी हो? अच्छी बात है। पर यह क्षिप्रा तुषार से ढंकी क्षिप्रा की स्थिर तट-भूमि नहीं है। यह तो क्षितिज तक फैली तीखी धार है। इस पर प्राचीन उज्जयिनी के धूसर प्रासादों की छाया मानो प्रतिबिंबित हो रही है जैसे अगणित नगरों और पुर-पल्ली का तैरता रूप मूर्च्छित हो रहा हो। सबको अपने वक्ष पर स्थान दिया है, सबकी उदार छाया को अपने चलायमान हृदय में रखकर नव-सौंदर्य में चित्रित किया है। यही उसके व्यक्तित्व का रहस्य है--यही उसके गति-क्रम की विशेषता है।

''मीनाक्षी ने आज निर्झर का स्वप्न तोड़ा है। उसने आज अपरिचित के आविष्कार में स्वयं को जानना चाहा है, दूर के अन्वेषण में अपने निकटतम और अंतरतम सत्य को उपलब्ध कराना चाहा है। अपने अंतर्यामी को आज बाहर के विश्व से ढूंढकर अपनी अखंड मौलिकता में संचय करने को व्याकुल है। वह निर्बंध निर्झर है। उसकी न सीमा है, न तट, कुछ नहीं, फिर भी उसका सब कुछ था, सब रहेगा। पर उस सबको वह सहज ही पार कर आयी है, और अधिक सहज भाव से पार कर जायेगी उस सबको।''

मीनाक्षी कुछ समझ नहीं सकी। मेरी बात का भयावह इंगित बिलकुल नहीं समझ पायी। मेरी ओर देखने लगी। मेरी निगाह में छुपी सारी आशंका उसके दृष्टि-दीप की मर्मभेदी तरंगों की पकड़ाई में आ गयी--फिर पुंछ गयी।

वह हंसने लगी। कहा, ''मेरा विश्वास करो, मैं लौट आयी हूं। मैं तुम्हारी...।''

उसकी हंसी में प्रत्यय न था। सर्वग्रासी क्षुधा थी--सर्वव्यापी आनंद था और था सर्वजयी भयंकर सौंदर्य...।

घातचंद्र के नष्ट लावण्य की तरह उसमें युगों की संचित वेदना क्रमशः पल्लवित हो रही थी।

मैंने कहा--"तुम एक दिन मेरी बनोगी, कभी-न-कभी यहां मेरे पास वापस आओगी। मैं बहुत पहले से जानता था कि तेरे और मेरे चिंतन में जो सहानुभूति की गहराई है, बाहर की दूरी के बावजूद वह हम दोनों को एक-दूसरे के नजदीक खींच लायेगी। वह दोनों को जोड़ देगी। इसे मैं अचेतन मन में अनुभव कर रहा था। तुम एक दिन मेरे अंदर स्वयं को ढूंढ पाओगी, यह बात मैं बिना बताये भी पहले से जानता था। अतः इन बातों की खुलकर घोषणा करने की मुझे शायद जरूरत न थी।"

मेरी आंखों में क्रमशः आशंका मरकर आंसू झिलमिला रहे थे। वे आंसू अनागत ट्रेजेडी के आंसू थे... वे आंसू पाने के सारे शोर-शराबे के बीच, गंवाने की संत्रस्त संभावना के आंसू थे।

मीनाक्षी ने कहा--"मैंने तुम्हें पाया, फिर गंवाया है और गंवाया है इसीलिए फिर पाने में इतनी तृप्ति और अद्‌भुत आनंद का अनुभव हो रहा है। तुम मेरी खोज में मिले रत्न हो, मन कहता है तुम्हें पाया ही नहीं, तिल तिल तुम्हारा आविष्कार किया है। इस गंवाने ने मेरे लिए पाने को बहुत बड़ा, बहुत सुंदर बना दिया है। तुम्हें गंवाकर ही मेरी पाने की जय हुई है। तुम्हें जिस दिन विदा दी, उस दिन कोई आशा न थी। पिछले साल जिस दिन स्कूल छोड़ा उस दिन मेरे सहपाठी सूर्यमणि ने मेरी नोटबुक में एक जोरदार लाइन लिख दी थी--'विदाई ही मिलन की अंतिम परिणति है।' किंतु तुम्हें जिस दिन विदा दी, यह लाइन मेरे मन में उभर आयी थी। उस दिन अचानक मुझे लगा कि तुम्हें छोड़कर जा रही हूं, तुम्हें फिर पाने के लिए....।"

रात की घनीभूत उर्वरता की दरार से नक्षत्रों की उदासीन दृष्टि की ओर देखकर वह तनिक रुकी। फिर मीनाक्षी बोली--"तुम्हें पहली बार देखते ही लगा जैसे बहुत पहले ही अपने में तुम्हें पा चुकी हूं।... तब हम एक-दूसरे से एक दम अपरिचित थे, बिलकुल जानते ही न थे। सांझ के धुंधलके में आधे दिखते, अनदिखते चेहरे की तरह मैंने तुम्हारा कुछ अंश तो कविताओं से बनाया था... बाकी मैंने अपनी कल्पना से बनाया था। तब तुम मेरे लिए थे अज्ञात कुलशील व्यक्ति। एक तरह का एब्स्ट्रैक्ट आइडिया[1]। मैं थी टेंथ क्लास की छात्रा... घनी भीड़ और धक्का-मुक्की में कोई एक आदमी। फिर भी तुम्हारे अंदर के कवि को मैं मन-ही-मन प्रेम कर बैठी। कितनी उनींदी रातें तुम्हारे कविता-संकलन पर सिर या माथा रखे रखे बिता दीं। इसके लिए अपनी सहेलियों के कितने हंसी-मजाक मुझे सहन

---

1. अमूर्त विचार।

करने पड़े हैं। छोड़ो, वह सब आज सपना सा लगता है। इसके बाद मेरी तुम से भेंट हुई। संदी की सबसे दुर्लभ वह तारीख आज भी याद है। पर वह भेंट न होती तो मेरे लिए अच्छा होता क्योंकि तुमसे कुछ पाने... या तुम्हें अपना समझ कुछ मांगने के लिए मैं नहीं जन्मी थी। आज समझ रही हूं कि यह अधिकार लेकर मैं संसार में नहीं आयी थी। किसी को व्यर्थ में मान दिखाने से क्या होगा?

"... अचानक मेरी दुनिया ने मुझे आवाज दी...। मेरे समाज, मेरे परिवार, मेरे अभिजात्य ने। और मेरा बाहरी सामाजिक मन मुझे दूर दूसरे रास्ते पर खींच ले गया। मैं बनी पत्नी, फिर बनी मां, गृहिणी, और भी बहुत कुछ। और बहुत कुछ बन सकती थी, पर नहीं हो सकी। वही दुख कभी कभी पहाड़ की तरह मेरे मन को दबा देता है। तुम मेरे वही न होने वाले प्रेमी हो... उसके साथी हो। जो हो सकी हूं वह तुम्हारी नहीं, वह किसी और की बनायी चीज हूं... उस की जूठन हूं... तुम्हारे सपनों में वह नहीं बनी। परंतु मैं जो नहीं बन सकी, हालांकि वह बन सकती थी वह तुम्हारी, नितांत तुम्हारी है। वह न हो सकने का अर्घ्य.... वह असमाप्ति का निवेदन लेकर मैं तुम्हारे मंदिर में खड़ी हूं। तुम उसे अपनी मन-मरजी के मुताबिक बना लो।"

इसके बाद वह आकाश में चांद के टुकड़ों को देख विमर्ष वेदना में कहने लगी--"मैं तुम्हें पा नहीं सकती, यह पता है। परंतु तुम्हारे अंदर जिसे पाने की बात है, उसे बहुत पहले ही पा चुकी हूं। यहां तक कि तुम से भेंट होने से बहुत पहले। उस कवि को तुम मुझसे छीन नहीं सकते, वह छीनने की चीज नहीं। वह पाने की वस्तु है। सदैव, सर्वदा अपने अंदर थामकर रखने की सामग्री है। उस कवि के लिए अपना सब-कुछ मैंने उत्सर्ग कर दिया है। वह मेरा, एकदम मेरा अपना है।"

मीनाक्षी के चौड़े माथे पर नन्हीं अलकों के बीच पसीने की बूंदें जम रही थीं। जाड़ों की अपराह्न की धूप क्षण स्थायी मध्यवित्त सौंदर्य की तरह बाहर की ठंडी हवा में अगले क्षण कहीं लीन हो जाती...। खोटे सिक्के के रंग की तरह ऊपर चांद के गाल पर मेघ की छाया उमड़-घुमड़कर नाच रही थी। चारों ओर बिखरे मछली के कांटों की तरह तारे-ही-तारे मेघों के बीच से इधर-उधर फैले दिखाई दे रहे थे।

थककर जम्हाई ले फिर कहने लगी--"चलो, दूर अपने उस अपरिचय को लौट चलें। तभी स्वयं को फिर एक बार पा सकेंगे हम, एक-दूसरे का उपभोग कर सकेंगे।

"इस बीच जो घट चुका है, उसे तैरकर हम पार करें और अतीत के उस तीर तक चलें, जहां फिर एक बार बना सकेंगे अपनी मधुशैया का स्वप्न-नीड़।"

मैंने कहा--"पीछे लौटने में कोई गौरव नहीं, मीनाक्षी। आगे चलने में ही सार्थकता है। फिर यथार्थ को धोखा देने की कोशिश करना दुराशा है। मैं प्रगतिपंथी हूं। विश्वास है कि आगे बढ़ने की तपस्या में जीवन पूर्ण होगा। आगे की ओर निरंतर चलते रहने के अनुभवों में व अनेक घटनाओं के बीच आदमी का व्यक्तित्व बड़ा हो जाता है। पीछे लौटने

में या निश्चल व स्थिर बन किसी जगह पड़े रहने में उसके बड़े होने की योग्यता नहीं आती, न उसके लिए शक्ति-संचय का अवसर रहता है। वह तो सिर्फ प्रतिक्रिया है। वह आदमी को अभिभूत करेगी, अवश्य कर देगी। पूर्णतर परिणति की ओर आगे नहीं ले जायेगी। उसमें संचय करने की स्फूर्ति नहीं। पर व्यर्थता का अवसाद है। काल्पनिक प्रेत-आत्मा की तरह तुम्हें भय दिखायेगी, आगे नहीं जाने देगी। जो कुछ तुम ने पाया है, उसे गंवा देगी। फिर जो कुछ तुम पातीं उसके प्रति भी तुम न्याय नहीं कर पाओगी। तुम्हारे सारे पाथेय से वंचित कर तुम्हें वह दीन, दरिद्र, कंगाल बना देगी... धनाढ्य गौरव में तुम्हारे व्यक्तित्व को प्रसारित नहीं होने देगी। पीछे लौटने पर क्या पाओगी? कुछ नहीं। वरन् जो कुछ थोड़ा-बहुत पाया है, उस अनुभव को पाथेय बनाओ। वह चाहे कितना भी स्थूल और मूल्यहीन हो, उसे भी गंवा दोगी। वह तुम्हारे व्यक्तित्व को बहुत दरिद्र और दुर्बल बना देगा। तुमने जो पाया है उसने तुम्हारी न पाने की क्षुधा को और धारदार और तीव्र बनाया है। तुम यदि इतना न पातीं, तो और अधिक पाने की इच्छा भी नहीं करतीं कभी।

''तुम्हारे अंदर की साधारण औरत चाहती थी एक छोटा सा सुंदर संसार। वह चाहती थी घर-बार, पति, पुत्र, धन-दौलत, गहने। उसे सब मिला। किंतु उसके साथ में हैं असाधारण। वह इसके अलावा भी कुछ चाहता है, इस सबसे वृहत्तर कुछ चाहता है। क्योंकि उसमें स्वप्न है, पिपासा है, और उसके दुर्भाग्य से उसमें उसकी प्रतिभा है। किंतु जब तक साधारण अतृप्त था, उसका स्थूल प्रयोजन पूरा नहीं हुआ था, तब तक असाधारण का गला घोंटे रहीं। साधारण की विराट क्षुधा के हाहाकार तले असाधारण का शौकीन क्षीण प्रतिवाद और रंगीन स्वप्न पहाड़-तले रुंधे झरने की तरह पड़ा रह गया। आज पाषाण तोड़ निर्झर का स्वप्न टूटा है। आज उसकी सहसा मुक्त, दुरंत प्रतिभा दूर दूर तक नीलम रहस्य की ओर संधानी आंखें खोल देख रही है। अभेद्य का व्यूह भेदने को छटपटा रही है। पर यह बिलकुल नहीं होता यदि उस झरने पर से साधारण मन की स्थूल इच्छा-अभिलाषा और प्रवृत्ति की चट्टानें तृप्ति के तरल आनंद में पिघलकर बह नहीं जातीं।

''किसी कवि ने कहा है--आदमी ने अपना परिवेश नहीं बनाया। यह उसका अयाचित भाव से वरसा धन है, परंतु साथ में हैं आदमी का मन। चाहता हैं 'मनोमत' को। वह अपनी अकस्मात पायी स्थूल परिस्थिति से संतुष्ट नहीं होता। वह चाहता है उसे मन मुताबिक गढ़ना। उसकी प्रतिभा का उसी क्षण आरंभ होता है दुस्साहसी अभियान। नये नये सौंदर्य, नयी नयी पूर्णता की खोज में अपनी और अपनी परिस्थिति के सारे अभावों को परिपूर्ण करने दौड़ता है...।

''इसमें पीछे लौटने का प्रश्न कहां है, मीनाक्षी? इसमें नयी पूर्णता में अपने को भर लेने की बात है। जितना पाया, ठीक हुआ। इस में लज्जित होने की क्या बात है? उसको जितना देना था तुम्हें वह दे चुका है। तुम्हारा संसार, तुम्हारा संपर्क, पति। तुम्हारे व्यक्तित्व को जितना पुष्ट किया है, उससे अधिक की उनसे आशा नहीं की जा सकती। परंतु तुम्हारे

अंदर की भूखी प्रतिभा... तुम्हारे अंदर की असीम आकांक्षा... वह इन सबसे भी आगे जाना चाहती है... इनसे पूर्णतर कुछ चाहती है। तुम्हें जो वे नहीं दे सके, पर जो तुम्हारे लिए नितांत जरूरी है, वह सब खुद तुम्हें जुटाना होगा। तो फिर नालिश करने का क्या फायदा? तुम्हारी पूर्णता की तपस्या केवल नालिश करके सार्थक नहीं हो सकेगी। इसके लिए फिर साधना करनी होगी। फिर संघर्ष करना होगा। फिर नये सौंदर्य की तलाश में निकलना पड़ेगा। वह सौंदर्य कहां से मिलेगा? यदि मिला भी तो कहीं अधिक, कहीं कम मिलेगा और संभव है कि कहीं बिलकुल भी न मिले। वहां रुकने से या वहीं से उतना ही लेकर लौटने से नहीं चलेगा। तुम्हें चलते रहना होगा। बहुत दूर। तुम्हारे चलने का अंत नहीं। और उस चलने की राह पीछे नहीं, आगे है। तुम्हारा हर कदम तुम्हें आगे ले जायेगा। हर कदम पहले से अधिक पूर्णता के निकट पहुंचायेगा। इस आदर्श को पाने के लिए कितने ही लोगों के दरवाजे पर जाना पड़ेगा। मेरे जैसे सैकड़ों लोगों के गले में नयी नयी सार्थकता के लिए समय समय पर या एक समय में वरमाला डालनी होगी। तब जाकर तुम्हारी बहुमुखी प्रतिभा की भूख मिटेगी। अपनी प्रतिभा को बड़ी करने के लिए तुम्हें लाखों प्रतिभाओं के साथ अभिसार करना होगा, सबसे लूटकर संचय करना होगा। तुम बहुत को अपना बनाओगी, बहुत की अपनी होगी। तुम बनोगी स्वयंवरा... तुम बनोगी सहस्र शैया की नायिका। तुम्हारा समाज, नियम, सतीत्व--सब पीछे रह जायेगा। तुम बनोगी चिर-कलंकिनी। तुम्हें देह देकर देहातीत की, चिंतन देकर अचिंतनीय की, स्वप्न देकर स्वपनेतर का स्पर्श पाना होगा। तुम्हारी देह, मन, यौवन, सतीत्व--सब तुम्हारे व्यक्तित्व के पूर्ण होने के यज्ञकुंड में आहुति बनेंगे। कितनी भयंकर है यह तपस्या! कल्पना कर पाती हो, मीनाक्षी?"

मीनाक्षी भय से पीली पड़ गयी। कांपते स्वर में कहने लगी--"मुझे डर लग रहा है। मैं यथार्थ के साथ समझौता नहीं कर पा रही। मुझे पीछे बुला रहा है मेरा संसार, मेरा समाज, उसके इस्पात से बने रूखे निष्ठुर नियम-कानून। अपने पति से मैं डरती हूं, संतान को स्नेह करती हूं, अपने यथार्थ की श्रद्धा भी करती हूं। इन सबको दुर्जय पराक्रम के जरिये लांघती आयी हूं।" वह थकी, कांपती हुई निढाल होकर मुझ पर गिर गयी।

मैंने उसकी लरजी देह को लता की तरह जोर से हिलाकर कहा--"न, न, और उपाय नहीं--कोई निस्तार नहीं। कवि क्या कहते हैं, सुनोगी--विधाता आदमी को थोड़ा सा सौंदर्य, जरा-सा लावण्य देकर बना रहे थे। कहा— ले, इतना तो मैंने दिया, बाकी इसे पूर्ण करने का भार मुझ पर नहीं। और उस क्षण से शुरू हुआ आदमी का स्वयं को पूर्ण करने का अभियान। जितना उसे मिला उसे पूर्ण करने निकला, जो नहीं मिला उसकी तलाश चली। कितने लोगों के संपर्क में आया, कितने लोगों में स्वयं को मिलाकर जो नहीं मिला उस सत्य की तलाश चली। कहीं कुछ मिला, कहीं नहीं मिला। मगर कहीं रुका नहीं वह। यदि कहीं पाने की सस्ती तृप्ति में वह चिपक जायेगा, उसे लांघकर आगे कदम बढ़ा नहीं पायेगा तो वहीं उसकी प्रतिभा की मृत्यु होगी, रास्ते पर मील के पत्थर के पास उसकी पूर्णता की

तपस्या वहीं भंग हो जायेगी, वहीं परदा पड़ जायेगा।... और वह उठेगा नहीं फिर। इसमें वापस लौटने की बात कहां रही?... तुम खुद बोलो, मीनाक्षी...!''

मीनाक्षी ने कहा--''मैं इतना कुछ नहीं समझती। बस इतना जानती हूं कि मैं तुम्हें प्रेम करती हूं। तुम्हें फिर से पाकर मैं खुश हूं। मैं तुम्हें पा गयी, बस इतना ही।''

मैंने बीच में रोककर कहा, ''गलत कह रही हो, मीनाक्षी! अपने को फिर टटोलकर देखो। तुम मुझे प्रेम नहीं करती। प्रेम करती हो कवि को, प्रेम करती हो मेरी वेदना की बोध-शक्ति को। यह कवि आज मुझ में न होकर इस विशाल जन-समूह में से किसी और में होता तो तुम्हारी वरमाला आज मेरी नहीं होती, उस भाग्यवान पुरुष को मिलती। मैं उससे ईर्ष्या करता, पर उस पर आश्चर्य नहीं होता....।

''दुख आदमी को ऊंचा उठाता है, मीनाक्षी! परंतु वेदना बना देती है कवि। अतः पृथ्वी पर जो पहला आदमी शर-बिद्ध क्रौंच-मैथुन के दुख पर रोया, वह हुआ हमारा आदि-कवि। तुम में यह गहन वेदना-बोध है, मीनाक्षी! तुम्हें उसका पता नहीं। अतः उसको चारों ओर खोजती फिरती हो। खोजते खोजते तुम्हारे अंदर वाले कवि ने शायद मेरे अंदर के कवि के बीच सामंजस्य ढूंढ लिया है। अतः मेरे गले में डाल दी झरे फूलों की वरमाला। मैं फुटबाल खिलाड़ी भी तो हूं। इसके लिए तो अपने मुंह से तुमने कभी मेरी प्रशंसा नहीं की। फिर इतना सम्मान-गौरव क्यों दिया? क्यों दिया यह मानपत्र? क्योंकि तुमने मेरे अंदर अपने गहन सत्य का परिचय पाया है जिसकी अप्रकट भूमिका तुम्हारे अंदर है। तुमने मेरे अंदर उस का दीप्त प्रकाश पाया है। तभी तो कह रहा हूं जो वरमाला तुमने मेरे गले में दी है, वह तुम्हारे गले में ही लौट गयी है। तुम्हारे अंदर का यह निरीह मौन कवि अपने को पूर्ण करने के लिए घूम-फिर रहा है--अपने से वृहत्तर शक्ति की तलाश में, उसमें स्वयं को सम्यक भाव से उपलब्ध कर पुष्ट करने के लिए। मेरे अंदर तुमने स्वयं को पा लिया है। मेरी प्रतिभा में उसका परिपूरक मिल गया है। अतः पागल होकर तुम्हारा कवि मेरी ओर दौड़ा है। वह समझता है कि मेरी निहायत जरूरत है। अपना परिचय गहराई से जानने के लिए उसने मुझ से प्रेम किया है, अपना बनाया है। आदमी कभी कभी कस्तूरी मृग की तरह अपने अप्रकाशित सौंदर्य की पांडुलिपि पर स्वयं मुग्ध होकर अंधे की तरह बाहर की दुनिया में उसकी तलाश करता फिरता है। पर अंत में लौटकर वह अंदर झांकता है, टैगोर के शब्दों में---

'कस्तूरी मृग सम
पागल होई मुं बने बुले
आपणा गंधे माम।'

''मगर यह भ्रम पहले नहीं टूटता। ठीक तब टूटता है जब स्वयं पूर्णता का अनुभव करता है। पहले यह भ्रम टूट जाये तो आदमी पूर्ण नहीं हो पायेगा, बड़ा नहीं हो पायेगा। अपना क्षुद्र परिसर लांघकर औरों को अपना नहीं बना पायेगा; अपने में ही पड़ा रहता,

अपना वह वृहत्तर जीवन, समाज या जगत की ओर उसकी दृष्टि-रेखा प्रसारित नहीं कर पाता--दूसरों को अपना बनाकर औरों से आहरण को स्वयं समझ नहीं पाता। जितना था, सदा उतने में ही पड़ा रहता। उसकी सारी संभावनाओं पर पूर्ण विराम लग जाता।

"और यह प्रेम? प्रेम का धर्म जानती हो, मीनाक्षी? प्रेम का धर्म है मधुमक्खी के धर्म जैसा। प्रेम का धर्म है औरों से संचयकर स्वयं बड़े होने का धर्म। इस युग में तोंदवाले पूंजीपति की तरह प्रेम औरों का शोषण कर, संग्रह कर, स्वयं धनी होता है--इस प्रकार पूर्णतर होता है। पूर्ण होने की साधना आदमी में कभी समाप्त नहीं होती। प्रेम की जय-यात्रा आदमी की वैसे ही कभी संपूर्ण नहीं होती।

"... आदमी सदा से दरिद्र...अपूर्ण है। उसके व्यक्तित्व के इस शोचनीय दारिद्रय और अभाव-बोध को पूर्ण करने के लिए उसे औरों की सहायता लेनी होगी। वह जितना औरों से संग्रह करके अपना बना सके, उतना ही उसके व्यक्तित्व के शुभ ललाट से दारिद्रय का कलंक दूर होगा। उसकी प्रतिभा अफ्रीकी जंगल की रक्तपायी चमगादड़ की तरह दूसरी सशक्त प्रतिभा का सार शोषित करके बड़ा होना चाहती है। उसकी प्रतिभा और व्यक्तित्व की यह भयंकर भूख युगों से आदमी को वृहत्तर की सूचना देती रही है। पूर्ण से पूर्णता का आभास दिया है...

"जिसकी प्रतिभा जितनी बहुमुखी, उसके प्रेम के पात्र उतने ही अधिक हैं। अपने कुछ अभाव पूरे करने के लिए आदमी उस विशेष शक्ति के आधार पर दूसरे किसी एक या कइयों को प्रेम करने को बाध्य है। उसके व्यक्तित्व के अन्य कुछ भाग पूर्ण करने के लिए, वह समय समय पर या एक साथ, एक या अधिक को प्रेम कर सकता है। इसमें कोई दोष नहीं और न ही यह अस्वाभाविक है। किसी विशेष कारण से किसी को प्रेम करना सत्य है--अन्य दूसरे कारणों से दूसरे आदमी को प्रेम करना उतना ही सच है। इसमें कोई झूठ नहीं। उसके प्रेम में गहरी आंतरिकता है, इस बात का साक्षी उसका अंतर्यामी पुरुष है, जिस की प्रतिभा जितनी बहुमुखी और जीवंत है, उसके प्रेम-पात्र अथवा अभाव पूरा करने के संगी-साथी उतने ही अधिक हैं, विचित्र हैं।

"... आदमी की पूर्ण होने की तपस्या जिस दिन सिद्ध हो जायेगी, उसी दिन उसका प्रेम पूरा हो जायेगा। पूर्ण होने का प्रयोजन या बोध या तो जानवर में नहीं होता या फिर भगवान में। जानवर में तो शुरू से ही अभावबोध की शक्ति नहीं, पूर्ण होने का भाव भला उसमें कैसे जागे? और भगवान? उन्हें तो उपनिषदों में पूर्णतम वस्तु अथवा पूर्णमिदं कहा गया है। पर आदमी इन दोनों में से कोई भी नहीं। वह अलग ही जीव है। उसकी पूर्ण होने की बहुमुखी भावना विभिन्न पात्रों के जरिये प्रकट होती है। आदमी जिस दिन प्रेम नहीं करेगा, उसकी प्रतिभा की अकाल मृत्यु हो जायेगी। उसका व्यक्तित्व बूढ़ा हो जायेगा। उस की लुंज-पुंज देह धरती पर अकेली पड़ी रहेगी।

"और प्रेम के पात्र? उनकी संख्या अगणित है। एक को प्रेम करके आदमी वह नहीं

हो सकेगा जो उसे होना था। फिर इस के साथ जो उसे पाना था सो कभी नहीं पा सकेगा। क्योंकि एक आदमी कभी आदमी की सारी शून्यता भरने की क्षमता नहीं पा सकता। मान लो तुम कवि के रूप में चाहती हो मुझे, पर संगीतज्ञ या अभिनेता के रूप में तो नहीं। तुममें अभिनय की प्रतिभा तो होगी, तो मैं उसे कतई समझ नहीं पाऊंगा। इसके लिए मुनी या बरुआ जैसे कुशल अभिनेता के पास जाना होगा। यदि चित्र बनाना है तो जरूर किसी कलाकार को प्रेम करोगी। गीत गाने की प्रतिभा है तो पंकज मलिक या सहगल को चाहोगी। सिर्फ मुझे चाहो, केवल मेरे पास जीवन भर पड़ी रहो तो तुम्हारी प्रतिभा की इन दिशाओं का विकास कैसे होगा? इसके लिए तुम अपनी प्रतिभा के विकास के लिए एक साथ इतने लोगों के प्रेम में पड़ो, तो मैं सबसे पहले तुम्हारा अभिनंदन करूंगा। तुम्हारे एक साथ इतने प्रेमियों के बीच दोस्त की तरह हाथ मिलाने के लिए तैयार हूं, मीनाक्षी! क्योंकि मैं तुम्हारी प्रतिभा की पूर्णता चाहता हूं, मृत्यु नहीं। तुम्हारे व्यक्तित्व की विजय-कामना करता हूं। बड़ी बनो, यही इच्छा है मेरी। इसके लिए तुम्हारे अजेय अभिमान का सदा अभिनंदन करूंगा....।

''तुम्हारी विजय-यात्रा केवल शुरू हुई है। जितनी आगे बढ़ोगी उतना ही मुझे छोड़ आगे बढ़ोगी। मेरा रस-उत्स जितना कम होगा, तुम्हारा विमुख मन मुझे छोड़ औरों के भंडार से मधु संग्रह करने को उतना ही उद्विग्न होकर दौड़ेगा। मधुमक्खी की तरह तुम्हारे पंखों में कंपन होगी, छोड़ जाने की करुण वागेश्री...

''अचानक शायद तुम्हारी प्रतिभा को पता चले कि मुझसे जितना पाना था, पा चुकी हो... और पाने को बाकी कुछ नहीं। तब उसकी संधानी आंखों को उजाले में पता चल जायेगा दिगदिगंत में रस के और अवर्णनीय झरने का...। उस नूतन के आमंत्रण, उस अननुभूत के आकर्षण में तुम्हारी प्रतिभा सीमा लांघकर चल पड़ेगी दूर, और दूर....। वह दिन मेरे लिए कितना दुर्दिन होगा, सोच सकती हो, मीनाक्षी? पर तुम्हारे क्रमशः पुष्ट होते पलायन करते व्यक्तित्व को मैं कभी रोकना नहीं चाहूंगा। उसकी गति में कोई रुकावट नहीं डालूंगा। बस, इतना जानता हूं कि आदमी को आदमी की जरूरत है। आदमी आदमी की मांग मान ले, यही मेरे ख्याल में प्रथम और महत्व की बात है। मैं आदमी की इस निम्नतम प्राप्ति का परिशोध करते समय घड़ी पकड़ समय की संधि से घृणा करता हूं। चिरस्थायी बंदोबस्त केवल आर्थिक या राजनैतिक कारणों से नहीं, आदमी के मन की सहज, स्वाभाविक विकास की दृष्टि से भी सामंती युग की सड़ी-गली प्रथा है। मौरूसी पट्टा लिखकर किसी को आसक्ति में अपने पास बांधने के लिए पहले से शर्तनामा लिखाने को अभद्रता ही नहीं, अधर्म भी मानता हूं मैं...।

''पर तुम यदि मेरे पास रुक जाओ, मुझसे सब कुछ पाने के लिए तुम यदि क्लांत हो जाओ, आगे न जा पाओ, तुम्हारी भूखी प्रतिभा मेरे भंडार से थोड़ा-बहुत खाद्य लेकर मुरझा जाये--वह अकाल गति मेरे लिए कितना ही सुखदायी हो, तुम्हारे लिए घोर पराजय

और दुर्भाग्य की बात होगी।

"तुम्हारी पूर्णता का मानचित्र रह जायेगा सदा अधूरा... उस में गूंजेंगे अपूर्णता के करुण स्वर--निशीथ में निशाचर पक्षी के विरामहीन आर्तनाद की तरह...

आदमी एक-दूसरे से मिलेगा। फिर छोड़कर चला जायेगा। यह चले जाना ही जीवन का एक मात्र सत्य है। इसमें दुख करने की कोई बात नहीं है, मीनाक्षी।

आदमी सिर्फ कान लगाकर सुनेगा दूर जाते कदमों की ध्वनि... आविर्भाव और प्रस्थान का चित्र... उस पर अनेक व्यस्त त्वरित चरणों की चलती-फिरती छाया दिखेंगी और मिट जायेंगी। पर दोनों ही परम सत्य हैं। कोई मिथ्या नहीं, दोनों को स्वीकार करना होगा।... दूर दिग्वलय के बालू के टीलों या ढूह के मुहाने के पार तुम्हें उसकी पाल चढ़ायी नाव के पीछे अपलक नेत्रों से दौड़ना होगा... उसके लौट आने तक। पर वह लौटेगी नहीं।

तुम्हारे स्कूल की सहपाठी कवयित्री (क्या नाम बताया था सूर्यमणि या कुछ वैसा ही) अपनी सहेली के विदाई के समय कान में कह रही थी--छलछलायी आंखों से--'विदाई ही मिलन की अंतिम परिणति है।' तुम्हारी उस नम्र, लाजवंती कवयित्री की यह छोटी सी पंक्ति मुझे याद है, मीनाक्षी। छोड़ जाने में ही पाने की सारी कविता भरी है--यह करुण सत्य तुम्हारी उस छोटी सी कवयित्री ने जरूर उस दिन अश्रु नदी के दोनों तीर पर खड़े होकर उपलब्ध किया होगा। मैं उस अनजान कवि के प्रति हार्दिक श्रद्धा व्यक्त कर रहा हूं।

अतः जिन्हें गवां चुकी हो, उनके लिए आंसू न बहाना। वरन जिन्हें कभी पाया था, या पा सकोगी उनकी उज्जवल स्मृति को विस्मरण कर बंद देवल में सोने के सिंहासन पर दीप जलाये रखो... इसमें गौरव है।"

दूर आकाश में विवर्ण फीका क्षत वर्षा के श्यामल अभिजात्य में बिखर रहा था। उस आकाश की ओर देख मीनाक्षी ने एक गहरी सांस छोड़ी। मैंने उसके उदास कोमल कपोल पर रख दिया करुण कवितापूर्ण चुंबन... जिसकी परमायु शायद निशांत की क्षय हो रही भीरु दीपशिखा सी अलीक, अस्थायी, अचिर है...।

चारों ओर अंधेरे की उर्वरता में खत्म हो रहा रात का व्यथित अस्त-राग पूर्व दिशा में उदयाचल पर रच रहा था आगामी प्रभात की भूमिका।

मीनाक्षी और मैंने उधर देख दोनों हाथ ऊंचे कर नमस्कार किया।

एक पैसा

नीलांबर बाबू किसी शाम की आलोचना-सभा बनाम टी-पार्टी में भाग लेकर लौट रहे थे। भुवनेश्वर से कटक कोई खास दूर नहीं। कुल मिलाकर बीस मील यानी आधे घंटे का रास्ता है। फिर भी उनका मन खीझ से भर गया है। रास्ता खत्म ही नहीं होता। वे सोच रहे हैं--आज की इस बरसाती सांझ को यों बेवकूफ की तरह बेकार की आलोचना में बरबाद नहीं करना था, बल्कि कटक में अपने घर के बरामदे में बैठकर इधर-उधर की सोचते सोचते ही बिता देता तो अच्छा रहता। सारे-के-सारे फालतू तर्क। पश्चिम बंगाल के सभी मुख्यमंत्री कुंवारे क्यों हुए? हमारे यहां अब मंत्रिमंडल की नीति क्या है? नयी सरकार के समय में ग्राम-सेविकाओं का भविष्य क्या होगा? इन्हीं सारी फफूंद-जमी बातों में तुक मिलाकर भाग लेने की जरा भी इच्छा नहीं थी। और फिर भी तीन घंटे बैठे रहना पड़ा।

जोरदार बारिश में सारा रास्ता चमचमा रहा है। फिर भी जगह जगह भुनगे उड़ रहे हैं। भीगे पेड़-पौधे और खेतों पर मोटर की रोशनी से ऐसा प्रतीत होता है मानो किसी ने अभ्रक-चूर्ण बिखेर दिया हो। कोई उल्लू रास्ते के इस पार पेड़ से फड़फड़ाकर उस पेड़ पर चला गया। एक सियार भी रास्ता काट गया दाहिने से बाईं की ओर। उनकी अन्यमनस्कता ने यह सब नहीं देखा, ऐसी बात नहीं। पर उस ओर वे ध्यान नहीं दे पाते। गाड़ी दौड़ाते जा रहे हैं।

सबसे अधिक परेशानी इस लेवल-क्रासिंग पर होती है। शहर पहुंचकर भी न पहुंचने जैसा लगता है। माथे से पसीना पोंछने लगे।

लेवल-क्रासिंग पारकर बख्शी बाजार पहुंचे, तब तक रात के साढ़े दस बज रहे थे। दुकान-बाजार बंद हो चुके थे करीब करीब। एक-आध दुकान खुली थी, सो भी बंद हो रही थी।

बिजली के खंभे करीब करीब अंधेरे में थे। उन्हें लगा, कोई अखबार खरीदना चाहिए। शायद आज शाम को नौकर ने ताजा अखबार खरीदा ही न हो। एक हॉकर छोकरे को आवाज दी। अखबार लेकर पहले पन्ने पर सरसरी तौर पर नजर डाली। जेब टटोली। चवन्नी निकली। उन्होंने उसे हॉकर की ओर बढ़ा दिया। बारह पैसे रखकर तेरह नये पैसे मुझे लौटाने की बात। मगर अखबार वाले ने लौटाये कुल बारह ही पैसे--दस पैसे और दो पैसे

का सिक्का। उन्होंने अन्यमनस्क भाव से पैसे आदतन जेब में डालने चाहे। तभी अचानक याद आया--गिन लेना चाहिए। हॉकर तब तक साइकिल पकड़े दस-बारह हाथ दूर जा चुका था। फिर भी नीलांबर बाबू ने आवाज लगायी--"एक पैसा कम है।" हॉकर ने उत्तर दिया, "एक पैसा छुट्टा नहीं है, न ही तीन पैसे का सिक्का है। लाचार हूं, बाबू!"

नीलांबर बाबू को याद आया--उनका नौकर रोज ही ऐसी रिपोर्ट देता रहता है। हॉकर लोग भी रोज उनसे ऐसे इसी तरह एक एक पैसा अधिक लूट लेते हैं। वह क्षति पूरी करनी पड़ती है नीलांबर बाबू को। वे नौकर पर भी आधा विश्वास करते। आज इस बात का खुद ही प्रमाण पा गये।

उनको विश्वास हो गया कि यह सोची-विचारी और अच्छी तरह से बनायी गयी योजना का अंग है। हर अखबार पर एक एक पैसा अधिक वसूल करने की चाल है। ऊंची आवाज में कहा, "एक पैसा और देना होगा।" हॉकर ने सारी रेजगारी हथेली पर रखकर कहा--"न एक पैसे का सिक्का है, न ही तीन पैसे का।"

मगर नीलांबर बाबू नहीं समझे। उनका अपना ही तर्क था। "नहीं है तो मैं क्या करूं? पहले से क्यों नहीं रखा? जानबूझकर नहीं रखा तूने।" उन्होंने भी सारी रेजगारी निकाल दी जेब से, सिक्का ढूंढने लगे, देखा, ठीक बारह पैसे की रेजगारी बनती ही नहीं। दस या पंद्रह पैसे निकल रहे हैं। गुस्से में उन्होंने हॉकर को दुष्ट, ठग न जाने क्या क्या कह डाला। आखिर तय कर लिया--अखबार वापिस कर दूंगा, क्योंकि मेरे ख्याल से ऐसी संगठित ठगी को सिर झुकाकर मान लेना किसी भी देशप्रेमी के लिए ठीक नहीं है। इन्हीं बातों से तो देश में घूस और बेईमानी को बढ़ावा मिलता है। उन्होंने तुरत चवन्नी हॉकर के हाथ से लेकर गाड़ी तेज कर दी।

कुछ दूर जाने पर एक और हॉकर छोकरा मिला। यह उतना छोटा नहीं था, करीब करीब जवान हो चुका था और फिर ओड़िया जवान, पैंट, हवाई-शर्ट पहने हैं। नीलांबर बाबू ने गाड़ी रोकी। आवाज देकर अखबार मांगा। अखबार एक हाथ में लेकर जेब से रेजगारी निकाली। एक एक कर पैसे ढूंढने लगे। देखा तो पंद्रह पैसे से नीचे या दस पैसों से ऊपर छुट्टे ही नहीं मिलते। उन्होंने हॉकर के हाथ में एक दस और एक पांच पैसों का सिक्का बढ़ा दिया। मगर उसने तीन पैसों की जगह दो पैसे का सिक्का वापस किया, लापरवाही में कहा, "मेरे पास रेजगारी नहीं है।" नीलांबर बाबू का खून गरम हो गया। तो सब इस ठग दल में शामिल हो गये हैं। ये सब मिलकर ठगी करने के लिए दल बना चुके हैं।

तब तक रात के साढ़े-ग्यारह बज चुके थे। घर दिख रहा है। अतः यही है आखिरी हॉकर, अब और हॉकर मिलने से रहा। उन्होंने आखिर सोच ही लिया--एक पैसा जाता है तो जाये। और ज्यादा ऊंच-नीच सोचे बिना, अखबार लिया--एक पैसा जाता है तो जाये। मगर उनका देश-प्रेम आड़े खड़ा था। सब अगर चुप होकर यों ठगी सह लेंगे तो देश की दुर्नीति--अन्याय कैसे दूर होंगे?

यों दुर्नीति को मुंह लगाते लगाते तो आज यह मेघनाद-प्राचीर[1] की तरह आकाश की तरह सिर उठा चुकी है। उन्हें याद आ गया वही नीतिवाक्य--'जो अन्याय करता है और जो अन्याय सहता है, दोनों भगवान की अदालत में एक समान दोषी हैं।' उन्होंने सोचा, इसका प्रतिवाद करना जरूरी है। कम-से-कम सारे देश में एक आदमी तो इसके विरोध में आवाज उठाये। और वह आदमी है--स्वयं नीलांबर दास।

हो चाहे एक पैसा, छोड़ूंगा नहीं। उन्हें याद आयी नौकर की रिपोर्ट--रोज इसी तरह अखबार लेते समय एक पैसा ठग लेता है। हर महीने तीस पैसे भरने लड़ते हैं, नीलांबर बाबू को अपनी जेब से। एक कालाबाजार देश में जड़े फैला चुका है। न-न इसका मुकाबला किया जाना चाहिए। चाणक्य जैसे थियेटर में कुछ दूब उखाड़ने लग जाता है, नीलांबर बाबू भी उसी तरह दुर्नीति को जड़-मूल से उखाड़ फेंकने को कमर कस बैठे हैं।

चाहे एक पैसा ही हो, इसके पीछे एक बहुत बड़ा सिद्धांत है। जरूरत पड़ी तो इसके विरुद्ध जान की बाजी लगा देनी होगी। याद आयी पंद्रह वर्ष पुरानी घटना--ट्राम स्ट्राइक हुई थी। ट्राम कंपनी ने सिर्फ एक पैसा किराया बढ़ाया था। उस जमाने में महीना भर तक हड़ताल चली। कितने जुलूस निकले। कितनी जगह गोलियां चली। झुंड-के-झुंड लोग मरे, शहीद हुए। याद है, उन्होंने उन दिनों कैसे ओजस्वी भाषण दिये थे। कितनी कविताएं लिखी थीं।

और आज, अन्याय कैसे सह लें? नीलांबर युवा अवस्था में देशप्रेमी थे। किसी राजनैतिक दल के सक्रिय सदस्य भी थे। अनेक सभा-समितियों में भाषण भी दिये हैं। हड़ताल चलायी हैं। अब वे सब धंधे छोड़कर व्यापार में आ गये हैं। मगर अंदर का देशप्रेमी मरा नहीं। उन्हें लगा, जैसे वासुकि नाग की तरह वे सारे समाज का भार अपने सिर पर उठाये हैं। उनकी तरह के समाज-सचेतन लोग ही ऐसी दुर्नीति को आसरा देंगे, यह तो घोर अन्याय होगा। अन्याय ही नहीं, अपराध है यह एक तरह से।

ऊंचे स्वर में चिल्लाकर बोल उठे, "एक पैसा तो जरूर देना होगा।"

अखबार वाले ने भी उतने ही ऊंचे स्वर में जवाब दिया, "बाबूजी, पैसा नहीं है छुट्टा। वह अखबार लौटा दें।"

नीलांबर बाबू उसे दोष देने लगे। कहा, "जान-बूझकर पैसे न रखकर तुम लोग चालबाजी दिखा रहे हो।"

हॉकर ने अपनी पैंट की जेब से सारी रेजगारी निकाल अंजुरी में भरकर दिखा दी, "तीन पैसे का सिक्का नहीं मिलता, यह बात हर आदमी जानता है, बाबू!"

नीलांबर बाबू ने अपनी रेजगारी निकालकर देखा, दो पैसे का सिक्का पता नहीं कहां छुप गया है। उन्होंने अभियोग लगाया, "रेजगारी नहीं है, पहले से रखनी चाहिए थी।"

---

1. जगन्नाथ मंदिर के चारों ओर बना ऊंचा परकोटा।

हॉकर ने इस बार जवाब दिया, "बाबू, मैं कोई बैंक नहीं हूं।"

तर्क-वितर्क करते बातचीत गाली-गलौज के स्तर तक आ पहुंची। नीलांबर बाबू उसे बदमाश, ठग, पाजी वगैरह मधुर संबोधन करने लगे। हॉकर भी बदले में--"मुझे चोर कहता है जो, वह भी वैसा ही होगा," कहने में पीछे न रहा।

अंत में नीलांबर बाबू के हाथ से अखबार खींच लिया। पैसे लौटा दिये। साइकिल का पैडल मारा और चंपत। कुछ दूर जाकर रुका। "बड़े आये अखबार खरीदने वाले। कभी अखबार पढ़ा है?..." जोर से सुना दिया।

नीलांबर बाबू को अपमान लगा। उसका अंतिम वाक्य उन्हें बिलकुल बरदाश्त नहीं हुआ। अपनी अंतिम बात कहकर वे चले जाते तो गर्व होता। हॉकर के पीछे गाड़ी स्टार्ट कर दी।

देखा--कुछ दूरी पर रुककर वह साइकिल में बत्ती लगा रहा है। नीलांबर बाबू झपटकर गाड़ी से उतर पड़े। जाकर उसके सामने खड़े हो गये। उनकी दोनों आंखें जल रही थीं। गुस्से में हांफ रहे थे। हॉकर बेचारा बात को समझ घबरा गया। उसने कभी न सोचा था कि इतनी रात में बाबू गाड़ी दौड़कर उसका पीछा करेंगे। उसकी अक्ल चकरा गयी। रास्ते पर भी कोई चहल-पहल नहीं। बस सुनसान। उसने हड़बड़ाकर पूछा, "आप क्या चाहते हैं?"

"अखबार।" नीलांबर बाबू ने कहा।

"ले जाइये।"

"पैसे?"

"नहीं, नहीं चाहिए!"

नीलांबर बाबू का गुस्सा एक दम ठंडा पड़ गया। वे ऐसे आकस्मिक परिवर्तन के लिए बिलकुल तैयार न थे। वे तो पूरे तौर पर झगड़े के लिए पसीना पसीना होकर दौड़े थे। उनके हाथ में था उनका उठा हुआ हथियार। ऐसे ऐंटीक्लाइमेक्स की तो कल्पना भी न की थी।

उनका उत्साह, उत्तेजना, रक्तचाप सब कुछ पर जैसे पानी पड़ गया। इतनी देर तक अंधेरे की जो चादर गहरी होती जा रही थी, अचानक उसके आगे किसी ने उजाले की एक बूंद लाकर जला दी--धप् से। और उसकी छोटी सी किरण से जमा हुआ अंधेरा धीरे धीरे पिघलकर साफ हो गया।

अखबार ले लिया। जेब से रेजगारी निकाली। एक दस पैसे का और एक पांच पैसे का सिक्का निकाला। हॉकर ने भी जेब से सारी रेजगारी निकाली। पहले का दो पैसे का सिक्का खोजने लगा।

नीलांबर बाबू और हॉकर, दोनों ने एक साथ एक-दूसरे की ओर हाथ बढ़ाया, पैसों का लेन-देन करने के लिए। हॉकर के हाथ में पैसे देकर जरा आश्चर्य के स्वर में बोले--"जाने

कहां से दो पैसे का सिक्का मिल गया।"

हॉकर ने भी उसी आश्चर्य में कहा, "ठीक है, रहने दें। मुझे तीन पैसे का सिक्का किसी तरह ढूंढने पर मिल गया।"

अखबार लेकर नीलांबर बाबू घर की ओर लौटे।

लेखक-परिचय

सच्चिदानंद राउतराय का जन्म गुरुजंग ग्राम (जिला खुरधा) में सन् 1916 ई. को हुआ। आधुनिक ओड़िया साहित्य में युग-प्रवर्तक के रूप में ये विशिष्ट स्थान रखते हैं। राउतराय जी छात्र-जीवन से ही साम्यवादी विप्लवी नेता के रूप में परिचित रहे। ओड़िया कथा एवं कविता में प्रगतिशील युग का सूत्रपात इन्होंने ही किया है। ओड़ीसा के ग्रामीण जीवन का सरल चित्र, स्वतंत्रता-संग्राम में ओड़िया वीरों की भूमिका, सामाजिक कुसंस्कार, अनीति, अनाचार के प्रति विद्रूप तथा सामाजिक न्याय व समानता के लिए संघर्षशील मनोवृत्ति इनके साहित्य की पृष्ठभूमि है।

बाद में कलकत्ता के केशोराम काटन मिल्स में लेबर आफिसर के रूप में कार्य करते समय आधुनिक भारतीय कविता का नया रूप सच्चि बाबू की लेखनी के जरिये ओड़िया साहित्य में प्रवेश कर सका। स्वतंत्र्योत्तर-ओड़िया कविता व काव्य को अपनी नूतन शैली के जरिये इन्होंने प्रमाणित किया। तब से अनवरत कविता, कथा, आलोचना, अनुवाद आदि विभिन्न विधाओं में सक्रिय बने हुए हैं।

इनकी रचनाओं में पल्लीश्री, बार्जी राउत 'पांडुलिपि', कविता-1962, भानुमतिर देश (काव्य-संकलन), चित्रग्रीव (उपन्यास), मसानीरा फुला, माटिर ताज (कथा-संकलन), ओड़िया साहित्येर केते दिगंत (आलोचना) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। 'दिगंत' पत्रिका के संपादक के रूप में ओड़िया साहित्यिक पत्रिकाओं को नया दिग्दर्शन दिया है।

इन्होंने ओड़ीसा साहित्य अकादमी के अध्यक्ष के रूप में भी काम किया है। सन् 1986 में इन्हें 'भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। इसके अलावा 'कविता - 1962' के लिए 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' और फिर 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' प्रदान किया गया। आंध्र तथा ब्रह्मपुर विश्वविद्यालयों ने मानद डाक्टरेट प्रदान की। भारत सरकार ने इन्हें 'पद्मश्री' से अलंकृत किया। संप्रति मिशन रोड, कटक में साहित्य-साधना में 'दिगंत प्रकाशनी' के जरिये सक्रिय हैं।

मैसर्स श्रीराम ग्राफिक्स, जनकपुरी, नई दिल्ली द्वारा लेजर कंपोज तथा मैसर्स दी सैंट्रल इलैक्ट्रिक प्रैस, नारायणा, दिल्ली द्वारा मुद्रित।